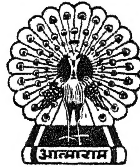
नारी

(महाकाव्य)

लेखक
अतुलकृष्ण गोस्वामी





१९५८
आत्माराम एण्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रथम संस्करण
अक्षय तृतीया १९५७
मूल्य रु० १०.००

मुद्रक
सत्यपाल शर्मा
कान्ति प्रेस
आगरा।

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम है 'नारी'। समस्त मानवीय सदाचार निष्ठ मानव धर्म्या स्त्री को नारी कहते हैं। वपु प्रकार प्रकृति प्रत्यय, वर्ण, गुणादि भेद होने पर भी नारीत्व की अभेदता से यह संज्ञा नारी मात्र की है।

मूर्तियाँ धातु, माप, आकार, अनुहार, भेद से अनेक भाँति की होने पर भी देवता सबमें एकसा है, शरीर विभिन्न होने पर भी सर्वान्तर गत आत्मा में अभेद है, तर्क और प्रत्यय प्रकार अलग-अलग होकर भी प्रतिपाद्य तत्व एक ही है. उसी प्रकार सर्वत्र, सर्व काल, सब में नारीत्व भी एक सा एक है। सूक्ष्म स्थूल दिव्यातिदिव्य रूप में, इस अनन्त विभु नारीत्व की अंश भूता नारी अनन्त हैं। अंशी रूप में नारी केवल एक ही है। प्रत्येक मानवी में उस नित्य नारी और उसके नित्य नारीत्व का चिराविर्भाव है। तत्वत: प्रत्येक स्त्री उसी की चेतन स्फूर्ति है। विराट नारी का यही चिन्तन इस ग्रन्थ का अभीप्सित विषय है।

निखिल शक्तियों का विकास नारी का स्वरूपानुभव अथवा तद्रूपलब्धि का क्रम प्रस्तुत करता है। इतर लोकीय सृष्टि परक (गन्धर्वी, विद्याधरी आदि) संज्ञाओं से उसके सत्व और गुणाश्रित प्रकृति व्यञ्जित हैं। कुछ से भावस्थिति, आन्तरिक शोभा, स्वभाव सिद्ध गुण, शील और शारीरिक सुषमा व्यक्त होती है, इस प्रकार अनन्त सार्थक नामों में नारी सम्बोधित है। लिङ्ग भेद सौकुमार्य्य और माधुर्य्य भेदीय है। गति, प्रगति, वृत्ति प्रभृति में स्वत: स्त्रीत्व नहीं है, या तो स्त्रीत्वोत्प्रेरक आभासांश हैं, या किसी अधिष्ठात्र तत्व सम्बलित 'विभूत्यंश'। इस अवस्थान के साथ ग्रन्थ में मानवी से प्रारम्भ होकर 'नारी' की परिणति पर्य्यन्त उसके व्यक्तिगत, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कलात्मक, तथा व्यावहारिक स्वरूपों के प्रति विनम्र श्रद्धार्पित हुई है।

नारी का विराट 'निजत्व' अनिर्वचनीय माधुर्य आनन्द, सौन्दर्य, और संगीत का एकान्त आश्रय है। उसमें सत्य शिव सुन्दर समस्त सुकुमार तत्वों और सर्वोत्तम सत्वों का संयोग है। मानव जगत् के त्रिकालीय कला गुरुओं और तत्व मनीषिओं द्वारा, साहित्य, और दर्शन की हेम मंजूषा में नारी तत्व निधियों और तथ्य चिन्तामणिओं का अपूर्व संग्रह हुआ है। शास्त्रों, सन्तों, शास्ताओं और सामाजिकों की चिरानुनेया, प्रिय दर्शना नारी सर्व प्रिय, सर्वानुगेया है। नवोपस्थित काव्य में कुछ 'स्वरूप सर्जना' या रूप परिणति नहीं है। इसमें उसी अपौरुषेया नारी के प्रति गान्धी युगीय पूजा सम्पन्न हुई है।

आलोचकों का मर्म, काव्य प्रेरक मूल के परिचय को विकल रहता है। दृष्टि प्रदा नारी अनुग्रह के बाद सम्प्राप्त काव्य की प्रेरणा का केन्द्र है, निखिल कला चेतना की अभिधान व्रज भूमि। व्रज की उज्वल रस और मादनाख्य महा भाव मयी प्रेम विभूति परम प्रतिभाओं की निकषा है। चरम साधनाओं का फल है। भावुकों का अनुभव है कि यहाँ सैकत कणों से, इन्दु रश्मियों से, प्रातः गगन बिहारी खग कण्ठ कूजन से, नवस्फुट कलिकाओं से, कदम्ब कुञ्ज में उतरते हुए अरुण आतप से अनवरत युगल केल्यनुकूल दिव्य नव रस निर्झरित रहते हैं। इसी रस के उन्माद में श्री चैतन्य देव का मूर्च्छनावेश, नवद्वीप और पुरी की वीथियों को वाष्पार्द्र किये है। मीरा की नूपुर शिञ्जन अरावली की गुहाओं में अद्यावधि मुखरित है। गोवर्धन गिरि की विरह ज्वलित शिलाएं कज्जल मिश्रित अश्रु स्रोतों के जमे हुए खण्ड सी प्रतीत होती हैं, जिन पर धारियों सी चिलक रही हैं सूरदास की कोमल कान्त पदावलि। यमुना की तरङ्ग तरङ्ग से उद्वेलित हो रहा है प्रेम महा सिन्धु जिसका एक एक विन्दु हैं इस प्रकट महा-सिन्धु सा। व्रज में पुरुषोत्तम विजित हुए हैं नारी के सत्तम सत्व से। यहाँ नारीत्व के सम्पूर्णत्व का साक्षात्कार और उसकी भुवन विमोहिनी महिमा का दिगन्त व्यापी विस्तार हुआ है। सम्पूर्ण नारी तत्व, जिसका अपर नाम ह्लादिनी है, जो निखिलाखिल शक्तियों की जननी है, श्री राधिका जिसका विग्रह हैं, एवं दर्शन स्पर्श सुरभि और रस में जो सम्पूर्ण सौन्दर्य समस्त आह्लाद, सर्वतम संगीत, सकल भाव, तथा अशेष सौकुमार्य्य की मदन मोहन मोहिनी नारी हैं; उन्हीं की वेणु वादनश्लथ निकुञ्जाभिगमन कालिक पद नख द्युति चिन्तन से, मेरी मलिन मति को जो कणाभा

मिली है, उसी का अस्फुट सुखोछ्वास इन छन्दों के अन्तर का निमित्त और उपादान है।

तात्विक दृष्टि से अनन्त जीवन की नित्य चैतन्य ज्योति ही नारी है। उसके सर्व शोभन सत्य समूह सर्वत्र भासमान हैं। पुरुष के सम्पूर्ण व्यक्तित्व गर्भ में वह प्रतिष्ठित है। उसके समस्त निजत्व में पुरुष का हित है। वह एक में भी भिन्न विराजित है और अनेक में भी अभिन्न। पहले वह आदि पुरुष में उनकी नितान्त पूर्णता के लिये अभिनिविष्ट रही बाद में उपसृष्ट हुई उन्हीं के पूर्णानन्द विधान के लिये। इस द्वैत के बिना अन्तर निभृत तन्मिथ रस राशि का आस्वादन असम्भव था। सृष्टि के सब सत्पात्र अनिश नारी सुधा सञ्चयन के लिये विनिर्मित हैं। उनमें आपूरित होने के अनन्तर जीवन की सञ्जीविनी सुधा सी वही जीवास्वाद्य है। नारी आस्वाद्य आस्वादन और आश्वादक तीनों से पूर्ण होने के कारण ही स्वयं आकर्षण का केन्द्र भी है और आकर्षित भी होती है। जब आकर्षण करती हैं तब भुवनैश्वर्य्य बरस उठता है, जब आकर्षित होती है तब माधुर्य्य सिन्धु में ज्वार भाटा आ जाता है। इन्हीं दोनों क्रियाओं में उसका पुनीत मातृत्व जिसका स्वरूप उसकी स्नेहार्द्र करुणा जनित सत्व सर्जना है, निखरता है, और मदीला भोक्तृत्व जो उसका उच्छल मादन मोदन मय विलास है—दीप्त हो उठता है। अपने अपने रज तम सत्व के अनुसार कोई मातृत्व की शीतल पारिजात छाया में चतूरसास्वादन करता है, और कोई भोक्तृत्व की बिहार कुञ्जों में नव रसास्वादन। इसमें भी भेद है तम और रज वाले इसकी छाछ पीते हैं, सत्व वाला पयः पान करता है परन्तु त्रिगुणातीत पुरुष शुद्ध नवतीत सेवन करता है। इस पर भी संस्कार और गुण तो अपने होते ही हैं परन्तु सत्पात्रों को पात्रता वह स्वयं देती है। 'नारी' की कविता में इसी विश्वास की लय है।

'नारी' की प्रथम अनुभूति पावस कालीन गगन के घन घण्डों की तरह अनन्त शक्तियों के रूप में होती है। छोटे छोटे बादल एक होकर विराट घटा में परिवर्तित होते हैं। उनकी इस क्रिया का क्षेत्र आकाश है। इसी तरह अलग अलग शक्तियाँ एकत्र होकर महा शक्ति बनती हैं। यही प्रकृति है। उनकी एकत्र क्रिया का जो क्षेत्र है वही पुरुष है। ये ही नर और नारी हैं। यहाँ सब चेतन, नित्य और सत्संकल्प है। प्रकृति पुरुष परस्पर में एक दूसरे के मूल हैं। आपसी सम्बन्ध कल्पना ही भाव

है। उसे व्यक्त करने की उत्कृष्ट विधि कला है। उदय का प्रकाश में आने वाला सत्य ही निगूढ़ रहस्य है। चित्रकार रङ्गों से, मूर्तिकार पत्थर पर छैनी से, गायक वीणा के तारों पर और कवि शब्दों, स्वरों की रज्जु में इसी रहस्य को बाँध लेना चाहते हैं। वह एक कुहुक सा उत्पन्न होता है, नव विस्मय सरोज सा विकसित रहता है, आनन्द भागीरथी के कलस्वर सा मुखरित हो कर भी रहस्य, रहस्य ही रहता है, मानो प्रकृति पुरुष के अस्तित्व का यह रहस्य ही पूर्ण सत्य है, जहाँ अनुमान और कल्पना के पर भी थक जाते हैं। "नारी के आत्म गान में" इसी रहस्य मयी की निगूढ़ रस राशि इष्ट मूर्ति के प्रति मेरी श्रद्धा प्लावित हुई है।

क्षीर सिन्धु से पितृ तत्व उत्पन्न हुआ। जिसकी सत्व नाभि में खिला अव्यक्त तत्व की सर्जना शक्ति का पुण्डरीक। इसी से स्रष्टा का जन्म हुआ। सत्व से रज, रज से तम, की उत्पन्न सृष्टि मातृ हीन घर की अरसिक सन्तान सी निरपेक्ष रही। रज तम, सत्व की सम्मलित सृष्टि ने क्षीर सिन्धु मथ डाला। इससे उसका अन्तर शयित व्यक्तित्व जाग उठा और साकार होकर त्रिमूर्ति में अभ्युदयित हो गया। भोक्तृ शक्ति शुद्धांश भाग लेकर रम्भा के रूप में रजोगुणी देवों के यहाँ, वारुणी जो उसी की रम्य मूर्ति थी तमोगुणी दैत्यों के यहाँ चली गई। अब प्रकट हुई समस्त सौन्दर्य्य, संगीत आनन्द रस की कोमल कमल मूर्ति पद्मा, जिनमें दिव्याकर्षण के हेतु से गुण विकार रहित भोक्तृत्व और महा ज्योतिर्मय शुद्ध सत्व मय, सम्पूर्ण मातृत्व विद्यमान था; उस पितृ तत्व पूर्ण परम पुरुष के वामाङ्ग में अभिराजित हो गई। पुरुष के अपराजित ग्रहण की कान्ति से दीप्त और अपने भुवन विजयी समर्पण से सौम्य, दिव्य तमा माँ का भक्ति मय कीर्त्तन है मुझ अल्पमति के इस श्रद्धा जनित काव्य में।

पृथिवी की प्रत्येक नारी उसी भोक्तृ-मातृ शक्ति की शुद्ध मूर्त्त चेतना है। चेतन मूर्ति है। मूर्त्त हो कर भी उसका विभुत्व आक्रान्त नहीं है। उसका प्रति वाञ्छित मनोरम-रस रमणीय सत्व तो सबके अपने भीतर विद्यमान है। वाह्यस्थित नारी उसे उद्बोधित उल्लसित कर रही है। नारी का आन्तरिक आविर्भाव भाव और प्रतिभा, की सृष्टि कर रसास्वादन का विवेक, विचार और लक्ष्य उत्पन्न करता है। नारी मुकुर बन कर सामने आती है, जिसमें निज शाश्वत स्वरूप लक्षित हो जाता है, और वह उस छाया सी हट जाती है, जिसके साथ ही मन्दिर का सुर्य्योदय

सूचक मंगल वाद्य ध्वनित होता है। जब वह शुभ दृष्टिपात करती है तो कुसुमाकर की नंदन शोभा धूलि पर विलस उठती है। जब कृपा हेतु से ही दृष्टि हटाती है तब मानवात्मा के जाग्रत कवि-कण्ठ कमण्डलु से रस कादम्बिनी बरसा कर त्रिभुवन के मरु में मन्दाकिनी प्लावित कर देती है। मैंने मानव की पुंभूमि इसी शुद्ध मानवी की अर्चना में यह आरती दीपित की है। नारी की स्तुति गाकर मेरा कवि धन्य हो गया है।

जीवन दर्शन और जीवन विज्ञान के निगूढ़ सिद्धान्त, चेतनानन्द मय जीवन सम्पादनार्थ-नारी की अनुक्षण अपेक्षा करते हैं। जहाँ जितना अणु और विराट सत् चित् है वहाँ उतने ही अंश में आनन्द रूप से नारी प्रतिष्ठित है। पृथिवी पर नारी के रूप में प्रभु की आनन्द और रस राशि का ही आनन्द मय, रस मय अवतरण हुआ है। सत्व मय पुरुष जब शुद्ध सत् चित् में प्रतिष्ठित होता है तब 'आनन्द' रूप से अभिन्न होकर नारी अधिष्ठित होती है। जब रजोगुण मय पुरुष मन और बुद्धि में निविष्ठ रहता है तब नारी आंशिक संज्ञा सी भिन्न अभ्युदयित रहती है। जब नितान्त तमोमय पुरुष अधिष्ठान-च्युत इन्द्रियों में ही प्रविष्ट रह जाता है, तब नारी केवल मोहक और उन्मादक बाह्य तत्व सी परिलक्षित रहती है। कहने का तात्पर्य्य कि नारी स्वयं वह शुद्ध सान्द्र तरल ईषद् घन चेतन सत्य है जो स्वयं अपने प्राप्त पात्र के अनुरूप रूप में स्व-स्वरूप दर्शित करता है। नारी के उपयोग प्रयोग पर ही निर्भर है अपना निम्नोर्ध्व आरोह अवरोह। जैसे उषा दर्शन के रसा स्वादन में कारण है अपनी ही दृष्टि, रुचि और प्रकृति, वैसे ही नारी दर्शन के सदसद् प्रभाव भाव में हेतु है जनकी अपनी स्वस्थास्वस्थ मनस्थिति-सिताश्रित मति। तात्विक और निष्पक्ष दृष्टि से देखने से अपने नैसर्गिक और यथार्थ रूप में पुरुष और नारी परस्पर के वास्तविक सत्य परक स्वरूप की उद्भावना के निमित्त नित्यानन्द, रस मय सत्व से सम्पन्न है। शेष सब कर्म, वृत्ति, सङ्ग और संस्कार जन्य हैं। 'नारी' में परोक्षापरोक्ष रूप से इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

जीव के तत्व चतुष्टय में अहङ्कार जैसे संयोजक तत्व है, उसी प्रकार निश्चित रूप से विश्व के तत्व समुच्चय में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के साथ जीव का अभिभावक-संयोजक तत्व है नारी। बाह्य क्षुण्ण क्षणिक सुख के लक्ष्य से परे नारी का चिन्तन, ग्रहण, सम्पर्क और सम्बन्ध यदि नित्यात्मिक, अन्तर दृष्टि परक विवेक और राग संयुक्त हो तो निर्विवाद

ही अभ्युदय और निःश्रेयस के प्रशस्त सरल मार्ग भी समुद्घाटित हो जाएं और जीव में उस पर लक्ष्य की ओर द्रुत अभिगमन की सुशक्ति भी सञ्चारित होजाय। सम्भव है प्रभु के धातु श्रीविग्रह के स्थान पर ध्यान, धारणा, ध्येय की उपलब्धि, इस भगवदीय निर्मित चेतन विग्रह में ही हो जाये। . . . यह बात अव्यवसायात्मिका बुद्धि और सूक्ष्माति निर्गुणा विभु दृष्टि की है—जो कठिनतम है, परन्तु असम्भव कदापि नहीं है। नारी दर्शन में यह दृष्टि सुलभ हो और उपरान्त इस स्वरूप का साक्षात्कार हो—'नारी' में इसी आशा-अभिलाषा की उत्कण्ठा ज्ञापित है। इस रचना का कला कौशल, भले दुर्बल हो, आलोचकों के आग्नेय भले ही मेरे अनधिकृत प्रयास पर क्षुब्ध बरस उठें—परन्तु मुझे 'नारी' की रचना कर आत्मसन्तोष है और इसके अतिरिक्त अन्य कुछ अभिलषित नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर प्रातः स्मरणीय पूज्य पितृ चरण श्रीमन्माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य श्री विजय कृष्ण गोस्वामी जी म० व्याख्यान वाचस्पति वाणी भूषण, विद्या वागीश ने मङ्गल शुभाशीर्वाद प्रदान करने की असीम कृपा की है। यह भी मेरा कम सौभाग्य नहीं है कि मेरे परम श्रद्धास्पद अग्रज एवं विद्यागुरु श्री मन्माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य अभिनव व्याकरणाचार्य्य सर्व शास्त्र, साहित्य, तर्कादि दार्शनिक महा पण्डित श्री रास बिहारी गोस्वामी शास्त्री एम्० ए० की मुद्रण परीक्षा के व्याज कृपा प्रसादिनी एक द्रुति दृष्टि भी इसे सुलभ हो गई है। यदि परमादरणीय पितृव्य श्री पं० सत्यपाल जी शर्मा महानुभाव इस आत्मीयता एवं सौजन्य पूर्वक मुद्रण की यह सुविधा व्यवस्था प्रदान न करते तो सम्भव है पाठकों के पद्म पाणि तक पहुँचने के हेतु इस ग्रन्थ को न जाने कितनी प्रतीक्षा और करनी पड़ती। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मुझे जिन अन्य अनेक सहृदय सुहृदों का आन्तरिक सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त हुई है उन सबके प्रति मैं विनम्र उपकृति ज्ञापन करता हूँ।

विभूति भारती पुस्तकालय,
वृन्दावन।

लेखक
अतुल कृष्ण गोस्वामी



अतुल कृष्ण गोस्वामी

- समर्पण -

मैं अबोध असमर्थ अपढ़ माँ! हीन बुद्धि अविचारी।
मुझ अयोग्य पर हुई अकारण करुणा किरण तुम्हारी॥
ज्ञात न होने दिया दान निज, अविदित हृदय प्रबोधा।
पत्र न लिखना आता मैं कब लिख पाता यह पोथा॥
मुझे तुम्हारी आज्ञा प्रिय है, तब सन्तोष अभीप्सित।
मेरा जीवन धन्य हुआ माँ! गाकर तव महिमामृत॥
माँ! मुझमें जिसने करुणा कर मूर्ति तुम्हारी आँकी।
जिसकी दृष्टि सुधा से सम्भव हुई सहज तव झाँकी॥
वाणी में रस, भाव हृदय में, प्राणों में कोमलता।
जिसने मुझे सदय दी जीवित रहने की सार्थकता॥
-उस ज्योत्स्ना प्रद इस प्रसाद को मैं सादर श्रद्धान्वित-
नित्य निकुञ्जस्थिते! माँ! तुम्हें विनत कर रहा अर्पित॥

२०१४ -
अक्षय तृतीया
वृन्दावन

तुम्हारा —
अतुल कृष्ण गोस्वामी

—— ० ——

विषयानुक्रमणिका

(१) सती। (२अ) श्यामली। (२ब) ग्राम्या। (३) नागरी। (४) वृद्धा। (५) बालिका। (६) किशोरी (७) कोमल कटु। (८) युवती। (९) रूपसी। (१०) दम्पति। (११) शूद्री। (१२) गौर वर्णा। (१३) वियोगिनी। (१४) संयुक्ता। (१५) चित्र लेखा। (१६) सखी। (१७) परकीया। (१८) कवियित्री। (१९) ब्राह्मणी। (२०) क्षत्राणी। (२१) अर्य्याणी। (२२) दाई। (२३) कुरूपा। (२४) मालिनी। (२५) नापिती। (२६) मणि-हारिणी। (२७) रजकी। (२८) श्रमिका। (२९) साविका। (३०) धात्री। (३१) विदुषी। (३२) पनिहारिनि (३३) करुणामयी। (३४) आभीरी। (३५) ननद। (३६) मातृ कक्षा। (३७) श्वश्रू। (३८) जेठानी। (३९) देवरानी। (४०) भाभी। (४१) देवी। (४२) श्यालिका।

जय भारत जननी ॥

प्रकृति पुरुष की कल्प केलि मयि महिमा मयि अवनी ।
सरस, प्रोज्वला, शस्य श्यामला, सृष्टि सरसि नलिनी ॥१॥
ज्ञान और वैराग्य सुतों सह भक्ति यहाँ रमती ।
दिव्य चेतना का दिन जिसमें शुद्ध सत्व रजनी ॥२॥
जीव ब्रह्म माया का शाश्वत पूर्णानुभव प्रद— ।
षड् दर्शन के सद्विवेक से षड्रिपु दुख दलिनी ॥३॥
गंगा, यमुना सी, शत सरि मयि महा सिन्धु अर्चित ।
हिम किरीटिनी, विन्ध्यकिङ्किणी मानवता सृजनी ॥४॥
चौसठ कला, शास्त्र, सन्तों मयि, अखिलाध्यात्म निलय ।
श्रुति, विज्ञान, चतु, षड्, नवरस, सुरसम्पदा धनी ॥५॥
गीत, हर्ष, सौन्दर्य्य, सुधा, मयि, अष्ट सिद्धि नवनिधि ।
षट्ऋतु सेवित, नित्योत्सव रत भव विभूति तटिनी ॥६॥
सर्वान्नौषधि, रत्न, वस्तु, गौ, घृत, पय, हेमाकर ।
उत्तम नर, उत्तमा सुतनु गण, फूलों फलों घनी ॥७॥
व्यापक ध्येय, धर्म, संस्कृति युत विश्व भारती निभृत ।
चिर स्वतन्त्र मंगल मयि मधु मयि मानव की अपनी ॥८॥

जय भारत जननी ॥

कृष्ण हृदय के प्रियतम ठाकुर, श्री राधा ठकुरानी,
इनके पद अभिषेक हेतु यह सञ्चित दृग का पानी।
जो प्रतीक इनकी महिमा की राद्धिभूति अधिकारी,
जय नारी निज युगल मूर्ति की संकुल द्युति अनुहारी॥

मानवी

प्रथम सर्ग

१

सत्यं - शिवं - सुन्दरं - शाश्वत
शान्त सरल निर्मल नित नूतन ।
जयति मानवी चिर ममता मयि
भुवि पावन शुचि मन प्रिय दर्शन ॥

२

जीवन नभ में सुधा वारिधर,
युग प्रभात में उदित रूप रवि।
हे! अनन्त रमणीय रुचिर रस,
अमृत मूर्ति! करता प्रणाम कवि॥

३

निखिल लोक गुरु, प्रति जन आत्मा!
चिर अतृप्त जन, स्वप्न सान्ध्यघन।
तुमसे मधुमयि सबकी रजनी—
मङ्गल मय, सुख मय सबके दिन॥

४

मृदुता, मोह, मधुरता में ऋजु
सकल शक्तियों को आश्रित कर।
करुण पयस्नुत, निज स्नेह से
त्रिभुवन में पुरुषार्थ रहीं भर॥

५

हो सजीव - संहत - मानवता,
पूर्ण पुरुष की पुण्य प्रकृति जय।
मर्त्य लोक स्वर्लोक बना है
स्वर्ग बना तुमसे महिमा मय॥

६

वसुन्धरा के रङ्क अङ्क में,
तुम मयङ्क, अकलङ्क पङ्क हर!।
प्रति उमङ्ग मय राग रङ्ग में,
सङ्ग सदा ऋतु रश्मि अङ्ग धर॥

७

पुरुष सिंह निश्चय भूतल में
सिंह वाहिनी नारी जय।
चपल चाह रसना से तन्मय
चाट रहा चिन्मय पद कुवलय॥

८

लोक कल्प वल्लरि की शुभ फल,
महाकाल की हिम हीरक क्षण।
सुख, सौभाग्य, श्रेय, शोभा तुम,
सृष्टि शीर्ष की कीर्ति आभरण॥

९

अन्तर की लयँ रस आत्मा का,
प्राणों का सुख, यौवन का मधु।
जीवन का सन्तोष, जीव का,
तुम चैतन्य, लोक मङ्गल विधु॥

१०

मन के विषय वासुकी से बँध,
रई बना नर का सुमेरु नग।
हुआ सुरासुर से भव मन्थन
समुदित तुम पद्मा, जग जगमग॥

११

अमित अर्थ मयि ललित व्यञ्जना,
देव कुहक, जिसके कोटिक मन।
स्वयं भक्ति नव महा भाव युत,
काव्य वधू तुम धर नव रस तन॥

१२

योग पीठ, तुम सिद्धि योग की,
तेज तपों का, यज्ञों का फल।
शिल्प कलाओं की प्रतिभा जय,
प्रति विभूति परिमल मय शतदल॥

१३

तव शुभ कृति कर, सफल नियति कर,
अनघ हुआ युग, पूर्ण हुआ नर।
सृष्टि शुक्ति में तुम सम मुक्ता
धन्य प्राप्त कर भव रत्नाकर॥

१४

भव सङ्घर्ष, शान्ति, श्रम पथ पर,
धैर्य्य, प्रकाश, दिशा दर्शन तु . ।
विश्राभोक, प्रगति, गति, सम्बल,
चिर पाथेय, कल्प छाया द्रुम ॥

१५

कुसुम, गुल्म, खग, मृग, युग, जन प्रति–
सहित सुधा सुवर्ण घट, रस ऋतु ।
मदन संपुटी में पद्मार्चित
तुम उतरीं नन्दन की मधुऋतु ॥

१६

वीत तृषा संज्ञा मय घट घट,
घर पर चल आये तुम पनघट ।
स्नेह रज्जु में दृढ़ तर बँधकर,
मग्न प्राण के चिर रीते घट ॥

१७

नित्य वेश नव, अनिश नवल छवि,
युग युग से समीप अनजानी ।
हे ! आलोक मयी ! त्रिलोक में,
सब पर तव सोने का पानी ॥

१८

कण्टक जिसने कोटि बिछाये
रुक सुकुमार तुम्हारे पथ पर ।
मूक सजाती तुम चलती हो
मुक्ता मणि उसके पग पग पर ॥

१९

युग पूजा के सिंहासन पर,
अगरु, कपूर, रचित चल प्रतिमा ।
मुकुल मही पर तुम स्वमर्त्य की,
महिमा मयी अमर्त्य मधुरिमा ॥

२०

जीवन की ऊर्मिल गङ्गा में
प्रेम पाल युत सुदृढ़ तरी तुम।
जग को खड़ी पुकार रही है
नयन किनारे करुणा रिमझिम॥

२१

कोटि कोटि कल कण्ठ कूककर,
गायक वीणा के अनन्त स्वर।
चित्रकार की सुभग तूलिका,
धन्य तुम्हें पा मूर्तिकार कर॥

२२

दृग की लघु सीपों में अगणित,
मोती से जग ढल ढुल जाते।
एक तरल आँसू के कण में,
अमित अमूर्त्त शुभाकृति पाते॥

२३

प्रलय, सृजन, बन्धन, स्वमुक्ति चिर,
यौवन का मन का अनुमोदन।
तुममें जन जीवन का आग्रह,
मदनाज्ञा, विधि का अनुशासन॥

२४

तव स्पर्श, दर्शन से जग के—
कण कण की तंत्री बज उठती।
दृष्टि द्रवित जन मन में शतधा—
चेतन विष्णुपदी द्रुत बहती॥

२५

स्वप्न कल्पना, सुधि चाहों की,
भाव सुरुचि, सुख की पावस सी।
श्रियैश्वर्य्य माधुर्य्य मयी तुम,
मोहन, मादन, की गोरस सी॥

२६

नूत्न जागरण, नव निद्रामव,
नयनोत्सव, प्राणोद्भव अमरण।
प्रति द्वार स्वपद्म पाणि से—
रचतीं तुम शुभ उत्सव तोरण ॥

२७

सब मूर्च्छित, मंज्ञामय प्रति द्रुत,
सब यथार्थ, स्वप्निल सब तन्द्रिल ।
तुममें प्रकट, चराचर गोपित,
तुममे सफल, भुवन धवलामल ॥

२८

प्राणी, प्राणी प्राण प्राण में,
मुखरित तव अनिमेष गुणावलि ।
जग की श्वाँसों में प्रतीकमति,
पूर्व पगों की तुम विरुदावलि ॥

२९

निज चरित्र, चिति, मन की प्रहरी,
चित्राधार, लोक जीवन की।
छवि वय, रस, निधि की कुबेर श्री
तुम माली नरके नन्दन की ॥

३०

जीवात्माएं यथा ब्रह्म से,
तुमसे काव्यात्मा रस स्वास्तिक ।
मधुर रूप के पुरट पौर पर-
कोटि दण्ड धारी नत मस्तक ॥

३१

अति रहस्य सी, रत्न राशि सी,
वस्तु रही हो तुम दुराव की ।
देवि ! हेतु तुम उदय, अस्त का
सकल पूर्ण की, प्रति अभाव की ॥

३२

अनिश उषा में क्षण मुस्काकर,
सन्ध्या में बहु विधि सजधज कर।
निशि में निखर, इन्दु में ढलकर
आतीं रवि से सरसिज पथ पर ॥

३३

जीवन की चातकी चकित हो,
एक घूँट मधु पर हुङ्कारी।
तव अशेष पावन झाँकी पर—,
त्रिभुवन की नरता वलिहारी ॥

३४

तुम जग की अस्तित्व आस्था,
कहाँ तुम्हारी किसमें उपमा ?।
जय तमिस्र मय भव प्राङ्गण की,
पद्म शोभना शरद पूर्णिमा ॥

३५

जगती की त्रिकाल महिमा तुम,
हो त्रिपाद महिमा अम्बर की।
महिमा कौन तुम्हारी जाने ?
महिमा मूर्त्त स्वयं तुम नर की ॥

३६

अति निरुपाधि अखण्ड निजाश्रय,
शान्त तपोवन तपः पूत तुम।
नष्ट जहाँ क्षण रुक जीवों के,
जन्म जन्म के चलने का श्रम ॥

३७

तव विराट नारीत्व सदा से–
कर नरत्व का दान सिहाता।
नर के रीते में वह अपनी–
सुषमा का भण्डार लुटाता ॥

३८

काम शेष पर मन अशेष यह,
क्षीरोदधि से छद्म वेश कर।
भाव स्वर्ग में, गरुड गर्व पर,
लोक लक्ष्मी को लाया हर॥

३९

देवि! तुम्हारी शुचि श्रद्धा को,
मम विश्वास वरण कर लाया।
नव निर्माण प्राप्त कर तुमसे,
तुममें निज निर्वाण सजाया॥

४०

सत्ता, सत्व, प्रकृति प्रवणा पर,
अति द्रुत गति मय तव चरण स्थिर।
अविचल, अविनश्वर आमुख पर–
नर्तित तव बहुरूपी नटवर॥

४१

पुलक भरे श्वासों से भड़ते,
नव यौवन, नवजीवन, नव दिन।
स्वच्छ किया मादक चितवन से,
जग का तम, नभ का सूनापन॥

४२

जिसने कोमल विमल प्रतिष्ठा–
पर, निज पद से पङ्क उछाली।
ढकी उसी के अहित कलङ्क पर–
दिव्य हेम, हिम, हीरक जाली॥

४३

मरघट शव समाज के तन में–
उष्ण रुधिर, तुम प्राण स्पन्दन।
मानव को उसकी संस्कृति को–
जीवित रखने की तुमको धुन॥

४४

लोक लोक के, जीव जीव के,
संसृति के कण कण के सारे।
मेरी इस मिट्टी पर तुमने
अमरों के सङ्गीत उतारे॥

४५

तव अनुकम्पा करती सबके,
विभुतम को, अघ को शुचि कुन्दन।
ममता, करुणा, कोमलता से–
माखन सा, पाहन, हिंसक मन॥

४६

तुम माङ्गलिक अङ्क सी जिसके–
सम्मुख शून्य सदृश शोभित सब।
तुमसे ये गणना में तुम बिन–
व्यर्थ विन्दु से प्रिय! तीनों भव॥

४७

अपने सकुचित, शिथिल स्वरों से–
नारी की महिमा क्या गाऊँ?।
कोमल, पावन, चरण धूलि कण–
चुन चुन अपने शीष चढ़ाऊँ॥

४८

संसृति सङ्घटना, कुल रचना,
राष्ट्र सर्जना, जाति सञ्चयन।
तुम द्रष्टा, स्रष्टा, समष्टि की
व्यक्ति गठन, समाज संयोजन॥

४९

त्विपा अधर पर, मेघ नयन में,
प्रेम सुधा बरसाती हो नित।
पञ्चभूत के अहिरावत पर
तुम सुरेन्द्र सत्ता सी शोभित॥

५०

तुमाध्यात्म की सायुध प्रहरी
अधिकारी प्रवेश पाते पर—
हार अनधिकारी, विमोह की–
कारा में बन्दी होते चिर ॥

५१

हो सबका निज सहज संतुलन,
सबके सत्स्वरूप का चेतन।
आत्म प्रतिष्ठा, निष्ठा सबकी,
शाश्वत जन्म भूमि का दर्शन ॥

५२

तव उपेक्षिता गति विराम से–
राष्ट्र, समाज, पिछड़ जाते जन।
संयत उचित तवाग्र गमन से
सृजनोन्मुख रहता परिवर्त्तन ॥

५३

स्वयं अहिंसा, शान्ति, प्रेम, तुम,
मनोमूर्त्ति जनता की अवितथ।
वर्ग वर्ग की नैतिकता का
तुममें मुक्त सहज ज्योतिष्पथ ॥

५४

दुग्ध, नीर मयि, तुम मराल मन—
की विवेक निकषा सी निर्मल।
सर्जित हुई विश्व सागर पर
अति अनिवार्य्य सुदृढ़ मौक्तिक पुल ॥

५५

पारस सी कञ्चन करतीं सब,
सन्त, मलय तरु सी अपने सम।
कल्प लता, महि कामधेनु तुम—
मन वांच्छित जिससे पाते हम ॥

५६

मानव में जो आ न सका है,
देवि ! वही तुममें विशेष है।
कर पायीं अधिकार जहाँ तुम,
वहाँ न अपना क्षण प्रवेश है॥

५७

तुम्हें विरच निज अन्य कला कृति–
विधि को विरस प्रतीत हुई जब।
मण्डल मिस रवि-शशि शून्याङ्कित,
किया तिमिर पट से वेष्टित भव॥

५८

तुमसे ज्ञात कहाँ से क्यों इस–
सुख दुख पाप पुण्य में बहते।
कबसे ? कैसे ? दाह द्वन्द्व में–
बद्ध मृत्यु जीवन हम सहते॥

५९

देवि ! तुम्हारे ही आश्रय में,
निजादर्श, कैवल्य पला है।
प्राणी को कर्त्तव्य, अभ्युदय,
जीवन को सङ्घर्ष मिला है॥

६०

बूँद-बूँद मैं रुधिर बहाऊँ,
तिल-तिल, घुल-घुल, गल-गल जाऊँ।
उऋण न मैं तव उपकारों से,
मूल्य कृपा का चुका न पाऊँ॥

६१

अति समीप जीवन के तट पर-
इस विराट भूतल, अम्बर पर।
इन्दु नयन का अश्रु सिन्धु तव–
शिरोच्छलित, लय भीत चराचर॥

६२

प्रति युग पुरुष, युगों के प्रति कवि,
तरुण, वृद्ध, शिशु सबके द्वारा।
सम्राटों ने, श्रुति, सन्तों ने,
तत्वज्ञों ने चरण पखारा॥

६३

रति सज्जा, लज्जा सतीत्व की,
छवि, नवत्व, कुल शील, रसोत्सव।
मांस पेशियों में विकचित मनु,
वय वसन्त मन्दार मनोभव॥

६४

प्रत्यय, सङ्कोचों से बोभिल,
परम्परा, प्राचीरों से छन।
पर स्वरूप रत मुक्त प्रकृत तुम
सौम्य पराश्रय में प्रशस्त मन॥

६५

शान्ति सन्धि तुम, शान्ति दूत चिर,
शान्ति सिन्धु, युग शान्ति सुधाकर।
शान्ति वृत्त, चिर शान्ति साचरण,
सृष्टि अशान्त, तवोपेक्षा कर॥

६६

तुम असीम की अमृत परिधि पर,
प्रलय अवधि तक जन सेवी हो।
सुन्दरि! तुम कितनी अद्भुत हो,
कहो मानवी या देवी हो!॥

६७

तव छवि के सायन्तन नभ का–
पुरुष सान्ध्य सर्वोज्वल तारा।
शोभा के विराट सागर का–
वह दूरस्थ विशाल किनारा॥

६८

मुक्त हृदय का तिमिर आवरण,
हुआ जगत् सत् चिन्मय अनुभव।
व्यक्त आत्म चैतन्य हुआ तब,
तव स्नेह छवि दीप्ति मिली जब॥

६९

लोक लोक' आलोक' पा रहे,
तव स्व कोकनद के विकास में।
प्रति अशोक पर साक्षी युग कपि,
अनघ देवि ! तुम असुर पाश में॥

७०

जन्म मरण के द्वन्द्व तटों के–
मध्य बह रही जीवन धारा।
जिस पर निखिल विभूति सिद्धिमय–
बहता स्वर्णिम पोत तुम्हारा॥

७१

मानव मैं, तुम मानवता हो !
आत्मा तुम, मैं दिव्य शुद्ध तन।
हूँ लघु खनिज रत्न, तव नभ का–
खण्ड शरत्कालिक पयोज घन॥

७२

यहाँ विश्व वन में पग पग पर,
खड़ी खोल फण ईर्ष्या व्याली।
एक प्यार करने वाली हो—
बस तुम माखन से मन वाली॥

७३

परखा जब इन्द्रियातीत तव,
पञ्च तत्व संहत प्रकाश को।
निरख सका तुझ सगुण व्यक्त में,

७४

यश काया, तुम हरि की माया,
सिद्धि, मुक्ति पथ की चल छाया।
तुम्हें अनुग्रह में आग्रह में,
मन, आत्मा रस मय ने पाया॥

७५

तर्कोपशमन, विलीन भेद सब,
अग जग की तुम एक इकाई।
तव मुक्ता मय मुक्त मुकुर में,
सबके अन्तर की परिछाई॥

७६

शुभ, सुभाव सब तव स्वभाव में,
संसृति के प्रभाव तुग में लय।
तुम उतराव बहाव मयी के,
नीर न नाव डूबने का भय॥

७७

तव हेमाञ्चल के तल फेनिल,
वर्षा के उडु सा सित पिङ्गल।
तरल, कुरल मय शरदोत्पल सा,
है अनन्त शिशु का शिव सम्बल॥

७८

शून्य सघन मे मेरेपन में,
अमृत तोप अनहद उमगी हो।
स्वान्तः की साधना सरणि पर,
तुम अध्यात्म प्रदीप जगी हो॥

७९

सप्त छिद्र मयि भव वंशी पर,
मूर्त्त मूर्च्छना किसने गाई।
किस महान् ऋषि कवि की कोमल,
काव्य कल्पना वपु धर आई॥

८०

अति निचोड़ प्रति शुचि-सुन्दर का,
संसृति का आनन्द आत्मघन।
नव जीवन में प्रकट दीप्ति मय,
आप्त पूत का, तृप्त शान्त मन॥

८१

यह संसार असार नहीं है,
सार रूप इसमें तुम नारी।
मुझ वैतरिणी तरण तरी को,
व्यर्थ भार भर की है भारी॥

८२

लेना मोह, प्रेम देना है,
क्षमा शील, पौरुष है सहना।
प्रति उपकार प्रवृत्ति, सुरुचि तव,
सुख दे दुख से अञ्चल भरना॥

८३

जो सचेष्ट संयत गति विधि से,
निष्ठा मय विनम्र पग धरता।
सचल तीर्थ नारी आश्रम में,
जीवन्मुक्त पुरुष हो सकता॥

८४

दिव्य शक्तियाँ सभी स्वर्ग से,
उतर मानवी तन धर सुन्दर।
हो पातीं त्रैलोक्य पूजिता—
राधा, सीता, प्रभृति नाम धर॥

८५

निकले कुछ गलके कुछ घुल के,
झलके कुछ तुममें आ छलके।
पलकों में पलके प्रश्रय से,
भार हुए सब हलके फुलके॥

८६

कसी वीन सा, अणु अणु तृण तृण,
शिञ्जित चरण चाप से झंकृत।
प्राण प्राण संलीन, हर्ष नव,
नित नव स्वर नव लय में मुखरित।।

८७

दर्शन के विज्ञान, कला के,
तर्क, भक्ति के चौराहों पर।
वाङ् दिशा, इतिहास मोड़ पर,
तुम वह पथ सी लक्ष्य एक पर।।

८८

नर व्यक्तित्व, कृतित्व, तेज, रुचि,
सत्स्वरूप में सतत तव स्थिति।
कोटि वसन्त अनन्त शरद का;
उजलापन, तुममें अति परिणति।।

८९

जलती जब निरभ्र जन मन में,
अति प्रचण्ड निर्धूम व्यथानल।
बरसातीं दृग से करुणा घन,
श्वासों से शीतल मलयानिल।।

९०

कृतघ्नता वट तल, मद सरिता—
छल तट, जला शक्ति मरघट पर।
स्वार्थ चिता, स्मर निशा, मानवी-
शव, नृतीर्थ के अहं घाट पर।।

९१

निबल, निठुर, निर्धन, अस्थिर को,
नश्वर, निर्भर को, आतुर को।
शक्ति, दया, वित्त, स्थिति, अमरण,
मिली मुक्ति विग्रह श्री नर को।।

९२

पश्चिम पर ज्यों सान्ध्य श्री का,
बहु रूपों रङ्गों में विनिमय।
जन की रङ्ग पीठ पर करतीं–
तुम शत भाव विभावित अभिनय॥

९३

अमर प्यार के तुझ सागर का—
कोटि भुवन व्यापी लघु शीकर।
घायल गति के मुझ पागल की—
गागर भर पाये कितना फिर ?॥

९४

घने तमोमय बीहड़ वन की—
वर्षा सरि के बीच भँवर गत—
निशि के तट खोजी नाविक की,
दिशा द्योतिनी तुम द्युत विद्युत॥

९५

तव शुभ दृष्टि, मधुस्मित से सखि !
नर्त्तित मस्त मदीला भुवि मन।
ज्ञान, स्मृति, अनुभव, आस्वादन,
भावान्वित रीझते रसिक ज॥

९६

समा रहीं सबके अथाह में,
सिहर रहीं समुदित स्वथाह में।
तुम सम्पन्न कूल पर कल मयि,
बहतीं चुप जगके प्रवाह में॥

९७

चटुल चेतने ! मम चिद् घन यह,
प्रेरित चेत गया है तुममें।
सहज हुआ, निज 'अहं' आज 'त्वम्',
प्राण प्रतिष्ठा है तव मम में॥

९८

तुम स्वराष्ट्र दीवट पर शोभित,
मङ्गल मधुर दीप चिर चेतन।
पाते हैं आलोक स्व पथ पर,
जिससे भीतर बाहर के जन॥

९९

देश, जाति, गुण, रङ्ग, रूप, वय,
धर्म, वृत्ति का स्वल्प विचार न।
है अभीष्ट श्रद्धालु हृदय को,
विभु नारी विभूति नीराजन॥

१००

'मातृ भाव' मानवी प्रमुख तव,
भूलें हम न 'मातृ देवो भव'।
वैसे सब रूपों में तुम हो,
तुममें सब रूपों का उद्भव॥

१०१

भ्रान्त न हों नव पथिक मग्न मन,
पार कर सकें दूरी दुर्वह।
नारी मन्दिर के पथ पर यह—
वाणी का लघुदीप जगा रह।

माँ

द्वितीय सर्ग

१

अरुण बिन्दु, कृश माँग, मुक्त-कच, वदन स्मित मय।
दृग प्रफुल्ल, उज्वल ललाट, दैवी छवि, लघु वय।
हृदय पयस्तुत, पुलकित तन, स्वर्गीय वेश शुभ।
मित व्रीडित, शिशु अङ्क, जयति माँ नव ममता प्रभ।

२

स्वर्ण पोत युत सान्ध्य सिन्धु सी श्यामा पुलकित।
मानस सी कमलावृत, जिसमें राजहंस मित॥
शरद रात्रि सी अङ्क लिये यह पूर्ण कलाधर।
पूर्व दिशा, जिसका बालारुण पिये पयोधर॥

३

सबके प्रति अनुराग, विराग लिये अपने प्रति।
अपने में रह सुप्ति बनीं प्रति जन में जाग्रति॥
इसका मौन अखण्ड-विश्व की उत्सव हलचल।
हृदय कारुणिक जल से सिंचकर उर्वर भूतल॥

४

यही तमिस्रा में लेकर लघु दीप निज सजग।
सिन्धु पार के उस अनन्त पथ की रह अध्वग॥
तीर नीर पर तोल चरण, कर लहर निवारण।
मरणोल्लास, सुधा जीवन की करती वितरण॥

५

ध्वंश-रुधिर-शोषण आहों के लोह पीठ पर।
लिये प्रेम वरदान खड़ी है यही चरण धर॥
अविश्वास - अन्याय - कपट - अत्याचारों पर।
थिरक रहा आनन्द इसीका चिर क्षेमङ्कर॥

६

सजा रही मेरा निश्श्रेयस् उर की धड़कन।
पथ की बाधा विनयन करती सकरुण चितवन॥
खोल दिये माँ की श्वासों ने माया बन्धन।
उसका पग पग अडिग, सजग युग युग का जीवन॥

७

माँ लोचन के सजल नील घन सदा छलाछल।
विश्व विपुल अङ्गार पुञ्ज को करते शीतल॥
निज लघु गागर में समेट अगणित मधु सागर।
जग नभ में भरती असंख्य अकलङ्क सुधाकर॥

८

अमिट रूप, अक्षय यौवन, शाश्वत गीतों मय।
सदा एक रस, एक स्थिति, गत जन्म मरण भय ॥
अतुल, अनल्प, अपार, अमृत अज, अदभुत, अतिशय।
शुद्ध भाव माँ का न प्रलय में भी होता लय ॥

९

साध्वी माँ के चरण रेणु कण जिसके सिर पर।
त्रिभुवन के साम्राज्य मुकुट लुण्ठित तत्पद पर ॥
लोह लेखनी छू माँ लोचन का पारस जल।
स्वर्ण वर्ण में लिखले अपना युग युग पल पल ॥

१०

महानाश यह प्रलय तुम्हारी कारा में घिर।
वात - दाह - वर्षा - उल्का - बरुनी से बँधकर— ॥
अधरों पर मुस्कान आँकते लौन भरे व्रण।
खिल पड़ते नव वर्ष, नये दिन, नव निशि, नव क्षण ॥

११

अम्ब पितु-प्राणा सन्तति हित में संतत रत।
सरल-स्वच्छ व्यवहार कुशल-वात्सल्य समूर्जित ॥
दिव्य आचरण में वैदिक ऋषि-सी है अनुपम।
निज चरित्र में अपरिमेय-अग जग में निरुपम ॥

१२

मणि सा अमल, धवल मुक्ता सा, हिम सा शीतल।
तरल ओस सा, घन सा सरल, कुरल सा निश्छल ॥
सान्ध्य राग रञ्जित सुरसरि धारा सा झिलमिल।
माँ का हृदय मृदुल माखन सा, पय सा फेनिल ॥

१३

यही राम का धाम, काम का यहीं पराजय।
यही नाम अभिराम ललाम ललित लीलामय ॥
सुलभ यहीं विश्राम, सफल सब याम इसी थल।
पाने यहाँ विराम लोक संग्राम चलाचल ॥

१४

देव यजन व्रत-नियम कष्ट से कर निशि वासर।
सन्तति के सुख सतत माँगती कर फैलाकर॥
तनिक दुःख में देख कहीं निज सुत को पलभर।
हो जाती वह विकल-तड़फ, उठता माँ का उर।

१५

मानव का आधार, निखिल अधिकार सभी स्थिर।
जिसमें एकाकार, प्यार जयकार रहा भर॥
सहसा लिया पुकार-हार कर रुका पार पर।
बैठा झुक साकार अम्ब के पुण्य द्वार पर॥

१६

सदुख जुटा लेती सुविधा के सम्भव साधन।
स्वशिशु ओर से कभी न करती मैला निज मन॥
उन्हें पूर्ण करने में होती रिक्त जीर्ण तन।
उन्हें बनाने में देती है मिटा स्व-जीवन॥

१७

माँ के अधरों पर ममता के कोमल स्वर गण।
विद्युत घन पर हों मनु पारद के मुक्ता कण॥
हृदय लुभा लेते हैं उसके प्रिय सम्बोधन।
श्यामा वसुधा पर वर्षा में यथा नये तृण॥

१८

उसे शान्ति मिलती देकर निज सब तन मन धन।
तृप्त हृदय होता उसका खोकर अपनापन॥
अपने कारण जीना होता उसे न रुचिकर।
रहती वह सुख सत्व सहित पर की ही होकर॥

१९

लोक कर्म के कठिन चक्र का प्रत्यावर्त्तन।
त्रिगुण सृष्टि के त्रिविध रूप का पट परिवर्त्तन॥
प्रायः सुख दुख पतनोन्नति की पुरावृत्ति नित।
नव प्रतीत होती उसके रङ्गों से रञ्जित॥

२०

काम धेनु यह भरती सबके मुख पय उज्वल ।
कल्प वृक्ष यह पाते जिससे सब वाञ्छित फल ।।
नव नव रत्न प्रकट करती नित यह रत्नाकर ।
अमृत वृष्टि करते जग मरु पर इसके जलधर ।।

२१

मसृण मृदुल वह अरुण तरुण अति करुण वरुणवर ।
सरल-तरल-शुचि-रुचिर-मधुर माँ सुन्दर-सुन्दर ।।
निज आतमा की ज्योति विश्व को करती वितरण ।
माँ केवल तव लोक जहाँ कलि का न अवतरण ।।

२२

नङ्ग धड़ङ्गा ब्रह्म तोतले बोल श्रुतिस्वन ।
शङ्काओं से रङ्क अङ्क का अलङ्कार बन ।।
माँ गोपी के मन वृन्दावन की लीला कर ।
रिझा रहा है प्राण नाचकर और नचाकर ।।

२३

शिक्षक ने निज कार्य्य भार माँ से पाया जब ।
जननी का ही दान जनक की गुरुता गौरव ।।
तव पूजन से चिर प्रसन्न गुरु पितर देव नर ।
तुम अहेतुकी कृपा सदा करती हो सब पर ।।

२४

ग्रीष्म दाह पीड़ित महिपर वर्षा सकरुण गल ।
भिगो भिगो कर ढक देती ज्यों नव दूर्वा दल ।।
भव भय से चिर भीत बाल के मृदुल अङ्क तल ।
फैलाती माँ हेम-प्रभ ममतार्द्र निजाञ्चल ।।

२५

शिशु मयङ्क सा लसित अङ्क में माँ ! तव जाकर ।
निर्भय सोता वरद हस्त की थपकी पाकर ।।
तुम असीम सी उस सीमा के क्षितिज प्रात पर ।
युग का चित्राधार सजातीं अमर रूप भर ।।

२६

क्षेम प्रश्न तव, नीराजन वाद्यों से सुख कर।
कुशल स्वस्ति कल कल मयि मणि सुमेरु की निर्झर।
माँ तव आशीर्वाद साम उद्गीथ अनश्वर।
अभय वचन तव भुवि के सब मधुरों से सुन्दर॥

२७

यह स्वभाव से स्वच्छ, गुणों का गुरु आकर्षण।
विनय दया से रहती सबकी मित्र अकारण॥
प्रकट प्रजापति का इसमें मय रचना कौशल।
माँ पद रेणु पुनीत-स्वर्ग वन्दित वसुधा तल॥

२८

भर कर लोक गरल, समेट कर अमृत कलश विधु।
खाकर निखिलालोक, पान कर अखिल तिमिर मधु॥
शैलोच्चयता-मत सिन्धु का गुरु गहरापन।
नाप खड़ा सम तल पर दृढ़ माँ का अपनापन॥

२९

भूखी रह कर भी प्रसन्न शिशु को दे भोजन।
जीर्ण वसन से शिशु ढकती रह स्वयं निर्वसन॥
उसे सुलाती जाग जाग अगणित निशि अपलक।
शीत, ग्रीष्म, वर्षा में तजती साथ न वह थक॥

३०

कावेरी यह प्रखर पुरुष के तप्त हृदय पर।
बहती शत शत ऊर्मि लिये गङ्गा सी शिर पर॥
सरस्वती सी वेग-वती सबकी वाणी पर।
यमुना सी अनुरक्त लसित सब की मेधा पर॥

३१

निर्मित कर पकवान स्वकर से रसमय नूतन।
स्वयं भूमि पर बैठ स्व शिशु को देकर आसन॥
अमितोत्साह भरी साग्रह करती परिवेषण।
विजन डुलाती मुदित एक टक लख शिशु आनन॥

३२

शान्त सिन्धु ही पी सकता है ज्यों बड़वानल।
धीर धरा ही रहती उर में भर ज्वालाचल।।
मौन हिमालय ही रहता सुरसरी प्रकट कर।
प्रसव व्यथा में रह सकती जननी ही सुस्थिर।।

३३

जननी की कोमल निसर्ग में विधि, हरि, शङ्कर।
लोम लोम में माँ के सुर गण का निवास चिर।।
विश्व-प्रलय में हरि उर में पाता संरक्षण।
यह करती नव माह गर्भ में नर को धारण।।

३४

संसृति कृषि में मानव हल नारी सिञ्चन जल।
दोनों ही अनिवार्य अम्ब के मणिमय में ढल।।
माँ का तन है धरा और आकाश हृदय तल।
उड़ता मैं लघु विहग बीच में मुक्त पङ्ख पल।।

३५

मिला लोक को माँ में आज सत्य, शिव, सुन्दर।
माँ में पाया सकल सृष्टि ने निज सम्बल धर।
माँ के अगणित रूप व्याप्त, प्रति जन माँ की प्रति।
सब में उसके संस्कार सबमें उसकी मति।।

३६

सर्व प्रथम लख पड़ी अम्ब ही जग में केवल।
दीख पड़ा माँ में ही मुझको जग निखिलाखिल।।
माँ की लघु गोदी में था मेरापन आश्रित।
पर मेरे विराट में भी थी माँ कब सीमित!।।

३७

जिसके यौवन का अतीत यह अभिनव शैशव।
यह यौवन शिशु के शैशव का भावी वैभव।।
इसकी अँगुली पकड़ उठा शिशु इतना ऊपर।
जिन से लघु हो रहे चरणतल भूधर अम्बर।।

३८

जो करती प्रतिकार न उसका अल्प अपेक्षित।
तुममें सब का सत्व-धर्म-हित-सदा सुरक्षित ॥
कर्त्री, धर्त्री, यह धात्री, समर्थ, सर्वाधिक।
किन्तु बनाया नहीं पृथक् अस्तित्व निज तनिक ॥

३९

दूर निकट के अमित बन्धु बान्धव जन में घिर।
सुख दुख में प्रति क्षण पुकारता माँ ही माँ नर ॥
नयन मूँद, कर ध्यान-हृदय में-माँ का दर्शन।
होता किस अखण्ड नव जीवन का उद्घाटन ॥

४०

नयनों में शुभ शकुन, कुशल जिसके होठों पर।
बन्दी जिसमें हर्ष, लोक शृङ्गार रहा कर॥
भाग्यवान मैं, आज धन्य मेरा शुचि अन्तर।
पग पग पर वरदान बिखरते माँ के जिस पर॥

४१

इस अनन्त संसृति के क्रम तुमसे आलोकित।
जिन पर चल हो लक्ष्य-सिद्धि वे पथ पद चिह्नित ॥
शान्ति, श्रेय, सङ्गीत, सुधा, सौन्दर्य, रस विपुल।
घनानन्द, यौवन, जीवन, द्युति माँ में अविकल ॥

४२

म्रियमाणों को प्राण, त्राण निर्बल को देकर।
नृत्य चराचर में भरता उसका उदार स्वर ॥
पा लेता प्रति युग तुमसे युग पुरुष एक नव।
होता महा मानवी का भी तुमसे उद्भव ॥

४३

कितना अक्षय धैर्य-प्रद माँ का आश्वासन।
साहस देता है अनल्प उसका उद्बोधन ॥
माँ का प्यार दुलार सृष्टि का शुभ सम्मोहन।
सब निधियों से पूर्ण सदा माँ का कुबेर मन ॥

४४

तुम पयोधि, ममता अहि, क्रीड़ित शिशु नारायण।
तुम विकसित सरोज - राजित बालक चतुरानन ॥
आधि व्याधि - बाधा - चिंता - वह सब लेती हर।
एक बार पीड़ित सिर पर धर हेम वरद कर ॥

४५

अहा ! यशोदा कर नवनीत लिये सह मोहन।
यह कौशल्या मुदित अङ्क भर रघुकुल नन्दन ॥
देवहूति यह तनय कपिल से सांख्य श्रवण रत।
अदिति-भुवन पति वामन बन जिसके आगे नत ॥

४६

सुरसरि सी पावन, शशि शीतल, सरल धेनु सम।
दिवि सी सप्रभ-घन सी उदार सबकी प्रियतम ॥
मुक्त-बद्ध हे ! विरत ! लीन ! जन जन्म मरण मय।
माँ के मन मन्दिर में तुम स्वतन्त्र अकुतोभय ॥

४७

सुन्दर है आकाश नयन में बन्दी प्रति पल।
मोहक है वह सिन्धु नेत्र में बन मुक्ताहल ॥
अलकों में निशि पुलक, अधर युग पर अरुणोदय।
माँ ममत्व में बरस रहा घिर मेघ अमृत-मय ॥

४८

शिशु की क्रीडा-लीला में व्रीड़ा मयि हो लय।
विस्मृत निज पीडा कर देती स्वर्गिक सुख मय ॥
शिशु सह शिशु सी होकर तुम होतीं अनुरञ्जित।
यह वात्सल्य शतक गीतों से होता मुखरित ॥

४९

स्थूल - सूक्ष्म - लघु-बृहद-सभी के भीतर बाहर।
अनिल-अनल-जल-थल-नभ-दिशि-मन-काल भेद कर ॥
त्रिगुण-त्रिगति-इति-अथ-मय-शत छाया माया पर।
माँ में ही लय उदय हुआ-जीवैक्य-जगस्थिर ॥

५०

चन्द्र खिलौना दिखला बहलाती शिशु क्रन्दित।
चुप होता लख प्रेम कान्त मुख पर शशि बिम्बित।
मातृ क्रोड पाने रोता शिशु मचल-विकल मन।
उसे चाहिये वह, न तुष्ट हो पा इन्द्रासन॥

५१

शिशु का हास तुम्हारी संस्मित एक स्पन्दन।
कर देता भव विषम निशा का तम उच्छेदन॥
बालक की कङ्कण किङ्किणि में सुस्पन्दित मन।
सरल मानवीय सद्भावों का मूर्त्त संगठन॥

५२

अहा! सरल ममतार्द्र तुम्हारा कल कल छल छल।
शत शत रस प्रपात धारा सा ऊर्मिल उज्वल॥
किरणों का फेनिल तरलायित प्रतिभ सार नव।
स्व स्नेह स्नुत अमृत दुग्ध यह मातृ उरद्रव॥

५३

शिरा शिरा का रुधिर, शुक्र, मज्जादिक का रस।
मेधा की निज शक्ति-पुरुष का शाश्वत पौरुष॥
अंगों का सुगठन अन्तर भावों की संस्कृति।
मानव की आकृति माँ के पय की है परिणति॥

५४

जीवन का विश्वास-श्वास का सुरभित मन्थर।
प्राणों का उल्लास-हास के मधु का सागर॥
चलने का उत्साह-डटे रहने का साहस।
पय का प्रकट प्रकाश सुकृत के सुकृतों का यश॥

५५

यह ललाट की चमक, नयन का अमृत ज्योति घन।
यह कपोल कुङ्कुम-अधरों का पाटल कानन॥
यह स्वरूप की शरद-अंग का उभड़ा यौवन।
मातृ दुग्ध कृत प्रति उत्सव मन के संयोजन॥

५६

स्वात्मीय, सर्वस्व, सर्व मयि, सत्सर्वाश्रय।
लोक हृदय साकार, लोक का मूर्त्त अभ्युदय॥
पय विभावती, सद्विभूति माँ, विभावरी वत्।
करती शशि मुख से शत करुणा किरण प्रसारित॥

५७

माँ के प्रति रह क्रूर कृतघ्न-कुलघ्न एक सुत।
अपर सदा सर्वात्म भाव से माँ सेवा रत॥
उभय सुतों के हेतु तुल्य माँ की मंगल मति।
किन्तु सदय सविशेष मूढ़ खल बालक के प्रति॥

५८

जो स्वजाति के सहज धर्म से हुआ पराङ्मुख।
विदुला सी कर्त्तव्य मार्ग पर करती उन्मुख॥
माद्री सी दे विदा रहे कुन्ती सी प्रेरक।
माँ मदालसा सी शुभ चिन्तक मार्ग प्रदर्शक॥

५९

द्वेषभाव सबके उर प्रायः पर उन्नति पर।
इष्ट अम्ब को लोक वन्द्य हों हम लोकोत्तर॥
उद्यत निज बलिदान हेतु वह सुत के कारण।
जाति राष्ट्र हित में कर देती वह भी अर्पण॥

६०

लक्ष्मी का ऐश्वर्य्य-शची के दुर्लभ वैभव।
अन्नपूर्णा कोष—भारती के विद्यार्णव॥
महाशक्ति की शक्ति, अप्सराओं के यौवन—
से, सम्भव क्या माँ ममता कण का मूल्याङ्कन।

६१

हरि सी विग्रहवती, भक्ति यह हरि की विग्रह।
है विरिञ्चि पद तुच्छ प्राप्त कर मातृ अनुग्रह॥
मातृ अर्चना युक्त लोक में मन्दिर गृह गृह।
मातृ निष्ठ जन का अनिष्ट क्या करें नवग्रह॥

६२

स्वर्ग तरणि माँ चरण तरण को भव करुणालय ।
निज अक्षय मणि दीप तिमिर जिससे मन का क्षय ॥
कोटि वर्ग-अपवर्ग मातृ पद पर न्योछावर ।
जननी ही निज तीर्थ, प्रकट जिससे तीर्थङ्कर ॥

६३

सफल हुआ संगीत, काव्य का चयन कलेवर ।
कला धन्य-प्रतिभा कृतार्थ-सार्थक समस्त स्वर ॥
पुण्य हुआ प्रत्यक्ष, धर्म निखरा-मति भास्वर ।
जीवन है चरितार्थ मातृ महिमामृत पीकर ॥

६४

प्रेम परम पुरुषार्थ, अर्थ करुणा सर्वोत्तम ।
सेवा ही परमार्थ, स्वार्थ परहित का उद्यम ॥
योग-यज्ञ-तप-मौन, सत्य ही धर्म कर्म हरि ।
निष्ठा ही सत्प्रकृति, पूज्य माँ ही सर्वोपरि ॥

६५

मन में भक्ति, शक्ति आत्मा में, लक्ष्मी कर पर ।
सरस्वती वाणी पर, बैठी मुक्ति चरण धर ॥
माँ का सत्य सरल सुन्दर है-माँ का शुचि उर ।
माँ का भाव सहज मंगल मय, माँ अविनश्वर ॥

६६

माँ पद रज कण मुकुट पहिन ज्योतिर्मय हिम नग ।
माँ के गंगाजल में धुल धुल उज्वल अग जग ॥
माँ का पावन लोक-शोक कुछ-टोक न किञ्चित ।
है सर्वत्रालोक, लोक पथ मुक्त—शोक गत ॥

६७

मातृ विरोधी रह सकता कब कहाँ सुरक्षित ।
धीर वीर गम्भीर सजग इसके अनन्त सुत ॥
दिन मणि की आलोक रात्रि सी सदा सुहागिनि ।
चरण मलय से लिपट मुग्ध माया की नागिनि ॥

६८

लोभ जनित अस्थिरता, काम जनित चञ्चलपन ।
स्वार्थज अघ, मोहज तम, व्यवहारिक रूखापन ॥
राग द्वेष कृत लघुता, वृद्धि जन्य मिथ्यास्मय ।
मातृ हृदय सु पुनीत-न जिसमें तनिक लोक भय ॥

६९

उस असीम को तोलें, क्षुद्र सीमाओं से तुल ।
अनल धरी के सचल भाव निष्ठा से बोझिल ॥
मानव का कङ्काल चिता की ध्वस्त भस्म पर ।
नर्तित माँ का गान अस्थियों में अर्चित कर ॥

७०

मधु, पय, सित, घृत, अमृत, कल्प पादप फल, शर्कर ।
गीत माधुरी-कविता रस, पिक स्वर, वनिताधर ॥
माँ इस एक वर्ण से अधिक कहाँ किसमें रस ।
है त्रिभुवन किञ्जल्क सार युत मातृ उर कलश ॥

७१

फूलों के अभिनन्दन, पल्लव के प्रणाम शत ।
स्वयं समय के अभिवादन, ऋतुओं के स्वागत ॥
व्योम वन्दना, सिन्धु यजन, महि गान, गिरि स्तव ।
मानव में रवि शशि करते नीराजन माँ तव ॥

७२

आद्या प्रकृति प्रधान, सच्चिदानन्द मयी शुभ ।
सतरङ्गे सुर धनु सी उसकी कीर्ति दिव प्रभ ॥
सद्भगिनी - सत्कुल कलत्र, सद्दुहिता - सत्सुत ।
नित्य सत्य मातृत्व सभी में सदा अवतरित ॥

७३

सर्व समन्वय, सर्व समर्थन, साम्य सर्व दल ।
कवि सौन्दर्य्य, दार्शनिक सत्य, सन्त का मङ्गल ॥
विदु का तर्क, सरल का निश्चय, पर का विस्मय ॥
जय मातृत्व अनन्त - सान्त - सर्वांश - सर्वमय ॥

७४

पिता धैर्य, माँ क्षमा, शान्ति सखि, वहिन दया चिर।
स्वजन यमादिक, वन्धु दान हित, पति परमेश्वर॥
लाज वसन, ज्ञानान्न, भाव जल, धर्म सदन मित।
प्रेम योग कर प्रसव करे माँ एक सत्य सुत॥

७५

मातृ दिवा का भानु, निशा का राका शशि सुत।
वाह्य भुवन द्युति मय करते निज अस्त उदय रत॥
पर नव कुक्षि प्रसूत परम तेजस्वी बालक।
एकाकी ज्योतित रखता त्रिभुवन युग युग तक॥

७६

शील सुता का रूप, तुष्टि से भगिनी सत्कृत।
लज्जा युक्त वधूत्व लोक में होता पूजित॥
उत्सर्गों में साध्व शुद्ध नारीत्व निरन्तर।
सत्सन्तति से सहज पूर्ण मातृत्व धरा पर॥

७७

सिन्धु-इन्दु, हिमगिरि, सुरसरि, प्राची से दिन कर।
हो सकते महान् माँ के ही सुत महान्तर॥
सन्तति दर्पण स्वच्छ, अम्ब की शुचि छायामय।
सन्तति का प्रति पग प्रतीक मत् माँ का परिचय॥

७८

ममत्व विन स्वर्ग यन्त्रणागार निरयवत्।
माँ की ममता जहाँ प्राप्त है वहीं स्वर्ग नित॥
लघु प्रकाश में, कृश स्वरूप में, सीमा में मित।
किन्तु विश्व के अणु अणु में वह जीवित जाग्रत॥

७९

मातृ जाति की, वधू वंश की कीर्ति वनी रह।
दुहिता के प्रति अतः अधिक चिन्ता करती वह॥
सुत प्रति उद्यम अधिक भार रक्षा का उस पर।
किन्तु सुता सुत प्रति न तनिक अन्तर उसके उर॥

८०

क्रमशः जैसे आता दुहिता में नव यौवन।
वह सम्बन्ध निमित्त बनी रहती उत्सुक मन॥
देकर उसका हाथ किसी सत्पात्र पाणि तल।
थम पाता है माँ के अन्तर का कोलाहल॥

८१

सुता विदा का वह अनिवार्य करुण कोमल क्षण।
मातृ हृदय में कसक भरा चुभता मर्म-व्रण॥
ममता का वह सिन्धु ज्वार भाटा मय चञ्चल।
भरती जिसकी लहर सभी के दृग जल संकुल॥

८२

परम तुष्टि, परिपुष्टि, लोक की तृप्ति, दीप्ति सब।
प्रति युग का इतिहास तुम्हीं से पाता गौरव॥
लोकाराध्य, उपास्य, इसी का हो पूर्वार्चन।
मातृ देवता प्रति न करें क्यों स्व हवि विसर्जन !॥

८३

दाने चुन चुन चुगा बाल पुलकित खग माँ अति।
गौ का कितना भाव प्रकट रहता स्व वत्स प्रति॥
कूर्म अम्ब का ध्यान अहा ! शिशु में लोकोत्तर।
इसी भाव में लीन व्योमचर-जलचर-थलचर॥

८४

नव स्नेह विह्वल करती कोमल आलिङ्गन।
शिशु तन लघु मुक्ता से होते लसित दुग्ध कण॥
मन्दस्मित मय, अरुण राग सा माँ का चुंबन।
शिशु कपोल कोंपल पर मनु पाटल की विकचन॥

८५

दुख से हर्ष, असद् से सद्, तम से ज्योतिर्मय।
यह अधर्म से धर्म, मृत्यु से अमृत निरामय॥
कटु से मृदुल, पाश से मुक्ति, निरस से रस पर।
उठी मर्त्य से वह अमर्त्य पर लोक पाणि धर॥

८६

यह आशा का केन्द्र, गहन वन में प्रशस्त पथ ।
गहरा सिन्धु में नाव, गगन का दीप्त वायु रथ ।
मधु स्वप्नों का लोक, डूबतों का आश्रय तट ।
माँ है भव के नव पथिक का शुचि छाया-वट ॥

८७

मिला सदा शिव है हिमाद्रि कन्दर में तप कर ।
सुन्दर को पाया समुद्र की लहरों में घिर ॥
सत्य हुआ साक्षात् परीक्षा की ज्वालार्चित ।
मिला उसे पूर्णत्व पुण्य मय जननी बन कर ॥

८८

कुछ रङ्गीन क्षीण रेखाओं में क्षण क्षण छल ।
वर्तमान यह गत अतीत भावी की शृङ्खल ॥
लोक चित्र पट पर करती मानवता अङ्कित ।
मानव से करती विराट भव भाव अलंकृत ॥

८९

अमृत कलश युत तेज पुञ्ज धन्वन्तरि सी सित ।
शरच्चन्द्र सदृश सजल श्याम घन घटा समूर्जित ॥
ब्रह्म कमल उत्पत्ति काल की विष्णु नाभि वत् ।
गर्भवती जननी होती पृथिवी सी शोभित ॥

९०

झंझानिल से पुलक श्वास का शीत विमोहन ।
रुद्ध कण्ठ में सजा रहा गीतों का उपवन ॥
अरे निकट का निकट, दूर का दूर भाव नट ।
सदा रिक्त का रिक्त पूर्ण का पूर्ण मातृ घट ।

९१

निविड निराशा और दुराशा के उन्मन्थन ।
अस्थिर विषय प्रवृत्त तमोमय ओ मेरे मन ! ॥
क्षुद्र क्षणिक यह देह-विकृतियों का आच्छादन ।
मुक्त्युपाय, उद्धार मार्ग माँ का पद वन्दन ॥

९२

पलकों के संगीत-अधर के नव कोमल स्वर।
उर के स्पन्दन मदिर, श्वास के सुरभित मन्थर ॥
शिर द्युति तन्तु कणन-अलक अलियों के गुञ्जन।
पय के मिस चिर बहा सभी में स्व माँ स्नेह घन ॥

९३

लोक सत्य में प्राण प्रतिष्ठा आत्मदान कर।
नव संस्कृति का शिला न्यास मानव की महि पर ॥
संसृति के विकास में कृत चिर अनुष्ठान तुम।
तुमसे रोपित, फलित, पल्लवित-कुसुमित भव द्रुम ॥

९४

दूरी से भुज बाँध, निकटता से चिर हट कर।
कर का पंछी, त्याग व्योम खग पर ललचाकर ॥
प्रकट सत्य को लाँघ, कल्पनाओं में बह कर।
कामधेनु माँ के समीप भी रहा रिक्त नर ॥

९५

जीवन के दिन की उज्वल आतप मयि दिन कर।
माँ है विभावरी की शीतल शान्त सुधाकर ॥
सुत स्नेह में दृग के सुख नक्षत्र झलकते।
माँ शोभित राका-सन्ध्या सी सुख स्निग्ध चिर ॥

९६

मातृ तेज कर उदित विष्णु के नाभि कमल छल।
माँ स्वरूप सत्ता सागर का विन्दु त्रिसुर बल ॥
माँ उत्सव-विग्रह ईश्वर की, प्रतिनिधि जग में।
माँ में भुवन श्रेय-पुण्यों का पक्व मिष्ट फल ॥

९७

अति दुर्बोध विषम त्रुटियों से, घनतम तम से।
भुवि विवेक पथ, शान्त शील का कर शुभ समुदय।
दिव्य तुम्हारी अखिलातमा के विभु विकास में।
जीव जीव कर रहा चेतना, चेष्टा सञ्चय।

९८

सम्भव सुलभ देव दुर्लभ वैभव तुमसे चिर।
अभिनव रस रत्नों मय शुचि छवि का क्षीरार्णव ।।
भव में सुख सौरभ का विमल वसन्तोत्सव तुम।
देवि ! तुम्हारा इस धरती को है अति गौरव ।।

९९

विश्वासों की कुरल, भाव की अनुकूलानिल।
तुम पुण्यों का स्रोत, पोत श्रद्धा का मानव ।।
सुनते सुनते गीत तुम्हारी शुचि श्वासों का,
कौन जानता प्राण लक्ष्य तक जा पहुँचे कब ? ।।

१००

ऊर्मिल पारावार सुखद संसार प्यार मय।
पुष्ट देह, मन तुष्ट, लिये सबका सर्वोदय ।।
मम प्रति आस्था सँजो हृदय में मणि सी दुहिता।
जीवन तट पर आई माँ रत्नाकर से बह ।।

१०१

आज बरसने उतरा माँ ममता का नव घन।
मुझमें बिखरा पिक का राग, शिखी का नर्त्तन।
माँ का मधुर प्रभात खिला मेरा सरोज मन।
हुआ वेणु मम स्वरित मातृ यमुना के स्व-पुलिन ।।

दुहिता

तृतीय सर्ग

१

गत शैशव की शुचि सुधिवत्,
संस्मित सी द्युत, पय सी सित।
स्नेहस्तुत उर पर राजित,
जय दुहिता उषा नवोदित॥

२

दर्म्पान रति शरत्सरसि की,
सद्योत्फुल्लित प्रथमोत्पल ।
शृङ्गार सुधार्णव की यह–
नव शुक्ति मुक्त मुक्ताहल ॥

३

सम्पूर्ण पुरुष की प्रभुता,
नारी की विभुता गुरुता।
दुहिता में हुई समाहित,
अग जग की निजता, ऋजुता ॥

४

होना मानव मुख उज्वल,
संसार श्रेय मय पावन।
अभिमान भूमि, गौरव पथ,
जन त्रिकुल कीर्ति का द्युति घन ॥

५

प्रद्यारुण, सुताभरण की,
किरणों का कल्प प्रसारण।
जागरण सुधा से करता,
निज तिमिरावरण निवारण ॥

६

शशि उडु मय नभ जिसका मन,
प्रति जन जीवन चिर आहर।
धरती की विभु काया की,
दुहिता आत्मा अविनश्वर।।

७

विलयोदित होतीं नभ पर,
क्रम किरणें जिसके कण की।
यह इन्दु, कला लघु जिसकी,
शशि शेखर ने धारण की॥

८

सागर ने भीत प्रसू के—
अन्तर में इसे लुकाया।
पर आज सुरासुर से छिप
हमने स्वभाग यह पाया॥

९

प्रमुदित अग जग के जन मन,
प्रेरित युग युग के प्रति कवि।
माँ के अञ्चल से समुदित,
यह दुग्ध धौत अदभुत छवि॥

१०

हर्षावधि, परिधि सुकृत की,
गति, विधि स्वरूप शोभा सुधि।
दधि धवल, उदधि गहना यह,
जननी के प्राणों की निधि॥

११

संसृति के मख मण्डप में,
आविष्कृत सर्जन अभिनव।
मानव के रङ्ग स्थल में,
यह नव जीवन का उत्सव॥

१२

शत शरदों का उजलापन
कोटिक वसन्त मधुरासव।
यह मातृ अङ्क में विलसित,
अगणित स्वर्गों का वैभव।

१३

आभा, शोभा, प्रतिभा का,
शिव, सत्य, अमृत सुन्दर का।
शैशव मिष प्रकट समूर्जित,

१४

युग, वर्ष, निमिष, क्षण, निशि, दिन,
हेमस्मित, मधु से उजले।
इसकी पावन पद रज से,
मम श्वास श्वास घट मँजले॥

१५

दम्पति की आशा का फल,
अभिलाषा की रस परिणति।
अभिव्यक्ति उभय के सुख की,
दो प्राणों की एक स्थिति॥

१६

मधु ऋतु का खग-कुल कलरव,
होरहा समाहित घर में।
गिरि नद सा मुखर, मुकुर सा—
शैशव मधु निर्झर उर में॥

१७

ममता की मोहिनि, मोदिनि,
करुणा की कुहकिनि, कूजिनि।
कामना सुधा की दोहिनि,
है सुता कृपा कादम्बिनि॥

१८

सुरुदन, सुहसन, सुवचन की,
सुरभित सोने की कारा।
इसकी सुधि रेशम से बँध,
मन ने विवेक बल हारा॥

१९

खिले तारों से शशि से,
धूली पर सोकर सन कर।
धरती ऊपर नर्तित है,
पद के तल गाता अम्बर॥

२०

प्राणी के आत्माजिर में,
यह जीने का सुख उत्सव।
यौवन की घन हल चल में
निज आत्म तुष्टि का वपु नव॥

२१

इस दर्पण में प्रतिबिम्बित,
जिसने अविनाशी देखा।
उसने संसृति में खींची,
सौभाग्य श्रेय की रेखा॥

२२

आनन्द अलौकिक लहरी,
हो रही चेतना बहरी।
आलिङ्गन में उलझी शिशु,
सौन्दर्य्य साधना गहरी॥

२३

उपरान्त मिलन के जिसकी,
चाहों में तन्मय दम्पति।
यह दिव्य गृहस्थी की है,
शाश्वत विभूति, दिव्य स्थिति॥

२४

इन तुतलाते बोलों में,
गुन गुन करता सा मधुवन।
चरणों के लघु शिञ्जन में,
रुन भुन करता ज्योतिर्घन॥

२५

यह साधु गृही के घर में,
अक्षय मणि दीप प्रसाधित।
त्रिभुवन के यश मन्दिर पथ–
इसकी छवि से आलोकित॥

२६

मानव के नियति गगन पर,
यह प्रेम पूर्णिमा का शशि।
वसुधा पर मुग्धा विलसित,
सौभाग्य सुधा प्रभ सुखनिशि।

२७

कौमार्य्य पञ्च कन्याओं—
नव कन्याओं का नैजस।
यह अत्रि कुटी का संहृत,
अमरों का शैशव तप वश॥

२८

है इस अपूर्ण लघुता में,
पूर्णता महत्ता गोपित।
इस मिप मानव की संस्कृति,
सन्ततियों में आरोपित॥

२९

भव प्रलय, विलय के जल के—
अश्वत्थ पत्र का सम रस।
अप्रकृत-अनादि-सर्वग शिशु—
अवतरित हुआ दुहिता मिप॥

३०

रस भासमान रहता है,
यह उद्भासित रहती है।
भव की इस भास्वरता को—
रुचि सम्भाषित करती है॥

३१

सित शुक्ल पक्ष सी क्रमशः।
वात्सल्य परिधि से बढ़ती।
यौवन की मधु बेला के,
नव उज्वल रस से सनती॥

३२

पाने का कभी न होता,
लव लोभ सम्वरण इसका।
खोना भी हो जाता है,
आनन्द उपकरण रस का॥

३३

अति मानव की महिमामयि,
शाश्वत मङ्गल मयि नारी।
जय ज्योतिर्मयि, चिन्मयि चिर,
सुन्दर शिशु मूर्ति तुम्हारी॥

३४

तब स्वर्ग सुधा की गगरी,
बदली सी छलका करती।
युति लोल ललित लीला से,
विभु आत्मा चिलका करती॥

३५

केतकी कौमुदी की दिशि,
कैरवी माधवी का पथ।
पाटल, उत्पल अटवी से—
तुझ भाव भैरवी का रथ—

३६

रुकता कवि की कुटिया पर–
उल्लास नया भरता सा।
बढ़ता युग की श्वासों पर–
जीवन जय की सरिता सा॥

३७

सबके निज बहु भावों में,
तव विविध विभूति बरसती।
सब काल तुम्हारी शोभा,
मन के संगीत परखती॥

३८

कायस्थिति का परिवर्त्तन,
भाव स्थिति लांघ न पाता।
प्रति रूप तुम्हारा प्रति पल,
प्राणों को अतिशय भाता॥

३९

प्रतिमा लघु, गुरु, सित, श्यामा,
पर रञ्च न देव विपर्य्यय।
बहु रूप, बहु स्थिति, वय में,
तव चिद् व्यक्तित्व समन्वय॥

४०

उतराव, चढ़ाव प्रकृति निज,
चिह्नित चर्चित रखती है।
तव प्रति बढ़ाव की द्रुत गति,
गोपित, वेष्टित रहती है॥

४१

अनहद, जन मन मे वादित,
शान्तिप्रद, उन्मद जय दर्प।
तुझ अनिश पुण्य की थाती,
दम्पति ने पायी तप तप॥

४२

सन्ध्या के घन कुंकुम सा,
सहसा कैशोर्य्य विलसता।
अभिभावक गण के मन में,
चिन्तन का नव पथ खुलता॥

४३

उत्कर्ष निखरता रहता,
उत्सर्ग पनपता अविरल।
मौलिक आदर्श उजलते,
जाते सङ्घर्ष नये ढल॥

४४

आनन्द उच्छलित ऊर्जित,
संगीत नयन में प्लावित।
प्राणों से प्रेम छलकता,
सौन्दर्य सुधेन्दु नवोदित॥

४५

माँ स्नेह मथित सागर की,
तुझ कौस्तुभ को कर धारण।
कुल यश सहस्र-मुख-अहि-पर,
तव पितु लगते नारायण॥

४६

चिन्मय, अकुतोभय, अक्षय,
सर्वाश्रय, सर्व निलय हो।
हे! अमृत सुते! संसृति में,
सर्वत्र तुम्हारी - जय हो॥

४७

तुम बरसातीं धरती पर,
तन, मन, यौवन से कञ्चन।
प्रति चरण उगाता पथ पर,
मधु ऋतुओं के पाटल वन॥

४८

सन्तोष, क्षमार्पण आर्जव,
सौभाग्य, विनय, कौशल द्युत।
तव शुभ गति के अनुगत, शुचि,
तप, सत्य, दया, पद का द्रुत॥

४९

हिमनगजा शुचि कर जन को,
तन हीन पठाती सुरपुर।
मानवजा तुम रच देतीं,
शत स्वर्ग यहीं मिट्टी पर॥

५०

सम्पूर्ण त्याग मयि तव गति,
सर्वस्व हरण में सक्षम।
तव ग्रहण परम मंगल मय,
तव दान शुभे सर्वोत्तम॥

५१

समता, ऐश्वर्य्य, तितिक्षा,
संयम विवेक आस्तिकता।
गाम्भीर्य तेज, साहस, बल,
तुममें स्वरूप की स्थिरता॥

५२

नव यौवन, मन मधुवन में,
निज नया रास रचता है।
इसका छवि मुकुल स्वपर तव,
मृदु लज्जाञ्चल ढकता है॥

५३

छू प्रथम मेघ का जल कण,
गन्धों से रेणु महकती।
नव वय शृङ्गार निरख माँ,
चाहों से चटुल चिलकती॥

५४

आभरण शील, मर्य्यादा,
आवरण, सगुण, मित भाषण।
रह सदाचारिणी करती,
पालन गुरु जन का शासन॥

५५

घटता बढ़ता रहता शशि,
यह सहज सतत बढ़ती द्रुत।
निश्चित लक्षों की इति पर,
नव दिव्य लक्ष्य रचती नित॥

५६

प्रति जन का सरस कुतूहल,
उत्सव मय भव कोलाहल।
कुटिया की चहल पहल हो—
तुम राज महल की हल चल॥

५७

पिक गृह सश्रम शिशु पलने,
होकर समर्थ उड़ जाते।
जन कर, पालन, पोषण कर,
हम कहाँ तुम्हें रख पाते ! ॥

५८

अति नये अपरिचित कर में,
अस्तित्व विसर्जन तव कर।
निश्चिन्त हमारी आँखें,
चिन्ताओं से जातीं भर॥

६९

जब नये भाव में रस में,
तुम खो, खपतीं, निभ जातीं।
गत मधुर स्मृति, अति ममता,
कितना सबको कलपाती॥

६०

चिर कालिक विदा तुम्हें दे,
अधिकार, प्रभाव हटाते।
फिर दूर पराये से रह,
सत्कार, दुलार जताते॥

६१

उस करुण विदाके क्षण में,
विह्वल विरक्त हो जाते।
आसक्त कहो फिर कितनी,
मर्मान्तक पीड़ा पाते॥

६२

नव स्वर्ण कलश से प्रतिपल,
जीवन का सत्य छलकता।
इस ओर तुहिन कण झड़ते,
हासाम्बुज उधर विकचता॥

६३

पर घर के जीवन रण में,
सुख दुख के अभिनय कितने।
तुमको करने पड़ते हैं,
अगणित स्वरूप सखि ! अपने॥

६४

तुम हालाहल प्रति जन का,
निज प्राणों में भर पीतीं।
बिन गिला उपेक्षा सह कर,
कर्त्तव्य धर्म से जीतीं॥

६५

नारीत्व प्रस्फुटित तुम में,
नारी का सार समाहित।
दुहिते ! तव पुण्य प्रगति की—
सब ओर दिशाएँ विस्तृत॥

६६

अग जग के भीतर बाहर,
सब ओर तुम्हीं विभु दर्शित।
नारी ! नर निज नाड़ी में—
तव विद्युत गति लख विस्मित॥

६७

इन्द्रियातीत योगी की—
सर्वत्र व्यापिनी ध्वनि हो।
विष विषय विदूषित भव के,
विषधर की मंगल मणि हो॥

६८

पितु माँ के चिर पुण्यों ने,
तप ने, सौभाग्य मुक्त ने।
तव मिष नव जन्म लिया है—
आत्मा ने दिव्य जगत् ने॥

६९

जन जन कुटुम्ब में कुल में,
हर्ष प्रद है तव उद्भव।
पाती निज जीर्ण जरा क्षण,
वर्षों का विस्मरा शैशव॥

७०

अवलोक कोकनद सा मुख,
सब शोक भूल जाता मन।
आलोक लोक पाता है—
खिलता अशोक सा जन जन॥

७१

आचरण स्मृति, प्रचलन में,
चिर आदर की पात्री तुम।
अधिकार दाय तव रक्षित,
कुछ भाव न सेवा के कम॥

७२

अन्तर विवेक प्राची में,
सौभाग्य किरण सी जागो।
हे! वरद! आज भिक्षुक से—
निज उर चाहा वर माँगो॥

७३

माँ, पितु, भाई, पति, सुत, प्रति
सद्भाव, प्रेम श्रद्धा हो।
आये न तुम्हारे पथ पर—
खल क्षुद्र स्वार्थ अन्धा हो॥

७४

नव पृष्ठोपरि गुड़ भेली,
फूटी है प्रथम जन-स्तुत।
तुम बहिन बनीं, जन्मा है
नव भाई, कुल दीपक सुत॥

७५

नारी ! तुम इस धरती पर,
सुख बरसाने आई हो।
सबके जीने का सम्बल,
संगीत साथ लाई हो॥

बहिन

चतुर्थ सर्ग

१

चिर चेत रहा जिसके चिन्तन से चेतन।
चल रहा चित्त चामीकर चारु चरण धर॥
जय बहिन! शुद्ध रहते निज प्रकृति, विकृति तज।
जिसके चरित्र शशिधर मे लिपट स्व-विषधर॥

२

चिर ज्ञान, ज्ञेय, विस्तार, विभूति, लुटाती।
        चिन्तन की नई दिशा से नई धरा पर।।
मृण्मयी, मनोमयि, नयी साधना उतरी।
        निज नलिन नयन में नवोन्नयन सिञ्चन कर।।

३

कृत वर्ग चेतना की विराट चेष्टा सी।
        विकसित समाज के वर्ग समन्वय का मधु।।
आध्यात्मिक युग की आत्म अंशु से अर्जित,
        आधुनिक प्रात में यह अतीत निशि का विधु।।

४

सुन्दर स्वभाव से, मर्यादा से रुचिकर।
        चिर परम्परा से मधुर, सरस पर के घर।।
यश मणि समाज से, यह स्वधर्म से पूजित।
        कुल के गौरव से कान्त, व्यक्ति में ऊर्जित।।

५

द्रष्टा के चकित नयन की प्रथमाभा सी।
        स्रष्टा के आदि सृजन की कविता अभिनव।
कर्त्ता कृत पूर्व प्रगति की तुष्टि समुज्वल।
        यह बहिन, विजेता की अन्तर वाणी ध्रुव।।

६

होगई अलक्षित जाति हंस कुल की जो,
        शुभ नीर-क्षीर विवेक शेष उसका यह।
या घुला ताप से बिना वृष्टि के जो घन।
        उसकी समता का स्वर्ण पुञ्ज यह निस्पृह।।

७

यह एक मुमुक्षु-बुभुक्षु जनों का विस्मय।
        मृदु आभा, जिससे दग्ध अनल, रवि तापित।।
यह अम्बर का आनन्द, स्वप्न वसुधा का।
        यह मानव का सङ्गीत, देव छवि दीपित।।

८

आदर्शवाद की मीमांसा सी नीरव।
यह एक समीक्षा है जीवन जग की नव॥
यह दीर्घ प्रतीक्षा पर की प्राप्त सफलता।
चिर ब्रह्म जीव के तर्कों का निर्णय सब॥

९

संज्ञा प्रज्ञा से हीन चपल भोलापन।
यह प्रथम तृषा के आग्रह का लघु आतप॥
इसके उदार अविकार हृदय प्राङ्गण में।
सम्पन्न पर्व करने आते निर्धन नृप॥

१०

जिस पर पड़ जाती दृष्टि वही धवलामल।
छू देती जिसको हो जाता वह कञ्चन॥
सम्मुख होते ही जीव अकलमष होता।
हो स्मरण मात्र से अग जग का जड़, चेतन॥

११

करुणा अनन्त है अन्त न इस क्षमता का।
सम्पन्न वसन्तों से मृदुता का मधुवन॥
यह मृदु ममत्व मन की सुख दुख सरिता पर।
करता सत्वों की शान्त विभूति विसर्जन॥

१२

मन गिरा कर्म से स्वप्न, सुप्ति, जाग्रति में।
सब देश-काल, पात्रों का सत्व रजस्तम॥
उद्वेग, वाद, आवेश, विषाद, भुलाकर।
यह रहती सबकी आत्म विभा का संगम॥

१३

वह दूर विजन के लघु प्रपात कल कल सी।
पर्वत समीप के शिष्ट ग्राम की हल चल॥
निर्जन घन वन की सघन कुञ्ज सी नीरव।
वह राज मार्ग का मूर्त्त मधुर कोलाहल॥

१४

सङ्केत शलभ का, खद्योतों का इङ्गित।
सन्देश दीप का, उडु निर्देश, अश्रु लय॥
रवि शशि के पद्माङ्कित ज्योतिर्मय स्वर का।
है बहिन! तुम्हारे ही अन्तर में आशय॥

१५

अगणित अचेत संकल्प, मूर्च्छित आशा।
मौलिक विकास के प्रश्न, हृदय के स्पन्दन॥
मेरे विस्मृत विश्वास, तृषाकुल सपने—
पागये यहाँ साकार नया सा जीवन॥

१६

तुम शुभ्र शरद् सी मांस पेशियों में घिर,
इस इन्द्र जाल नम को हरनीं जादू कर।
उन्मादित बीन बजा अन्तर नागों को—
क्यों नचा रहीं विष दन्त तोड़ कीलित कर॥

१७

रुक गये गगन से उतर सान्ध्य मेरे शुभ,
अनुभूति हृदय की ओट कर चुकी गुञ्जन।
बरसा उसका आकाश ज्योति शीकर बन,
कर रहा पद्म मुख में हिरण्यमय नर्त्तन॥

१८

संतप्त हृदय की आश्वासित भाषा में,
पीडातिरेक उपरान्त अश्रु रेखान्वित।
बाधा विमुक्त जन की कृतज्ञता में झुक,
तुम अनिश आर्त्त की आँखों में प्रतिबिम्बित॥

१९

बन जाती एक चुनौती जो मानव की,
ललकार कभी देती निज पौरुष को यह।
देती जय का विश्वास, युद्ध का साहस,
जीने का शुभ वरदान, जगत् का आग्रह॥

२०

लक्ष्मी सी सबके भाग्य पटल पर राजित ।
सबकी वाणी पर सरस्वती सी शोभित ॥
प्रतिजन उर के असुरों पर यह चण्डी सी ।
देवों पर भक्त-विभूति-विभव सी भूषित ॥

२१

वह मानव की अमोघ सीमा का पूजन ।
यह संसृति का अमरत्व, भुवन का चेतन ॥
यह अमरों का आह्लाद, नाद सिद्धों का ।
यह परम लाभ प्राणी का, आत्मा का धन ॥

२२

निर्माण बन्धु से, ज्योति प्राण में माँ से ।
कल्याण प्राप्त कर लेती पितृ पदों पर
पा शक्ति श्वश्रु से, त्राण स्वसुर से पाकर ।
निर्वाण सुलभ करती प्रियतम का कर धर ॥

२३

कटु क्या ? नीरसता कहाँ ? द्वेष किसके प्रति ?
पनघट पर जितना तुष्ट, मुदित मरघट पर ।
जड़ कौन ? दूर किससे ? कब जरा, मरण, रुज ?
अघ कैसा ? पा इसकी अनुभूति अनश्वर ॥

२४

नर का कठोर है आदि श्रेय पथ गामी,
तव शुभ स्नेह से झंकृत हृदय चतुर्दिक ।
हट गई काम दल दल पग के नीचे से,
मानव का तार्किक बहिन तुम्हीं से आस्तिक ॥

२५

राष्ट्रीय भावना, व्यक्ति साधना क्रम में ।
यह युयुत्सु युग की विचारणा अविरल ॥
अद्बुद्द जाति की परम्परा गाथा सी ।
है यह मशीन युग का नृशेष नैतिक बल ॥

२६

तुम खड़ी अमङ्गल में मङ्गल की बेला।
कण्टकाकीर्ण पथ में प्रकाश सर्वोदय॥
देकर संवेदन शील सरस संगोपन।
तुम हेमाङ्कित करतीं संसृति का मृगमय॥

२७

नवनीत मृदुल होकर के लोह कठिन जब—
निज मलयस्मय को ज्वाला मुखियों से भर॥
सबके संघर्षों में आगे आ जाती
यह कुसुम शायिनी चढ़ कण्टक शूलों पर॥

२८

अन्तःसलिला यह निज अनुवादित ऋजु कृति।
बहु व्यग्र श्रमिक की आर्त आन गीतावलि॥
उर सम्पुट में स्वानुभूत मौलिक श्रुति,
माङ्गलिक अहिंसा सत्य की मृत्युञ्जय बलि॥

२९

कल्पना कुहर से झाँक किसी की आशा,
पीती उत्सर्गों के लोहित मुक्ताहल।
हाटक-हीरक इसकी मणि मञ्जूषा में—
सोते रहते शत रुधिर क्रान्तियों के पल॥

३०

अन्तर आलोडन ऊर्मि वाहिनी चुल बुल।
लोचन मृग मद निर्झरिणी से आप्लावित॥
लघु प्राण जलज के मधु मरन्द से चर्चित,
उपहास वृत्ति सुरधनु रङ्गों से रञ्जित॥

३१

इसने ही तोड़ी निज लोहे की कारा।
है गला गयी पाषाण यही करुणामय
हो रहा ज्ञान का यहाँ भक्ति से परिचय।
राका यह पद से बाँध अमा का अनुनय॥

३२

इसमें सलज्ज नारीत्व बुद्ध वाणीमय।
लो करा रहा संकोच रूप दर्शन निज ॥
यह इसी रूप में अन्तःपुर के बाहर।
अवलोक सका अपने पन की कुछ सज धज ॥

३३

निर्लज्ज अभावों और प्रभावों की मति।
निज सहज साधनाओं से माँज मधुर कर ॥
रच गई काव्य की अमर आत्मा तो यह।
मैं जोड़ रहा केवल कङ्काल कलेवर ॥

३४

चिन्ता के स्वर्ण परों से तत्व गहन से।
झीने धागों वत् उलझे हैं स्वाभाविक ॥
मेरी बरूनियों पर अनन्त सारों में।
संसार सृजन हो रहा इसी का तात्विक ॥

३५

पी गये तृपा के अधर गगन के प्याले।
रीते प्यालों में उफन उठा यह सागर ॥
लड़खड़ा गया पवमान प्रगति के द्वारे।
खिल गया विश्व संज्ञा का नव इन्दीवर ॥

३६

कङ्काल शिराओं में बह चला रुधिर नव।
ध्वज गड़ा खण्डहर के जर्जर शिखरों पर ॥
उर्वर मानव का मरु दूर्वा से श्यामल।
उठ गईं आज मानव की आँखें ऊपर ॥

३७

माया के, तृष्णा के, मादक हिलकोरे।
पलकों के कोरों पर बिखराते मधुकण ॥
तुम मधुर सत्य के अरुण रश्मि अञ्चल से।
धो देतीं दुखते हरे हृदय के विष व्रण ॥

३८

झुक रहा जिन्हें पाने को क्षितिज समुत्सुक।
महि माँग रही है ललक उठा हिमगिरि कर॥
सागर है घेरे खड़ा जिन्हें प्रहरी बन।
इसका उर जग के उन रत्नों का आकर॥

३९

युग अनुष्ठान का महारम्भ उत्सव मय।
सुख समारोह लोकोद्घाटन का विस्तृत॥
जन सदाचार का शिलान्यास करता सा।
विश्वास बहिन का हुआ विश्व में समुदित॥

४०

नूतन निश्चय, प्राचीन संस्कारों में।
आलोक तुम्हारा नई लयों में झंकृत॥
दुर्गम समाज की प्राचीरों से छन कर।
हो पाता है व्यक्तित्व तुम्हारा लक्षित॥

४१

विज्ञान यहाँ आविष्कारों में तन्मय।
वेदान्त तत्व अन्वेषण की चिन्ता रत॥
साहित्य खोजता सहज रसायन रस की।
इतिहास दिव्य आदर्शों में श्रद्धान्वित॥

४२

इस महाकाल के छन्द धरा धूली पर।
हीरक वर्णों से स्वर्ण वर्ण में अङ्कित॥
मृदु मन्दिर पाण्डु लिपि सरल प्रकृति पर्णों की।
प्रिय बहिन! तुम्हारी जय लेखा पर चर्चित॥

४३

अम्बर स्नेह अम्बार उठे अम्बर तक।
कल्लोलित अञ्जलि में करुणा के सागर॥
क्षिति की पुण्यात्मा! तुम्हें पुष्ट करने को।
यह धन्वन्तरि का अमृत कलश है भू पर॥

४४

शत शत काञ्चन मणि मय दीपों से मण्डित।
यह लक्ष्य, सुष्ठु पाथेय, पथिक, मंगल पथ ॥
यह बहिन ! दिशा की मुक्त अर्गलाओं सी।
हे ! अमृत पुत्र ! तेरे निर्माण श्रम श्लथ ॥

४५

शुभ यही दृष्टि अभिराम मुक्त मौक्तिक है।
चिर यही भाव निखिलाखिल में जन पावन ॥
मिल सकता भगिनी के स्वरूप सौरभ में।
आत्मा परमात्मा का प्रतीक मय दर्शन ॥

४६

हो सकी सन्तुलित रुचि, अभ्यास सका मँज।
बन गया, हेम मृग सा मन मृग-चर्मासन ॥
इन्द्रिय निग्रह की यही मान्यता शाश्वत।
है मरण शील का इसी भाव में जीवन ॥

४७

यह मानवता की नैसर्गिक व्याख्या ध्रुव।
यह उभय पक्ष की सुगम व्यवस्था आर्जव ॥
मानव विवेक के विश्व कोष में निश्चित।
जन संस्कृति की व्यापक परिभाषा आर्त्तव ॥

४८

गत उदधि गान इव व्यक्त, व्याप्त घन रव वत्।
भूधर स्वर निभ अभिराम, सरस मर्मर सम ॥
उन्मुक्त प्रतिध्वनि तुल्य, साम सा पावन,
है उर धड़कन सा निकट बहिन स्वर सरगम ॥

४९

यह विगत कथा सी, शुभ भविष्य वाणी सी।
यह वर्त्तमान की कल्याणी, गृह की छवि ॥
विश्वस्त कीर्ति, अधिकृत मर्य्यादा जग की।
यह बहिन सृष्टि की सुरभि काल की भैरवि ॥

५०

सरस सरल भावों को सहज तरङ्गित।
जन रत्नाकर को निज शशि कर से मन्थित॥
हिम हेम रश्मि सी उतर भाग्य पङ्कज में।
बन्दी जीवों के करतीं भ्रमर विमोचित॥

५१

यह दो प्राणों के सहज पूर्व परिचय सी।
अव्यक्त गूढ़ वार्त्ता निसर्ग की रस मय॥
है देह प्राप्ति की सार्थकता सी सम्मुख।
यह साधु विचारों-कथनों का क्रम विनिमय॥

५२

दृग की गोधूली, मन्दिर प्रात आनन का।
शरदुज्ज्वल, अलकों की निशीथ तारक मय॥
छाया वसन्त शोभा का यह पिक कूजित।
फूलों सा शैशव, श्वास मलय, ज्योतिर्मय॥

५३

तम, द्वैत, भ्रम रहित, आश्रयप्रद आत्मिक बल,
यह किसी तरह भी हीन, मलीन न दुर्बल।
पीडा-क्रीडा से विगत वह्नि का निश्चय।
ऋजु-साधु सिद्धियों की आभा से उज्वल॥

५४

जीवन-जय का संदेश, प्रवेश सुकृत मय
नव भारत का उन्मेष, विश्व का समुदय॥
शुभ वेश भारती का अशेष प्रतिभाश्रय
निजता, नैतिकता, मानवता, का आलय॥

५५

तुम प्रात स्वप्न सा मोह भङ्ग कर देतीं,
निज निकषा पर कर जीवन का मूल्याङ्कन।
अपने आँसू की आग रुधिर में भरकर,
चर्चित कर देतीं शीश विदा का चन्दन॥

५६

है प्रायश्चित्त, न पश्चात्ताप, न अघ कुछ।
उद्भाव्य न स्वार्थ, विकार, भार का अनुभव ॥
आभार न खल, उद्गार न मिथ्या होते।
यह द्वार स्वर्ग का पार यहीं होना भव ॥

५७

निज परिष्कार कर सकी यहाँ दुर्बलता।
परिहार यहाँ कर सका न मेरा मानव ॥
अधिकार और आधार संधि कर बैठे।
संसार सार पा गया बहिन में अभिनव ॥

५८

इस ओर खुले मन की विचार वीथी यदि,
नारी के प्रति हो यही दृष्टि का माध्यम।
मिट जाय घृणित व्यापार युगों के शिर से,
लङ्का, भारत जैसे युद्धों का दुष्क्रम ॥

५९

गहरे तमिस्र में उलझे आर्द्र अनावृत,
आर्द्रा के शैल शिखर पर के तारक सम।
मुस्कान सहित करुणा से धरा चिबुक पर—
कर-नख-गङ्गाधर के शिर का चन्द्रोपम ॥

६०

प्रध्वनित विश्व के तन्तु तन्तु के स्वर से,
उमड़ा पड़ता नारी का रस सिन्धूच्छल।
सब में अतृप्ति, मित, मूक वासना बहती।
सन्तुष्टि-शान्ति का यही सिद्ध उदयाचल ॥

६१

वे सत्व हीन अधिकार जताते आगे।
तुम सलज क्योंकि तव सत्व अमित सर्वाधिक ॥
वे गरज रहे हैं हृदय रिक्त जिनके चिर।
तुम मौन क्योंकि परिपूर्ण पहुँच सीमा तक ॥

६२

जिसकी वाणी के स्वर्ण तार सा झिलमिल,
आलोक लोक का पुण्डरीक से नभ पर।
उसके मानस की कोमलता पर उतरा।
नवनीत कलाधर का रजनी में गलकर।।

६३

गृह अलङ्कार, तुम रङ्क मुझे अङ्क स्थित—
कर, देतीं निज सरोज कर से दध्योदन।
जब मुझे पकड़ने भगतीं, कर उठती हैं,
नूपुर कङ्कण किङ्किणि में ममता गुञ्जन।।

६४

मानव विचक्षणा की वैचित्र्यालय सी,
शपथों में विश्व प्रभुत्व व्यञ्जना उद्धृत।
गुड़ियों से करते देख उसे मधु वार्त्ता,
जड़ता जगती की होती सहज तिरोहित।।

६५

यह चित्, चित् का सुख, सुख का शिव, शिव का सत्,
सत् का उर, उर की लय, लय का शाश्वत स्वर।
यह कठिन साधना स्वर की, उसकी आभा,
आभा की गति, तत्सिद्धि, सिद्धि का फल चिर।।

६६

मेरे दुख में जिसकी आँखें आतीं भर,
मेरा ही पक्ष सदा करती जो निश्चित।
मन की इच्छा पहुँचाती है गुरु जन तक।
मम कृत्य सभी रहते उससे अनुमोदित।।

६७

इन्द्रियातीत इसका वह रूप अमर हो,
सन्तोष, तृप्ति के जिससे झरते निर्झर।
जो शान्त, सात्विक, तपोवृत्ति निर्मित कर,
दैवी विभूति, भावों से देता उर भर।।

६८

करुणा से उज्वल, ममता से मृदु फेनिल,
जननी का आशीर्वाद अहर्निशि प्रहरी ॥
चिर वरदानों से बोझिल, कुशल शकुन मयि,
इसके प्रति, प्रति अनुभूति सभी की गहरी ॥

६९

संग्राम थका, झुक गई जयश्री जिसके,
निष्काम विमद संकल्प बेलियों के तल।
अञ्चल से देती पोंछ धूलि धूमिल मुख,
पलकों से देती झाड़ हृदय के छल बल ॥

७०

जग का रवि शशि मुख करते करते उज्वल।
भर गया तिमिर में इसका हिम हेमाञ्चल ॥
थक रहा कण्ठ मम विषयक गीत स्वरों से।
ढो ढो सपनों के भार हुई यह दुर्बल ॥

७१

साथी खेलों की, हार-जीत की सङ्गिनि।
माँ की गोदी ममता की तुल्य विभाजक ॥
हँसने, गाने, रोने की चिर सहयोगिनि।
मेरी भूलों की, भ्रम की परम प्रशंसक ॥

७२

फाल्गुन की देवार्पित किंशुक सी अरुणिम।
पद संध्या में श्रावण के उडु सा मैं नत ॥
यह सरस सौम्य वपु की सुलक्षणा जग पर,
कार्तिक का गगन प्रदीप गृहस्थ निवेदित ॥

७३

रह गई बीच में कथा, छोड़ भागा मैं—
निद्रित हूँ, गाने जगी प्रभाती ज़ब यह।
मैंने उसको पाकर के भी खोया है।
वह आ आ करके लौट गई है निस्पृह ॥

७४

चिर मेरी अपर गिरा है, अपर हृदय मम।
चेतन द्वितीय मम प्राण, प्राण से प्रियतम ॥
मेरा अस्तित्व अनाहत जग में घोषित।
प्रत्येक प्रगति है इसका सफल परिश्रम ॥

७५

कल्लोल कारिणी-सरिता सदृश स्वरः गुम्फित
कोमल सम्बोधन–आकृति के सम्मोहन
एकान्त ध्येय पथ पर चिर पहिचानी सी
कर लेती चिर जीने का मधु आयोजन

७६

माँ का तुम पर विश्वास, प्यार बाबा का,
तुम सचिव पिता की, और तुम्हारी अग्रज ॥
अनुकूल स्वजन, अनुयायी घर के अनुचर।
श्रद्धालु अनुज मैं देवि ! मुझे दो पद रज ॥

७७

सब दिशा रुद्ध, सब द्वार बन्द, पथ बाधित।
विपरीत काल, प्रतिकूल दैव, ग्रह प्रकुपित ॥
प्रति जन विरुद्ध, धन नष्ट, भ्रष्ट सब साधन।
आश्रय विहीन तुमसे ही चिर आश्वासित ॥

७८

विजया दशमी के प्रात, अरुण वसने ! तुम।
कर तिलक जयी मानव का करती वन्दन ॥
पा जाता राघव शक्ति, रूढ़ि लङ्का से,
करने स्व चेतना युक्त मार अघ रावण ॥

७९

शुभ सान्ध्य सुनहली मन्द फुहारों में नित।
यह मुझे झुलाती, बहलाती गा गा कर ॥
श्रावण हरियाली तीज, अजिर के तरु पर।
कौशेय सूत्र से निर्मित नव झूलों पर ॥

८०

घनघोर घटाओं के घेरे में घिरता
शशि की बाँहों में लिपट सभय तारक दल ॥
नर्त्तित विद्युत्तालों पर देख तिमिर को
सट जाते बालक भीत तुम्हीं से अचपल ॥

८१

रच धन तेरस् का दीप् प्रथम प्राङ्गण में,
कर बहिन ! सदा दीपावलि का उद्घाटन।
ऊँचे भवनों में, क्षुद्र कुटी, जन मन में।
तुम मुक्त किये रहती हो सुख वातायन ॥

८२

मिट्टी का मन्दिर, मिट्टी के दीपों से,
घन अमारात्रि तम में हो उठता झिल मिल ॥
श्री के स्वागत में स्वयं स्वर्ग सी, श्री सी,
शुभ दृष्टि तुम्हारी भरती भव का अञ्चल ॥

८३

सम्मान भार निज दुर्बल बन्धु करों पर !
दे पुण्य श्रावणी के कोमल बन्धन मिष ॥
कृश, अकर्मण्य, मोही निराश अन्तर में।
सञ्चारित कर देती हो कर्म सुधा रस ॥

८४

शु यम द्वितीया के पर्व महोत्साहित तुम,
यमुना लहरों पर समुद बन्धु के शिव पर ॥
रोली मिष दे मङ्गल प्रभात का कुंकुम,
अभिषेक प्रेम सुरसरि से देती हो कर ॥

८५

तुम नव जीवन के नवारम्भ का नव दिन।
तुम नव यौवन की प्रथम उषा का उत्सव।
पावक फुल झड़ियों के श्यामल अञ्चल से—
तुम सहज खिसकता सा दूर्वा का शैशव ॥

८६

उस दिन विशेष आतिथ्य तुम्हारा उत्तम।
सुस्वादु स्वकर से विरचित बहु भोजन नव ॥
देती असीम सुख, किन्तु सकुच जाता मैं,
होता स्वरूप अनुरूप मान मुझसे कब ? ॥

८७

मधु ऋतु के मधुवन में रसाल पादप पर,
कुञ्जन करती केवल प्रभात में मधुपिक।
सन्तत कुटीर प्राङ्गण में सप्त स्वरों से,
भरती रहती यह कल-रव भुवनाकर्षक ॥

८८

रहती सदैव उत्साहित - मुदित - प्रकाशित।
रखती औरों में भी जीवन की हलचल ॥
करके विनोद - आमोद - प्रमोद अमित विधि,
गुरुजन का चिन्ता भार मिटाती पल पल ॥

८९

मानव के सूखे पत्थर में नारी ने
की प्राण प्रतिष्ठा, निर्झरिणी सञ्चारित ॥
कर उसे देवता शुचि जल दूध चढ़ाया
होगई पार्श्व में शक्ति-सिद्धि सी राजित ॥

९०

जन - मन - जीवन की धरती पर घिर उतरा
स्वर्णिम भावों का पुलक भरा ज्योतिर्घन ॥
कल्पित सुन्दर की मधुर प्रेयसी सी बन
यह बहिन लगी प्राणों में बुनने मधुवन ॥

९१

किन्नर गाते, गन्धर्व वाद्य वादन रत,
झुक झूम रहे सुर, ताल दे रहे दानव।
हैं अमृत उगलते नाग, किंपुरुष नर्तित।
इसके मन में आनन्द मनाते मानव ॥

प्रेयसी

पञ्चम सर्ग

१

पलक पिहित मित, किल किञ्चित, लज्जारुण,
थकित, चकित, खोई, कृश, श्वसित, पराजित।
मुग्ध दृष्टि झुक, झिझक, खोज रत, सकुचित,
मौन, पुलक मयि, प्रेयसि, जय नव मोहित॥

२

दिव्य अङ्ग सुषमा, अन्तर की महिमा,
निखिल मधुरिमा पुञ्ज, निरुपमा, परमा।
हृदय चन्द्रमा, लोक रमा, श्यामा, तुम
रूप पूर्णिमा, परम प्रेम की प्रतिमा॥

३

हंस गमनि, शशि दर्शन, दाडिम दशना,
अमृत नयन, पिक भाषिणि, कुहक हासिनी।
फल्गु शोभना, शरत्कान्त सन्ध्यारुण,
मार मोहिनी, प्रेयसि कुसुम कामिनी॥

४

प्राण द्यु मणि मणि, दृग शशि मणि, पारस मणि,
आत्म-नील-मणि, अन्तर की कौस्तुभ मणि।
कल्प कण्ठ मणि, इच्छा फणि मणि, भुवि मणि,
लोक-भाल-चूडा-मणि, जय चिन्ता-मणि॥

५

एक सुनहली धूप, रुपहली छाया,
मुक्ता का मधु रूप, सीप की माया।
हेम हिरण का लोभ, मोह का जादू,
इन्द्र-जाल, मनु मन्त्र रचित तव काया॥

६

प्रकृति धेनु, चिर पुरुष गोप, भव भाजन,
नियति वत्स, पय पञ्चभूत, जीवन दधि।
यह मनुष्य माखन, संकल्प द्रवित जब,
छाछ अपर सब, तनु पुनीत नव घृत निधि॥

७

सिता, फेन सा, पारद सा, निर्झर सा,
धुनी रूई सा, प्रातः सा, गोरस सा।
रजत रश्मि पट सा, क्षीरोधि लहर सा,
रूप हंस सा, मुक्ता सा, मानस सा॥

८

भाव जटित, घन रस, हिरण्य मय मृदु मन,
लौन ललित नवनीत खण्ड सा यौवन।
दग्ध मदन अगणित शरीर धर जीवित,
लोल रास उल्लास सुधा मयि चितवन॥

९

चन्द्र सूर्य्य से घिरी शरद् सन्ध्या सी,
प्रेम और सङ्कोच उभय से कर्षित।
निशा, उषा के बीच प्रभात प्रणय सा,
मदन मध्य शैशव यौवन के शोभित॥

१०

कमल कान्त क्षीरोदधि गज लीलामय,
हंस-वास-मानस यह मणि मुक्ता मय।
सिंह विहार स्थल वसन्त मय कानन।
लोक स्वर्ग सुर-सत्व पुरुष क्रीडालय॥

११

मस्त मूर्च्छनाओं की श्वास कमल वन,
कोमल कान्त पदावलि सी अलकावलि।
विविध: पूर्ण चित्रों सा छविमय आनन,
घेर खड़ी मन प्रिय दृग की भ्रमरावलि॥

१२

अमृत नटी यह निखिल रङ्ग शाला की,
गान सृजन में करती नृत्य प्रलय में।
मधुर वेण सी एक फूंक से ही जो,
प्राण संचरण करती लोक हृदय में॥

१३

प्रात साधना का, सन्ध्या आशा की,
रात स्वप्न की, सुन्दर गीतों के दिन।
वर्ष प्रतीक्षा का, चिन्तन का क्षण क्षण,
मधुर कल्पनाओं का कोमल जीवन॥

१४

अलग प्रकट, अव्यक्त अधिक जो जग में,
अर्ध देव कृत शेष लोक की रचना।
सत्य पूर्णतम, पर न कल्पना भी कम,
कला, पीठ वाहन नव कवि की रसना॥

१५

मोह मुक्ति सा मधुर, कर्म रागानुग,
लोभ पाया सुर धन कुसुमों सा कोमल।
पद पखारने का विवेक जल घट रे!
दर्प बना प्रिय पाद पीठ की मखमल॥

१६

किरण दोल पर नींद हुई मूर्च्छित गिर,
निशा मौन, तारागण उपहासित चिर।
मृग नशे में विकल, मृत्यु है निस्सुधि,
मुग्ध सर्प दृग का सम्मोहन तुम पर॥

१७

मेघ दूत है वृत्त प्रेम का लाने,
प्रीति पत्र ले जाते हंस निराकुल।
पवन मिलन सङ्केत परिवहन करता,
नील कमल पर अश्रु नव च्युत प्रेमिल॥

१८

प्राण प्राण में राग ऋतुओं के मधुवन,
श्वास श्वास में अमर गान के गुञ्जन।
उठे आवरण तम के, जाल फटे सब,
प्रकट धूलि पर शत स्वर्गों का नर्त्तन॥

१९

रँगा सहज इतने रङ्गों से मृदु तन,
गया कौन इतने रङ्गों से रक्त मन।
सृजन एक क्षण में शत शत रंगों का,
डूब गया कितने रंगों में जीवन॥

२०

भाव ज्ञात गृह की प्रतिमाओं को सब,
लिखित चित्र परिचित हैं तन्मय मन से।
भित्ति बद्ध नीरवता ने पूछा है,
अन्तर का उल्लास नये यौवन से॥

२१

फिरें मेघ करुणा के करते छाया,
दीप्त निरन्तर पथ पर मणि दीपक गण।
कौन दिशा से जाने कब प्रिय आयें,
नयन द्वार पर लटके रहते तोरण॥

२२

मधु-श्राव लोचन से, घाव हृदय में,
कुछ दुराव से दबे पाँव धरती वह।
कुछ अभाव में, नव प्रभाव सा उस पर,
भाव नये से, चाव अनोखा सा यह॥

२३

किरण किरण में देती मौन निमंत्रण,
लहर लहर पर चञ्चल प्राण अकेला।
फूल फूल से दृष्टि पूछती कितनी,
दूर और है मधुर मिलन की वेला॥

२४

नाच मोर सी, नये चोर सी लुक-छिप,
इस किशोर की चिर विभोर उत्पल की।
चल चकोर सी, लगी भोर से निशि तक,
किसी चन्द्र की ओर कोर काजल की॥

२५

प्रेम कुञ्ज वन में गोरस की मटकी,
लिये आरही यह भावों का माखन।
मन्द मौन गह्विर के पथ पीछे से,
लूट न ले चुपचाप कहीं मन मोहन

२६

मिलन विरह के संकल्पों में कातर,
चाह और चिन्ता के चारु चरण धर।
पलक ओट में ग्रहण और अर्पण के,
मौन स्वप्न अभिसार नित्य लेती कर॥

२७

कोटि विच्छू दंशन सा पीड़ित करता,
लोम लोम को जीवन का सूनापन।
सदा शूल सा मन में चुभता रहता,
ज्वलित तृषित यौवन में एकाकीपन॥

२८

लिपट लाज में, सिमिट सकुच में, नटखट—
खोल साध की लट, मुख का द्युति घूँघट।
हेम व्यथा के जल घट, प्रिय पनघट से,
खींच सिक्त करती दृग तट, अन्तर पट॥

२९

नाभि गन्ध मद विह्वल हेम हिरण सी,
भाल स्रवित मद विकल नाग सी उन्मद।
सेंव वसन्त कुसुमासव मत्त भ्रमर सी,
तरल चाँदनी, पावस का चञ्चल नद॥

३०

महाश्वेता सी चिर प्रतीक्षा में रत,
कादम्बरी विभोर प्रेम में उत्कट।
पुष्प वाटिका की विमुग्ध सीता यह,
कुञ्जवनों की राधा एक जिसे रट॥

३१

उतर रहा है गगन, धरा चढ़ती है,
हार गया है सदा जीतने वाला।
घूँट घूँट प्रारम्भ प्रभा तुम पीतीं,
बना अन्त को लघु मरकत का प्याला॥

३२

तोड़ शिलाएँ, दिशि तज, फोड़ किनारा,
तुंग पतित यौवन की चञ्चल धारा।
तीव्र वक्र गति से ऊर्मिल कल कल कर,
बही जारही पाने सिन्धु सहारा॥

३३

जन्म-मरण, वरदान-शाप, सुख दुख सह,
शैल सिन्धु युग वर्ष प्रलय लङ्घन कर।
गगन, धरा, नक्षत्र, ग्रहों के पथ से,
मुदित आज पाकर मन में चिर सुन्दर॥

३४

बन्द नेत्र इन्दीवर में बन्दी चिर,
विन्दु विन्दु शरदिन्दु कुन्द वन्दित छवि।
मन मिलिन्द आनन्द मरन्द मुदित पी,
खिली मन्द निस्पन्द प्राण की कैरवि॥

३५

क्रिया, ज्ञान, इच्छा मय वह त्रिगुणात्मक,
घूम रहे स्थूल-सूक्ष्म-पुतली में।
ठहर गये भूगोल, खगोल अपर पर,
चन्द्र-सूर्य, दिन-रात गले कजली में॥

३६

सदाचार के घेरे में भावी की,
क्रान्ति मध्य जी सके इसी सपने में।
विरह तप्त पूर्वानुराग के तप में,
लीन शक्ति सञ्चित करती अपने में॥

३७

भानु कमण्डल के द्युति जल से धो पद,
प्रात कोटि स्वर में तब महिमा गाता।
नखत कुसुम बरसाता तुम पर सुर बन,
इंदु मुकुट चरणों में पर नभ रख जाता॥

३८

नयन नलिन नभ की नीलिम धारा पर,
ज्योति किसी की चितक अचेतन मोती।
देवि! तुम्हारे छवि सागर में झिलमिल,
विश्व वन्द सीपी का कोरा मोती॥

३९

लवण कनी सी दृग में, मुख में मधु सी,
सिता कर्ण में, माखन सी मृदु मन में।
कर कपूर सी, सौरभ सी श्वाँसों में,
रमी प्राण में हिम, हाटक सी तन में॥

४०

नई उषा की प्रथम अरुण आभा में,
मन्द मौन लहरों में हिलता डुलता।
उभय कूल प्राणों के गीतों से भर,
नयन स्रोत में पोत हँसी का तिरता॥

४१

मन्द हास जुगनू के चिकने मृदु पर,
झाँक पलक के तम से सिहर चमकते।
शिरा शिरा में जगी स्वर्ण दीपावलि,
निखिल भुवन में प्राण नाचते फिरते॥

४२

पुष्प धनुष युत-विनत अग्रगामी हो,
मार तुम्हारा दृष्टि अनुगमन करता।
तुम्हें बना उपदेश यष्टिका काञ्चन,
ललित शास्त्र के रस रसिकों में भरता॥

४३

सार, सत्य, सुन्दरता और सघन रस,
तुम्हीं लोक चैतन्य चेतना चेतन।
जन रहस्य की अन्त गहन गुफा में,
देवि! तुम्हारा गूँज रहा जय गुञ्जन॥

४४

बँधा वासना रेशम की डोरी में,
सृष्टि करों पर पुरुष स्वर्ण घट उज्वल।
विश्व ग्राम में दिव्य प्रकृति पनघट से,
भरा कोर तक उसमें यह नारी जल ॥

४५

अविच्छिन्न, अति सूक्ष्म, कामना वर्जित,
वर्धमान, गुण रहित, एक रस चिर नव।
प्रेम तुम्हारा अनुभव, रूप अमूर्त निधि,
मौन समर्पण मय, आत्मा का वैभव ॥

४६

सिन्धु रत्न, मानस मोती, गिरि माणिक,
खान स्वर्ण, वन कुसुम, परिच्छद धरती।
जन्तु राग, रस रूक्ष, कलाएं रस निधि,
नियति हेतु तव सृजन प्रकृति का करती ॥

४७

ऊर्ध्व भ्रुकुटि, विकचित कपोल, त्रिबलित शिर,
करज चिबुक पर, ग्रीवा मन्द विकम्पित।
अधर स्फुट ध्वनि, धीर, दीप्त तन्मय मुख,
प्रेमवती तुम मधुर छन्द रचना रत ॥

४८

स्वाद न दुख का सुधा न सुख की पायी,
दूर निकट फिरते रहते हम भ्रम से।
तुम्हें देख किसने मरना चाहा है,
किन्तु लिया कितनों ने जीवन तुमसे ॥

४९

जन्म जन्म का विछुड़ा जीवन साथी,
सहज खोजता मिला वन्य भव पथ पर।
उतर पड़ा सुर धनु के सत रंगों से,
मधुर प्यार करने वाला चिर सुन्दर ॥

५०

सिद्ध तूलिका के भीने रंगों से–
हलकी गहरी रेखाओं में चित्रित–
व्यस्त चयन करती सौंदर्य भुवन का,
मुग्ध सिहरती, होती हुई समर्पित ॥

५१

तुम अखण्ड संगीत विश्व वीणा का,
प्राण प्राण में व्याप्त स्वरित सबके गृह।
निखिल तरुण की माँग, कामना उसकी,
लक्ष तुम्हीं, सबके यौवन का आग्रह ॥

५२

मीरा सी विभोर भावों में नर्त्तित,
मधुर मूर्च्छना वीणा पर गाती हो!
पांसु पीड़ की शुष्क रंग साँझी में,
स्वप्न भरी निज प्यार आँक जाती हो ॥

५३

स्वकृत ललित उपवन की जब क्यारी से,
कुसुम द्रुमों के विविध वर्ण कुल जड़तीं।
काट छाँट मेहदी के घन बिरवों की,
भाव मूर्त्तियाँ कल्प कला मयि रचतीं ॥

५४

उमड़ सिन्धु सा सिन्धुर तुल्य मदोन्मद,
मीधु शीधु पी मुधिमय प्रेम सुधा विधु।
बरस रहा सुख निधुवन में रस निधि की—
साधु भाव मयि निज नव वंशी का मधु ॥

५५

मधुर प्रेम मणि मन्दिर की देवी पर,
नम्र भाव से जिसने शीष चढ़ाया।
रूप विभव - आनन्द उसी पर अपना,
चढ़ा गई इसकी विमोहिनी माया ॥

५६

तीव्र बही करुणा की चञ्चल धारा,
टूट पड़ी जन की पत्थर की कारा।
डूब गया पागलपन के वय घन में,
निकट चन्द्र मण्डल के मन का तारा॥

५७

प्राप्ति यत्न में हुए ध्वंसकारी रण,
पाद पीठ तव उष्ण रक्त से चर्चित।
तपे कोटि जन, तुम्हें एक क्षण पाने,
धरा तुम्हारी अश्रु नदों से सिञ्चित॥

५८

मुक्ति भक्ति-प्रद कारण लय उद्भव की,
शक्ति सिद्धि गति विधि समस्त सम्भव की।
लोक अर्चना की पवित्र वेदी पर,
परम देवता तुम भव की मानव की॥

५९

शिशिर धड़कते मन से तुम्हें बुलाता,
भूल न जा पावस का प्रेम उल्हाना।
है वसन्त का पञ्चम स्वर से आग्रह,
एक बार मधुमयि! मधुवन में आना॥

६०

आत्म-द्योतना, भाव-साधना-निधि तुम,
तुम्हें प्राप्त कर होता दीप्त चराचर।
तृप्त हमें कर आप्त-युक्त-चिर रहती,
रिक्त न होती कभी शक्ति वितरण कर॥

६१

रोष तुम्हारा तरल फाग का किंशुक,
तिरस्कार शत शत स्वागत से सुखकर।
मौन मधुर, कटुता शुभ, वरद उपेक्षा,
सुन्दरि! तुममें कुछ भी नहीं असुन्दर॥

६२

एक ओर अति ब्रह्मानन्द उदधि है,
अपर पार पर ब्रह्मानन्द सहोदर।
लोक पन्थ की ऊँचाई गहराई,
थकित पड़ी जीवन दूरी तव पग पर॥

६३

इस अवाध क्रम, अन्तर-रस रिम-झिम में,
लोक शान्ति उद्यम द्रुम सिञ्चन श्रम में।
दीख पड़ रहीं युग से व्यस्त तुम्हीं तुम,
भीतर की द्युति में बाहर के तम में॥

६४

अग्नि दग्ध छू तव पुनीत रूपानल,
फिर कुदृष्टि, कैसे कुभाव ठहरे पल ?।
निर्यात, इन्दु, प्रतिकूल-जीव सा, रवि सा,
तव विरोध कर मिट जाता भव मंगल॥

६५

सप्त सिन्धु में विन्दु न एक समाती,
विन्दु विन्दु तुममें जाते सागर बन
बदल कलेवर, लघु तृण बना हिमाचल,
रेण स्वर्ण बन रही, स्वर्ग तुमसे कण॥

६६

आज विश्व मानव की अन्तर तन्त्री,
सरल तरल तव अन्तराल में बजती।
भुवन व्यथा का कोष बना कोमल मन,
प्रकृति तुम्हारे मधु से पिघल बरसती॥

६७

चटुल ज्ञान की नदी, तर्क की भँवरे,
लहर हर्ष की अल्हड़ मन का नाविक।
भाव वल्लरी, प्रेम तरी, रुचि दिग्भ्रम,
मग्न लाज के नीर नयन का नायक॥

६८

लोक भीति, अनुरक्ति तरुण जीवन की,
मधुर मिलन की चाह न हृदय समाये।
खोज रही आतुर - सुयोग - आशामयि,
आज एक सुन्दर अपना हो जाये॥

६९

लोक रमा निर्धना, प्रीति के कण बिन,
सहज अन्नपूर्णा से यह मधु याचित।
पुनः सती तपती मन वाञ्छित पाने,
सरस्वती फिर नये राग में दीक्षित॥

७०

निज अस्तित्व समास्था अपने पन की,
पृथक् ध्येय पथ, दूभर रखना पल भर।
किसी नई संज्ञा में नव सम्बोधन,
पाने रूप स्वरूप - नया उत्सुक उर॥

७१

निखर रहा सौन्दर्य : नीर सा पल तल,
संगीत मीन सा, चञ्चल भाव लहर पर।
हर्ष कमल खिलता अनुराग उषा में,
प्राण मधुप सा गुन गुन करता जिस पर॥

७२

निभृत प्रेयसी, मन के सरस सरसि में,
प्रेम पद्म खिल रहा क्षेम मय हेमिल।
बरस रहा जिससे प्रभात शोभा का,
जाग रहा सोये अग जग का मंगल॥

७३

तेज चयन, अध्यात्म चेतना चिन्तन,
आत्म शुद्धि, आत्म स्थिति, तप का अवसर।
शक्ति सृजन साधना, आत्म प्रत्यय, रुचि,
मधुर प्रेम है रस स्फूर्ति दायक चिर॥

२

शुद्धानन्द-मूर्ति मधु रस की, परम प्रेम की नियति।
आत्मा का सङ्गीत, जीव के सौभाग्यों की सुकृति॥
सार्थकता, पूर्णता, महत्ता, ऋजु निजता की झलक।
नारी है वह कुहक कि पत्थर मे जाता मधु छलक॥

३

अन्तर के सुख की स्मित रेखा मदिरस्नुत उच्छलित।
सुस्नेहार्द्र दीप बर्त्ती सी, अनुरागारुण ज्वलित॥
आलोकित मन प्राण गृहाङ्गन, पुलकायित तन वदन।
कादम्बिनी अमृत की भू पर बरसाते नव नयन॥

४

जाति, वर्ग सम्बन्ध, वही कुल श्रेष्ठ जहाँ मन मिला।
जहाँ प्रेयसी-वधू, दयित-वर, स्वर्ग बने वह इला॥
साधारण जन प्रति व्यावर्त्तन-प्रेमी जन प्रति वृथा।
प्रेम पुष्ट होता हो जिससे वह सर्वोत्तम पृथा॥

५

आ पहुँचा परिणय पुण्योत्सव का समीप शुभ समय।
सात्विक सुन्दर आयोजन में व्यस्त सुहृद जन हृदय॥
है व्यापार न लेन देन का, मन विनिमय का स्फुरक—
यह विवाह दो परिवारों की अनिश एकता परक॥

६

कर नान्दीमुख श्राद्ध, सुरों का, गुरु, कुलेष्ट, प्रभु यजन।
श्रद्धा से पितु माँ ने पूजे विप्र धेनु के चरण॥
हुए स्व दुहिता के परिणय के पुण्य यज्ञ में वरण।
की ब्राह्मी विवाह विधि सारी वैदिक पथ अनुसरण॥

७

शान्ति, तृप्ति की प्राप्ति पूर्ति शुभ, शक्ति श्रेय का गठन।
ज्ञान भक्ति, निष्ठा प्रत्यय का, प्रेम नियम का यजन॥
पुनर्ग्रहण शाश्वत उभयों का प्रकृति पुरुष का मिलन।
यह परिणय स्वभाव, इन्द्रिय, मन, नियति-विश्व विष शमन॥

८

यह बलात्पशुओं के बन्धन की न रज्जु-बलि शिला।
स्वप्नाशा-सुख दाह हेतु क्या यह यज्ञानल जला?
है विवाह अभिमत हृदयों का सुदृढ़ गठन चिर स रति।
प्रीति स्थायी करने का पथ, न कि मिलितों की वियुति!

९

मण्डप में राजित महिला गण, भद्र नागरिक प्रमुख।
सब आमन्त्रित सम्बन्धी जन, वर-कुल के कुल तिलक॥
ऋचा गान कर रहे विप्र गण, यज्ञ हुताशन ज्वलित।
लौ मिष मङ्गल दिन ढलते शुचि, धूम्र व्याज निशि ललित॥

१०

अति अनुरूप, ऊर्ध्व रेता, सम, सशम, धीर, दृढ़, दयित।
शान्त दान्त यह वधू न उससे लेश मात्र कम क्वचित्॥
ध्येय धर्म मय, कर्म यज्ञ में नव दीक्षित सह उदित।
परिणय वेदी पर श्री-हरि सी अद्भुत जोड़ी लसित॥

११

रूप राशि यह प्रकट युग कवि कल्पित पुरत: कथित।
उनकी आभा में यह शोभा साङ्गोपाङ्ग स्फुरित॥
थे इसके अभाव में प्रतिभा मेधा के कवि अमित।
आविर्भाव आज जब, जग के कलाकार द्युति रहित॥

१२

लज्जा का नन्तुल सम्मोहन, शील सकुच का अवर।
नव यौवन का मुग्ध आवरण, छवि मायंतन कुहर॥
नये प्रेम का उद्घाटन-पट, विगत द्वैत की झलक।
कर गृहीत-उर दोलित झीना घूँघट मन की ढुलक॥

१३

स्वस्थ निराडम्बर, सुन्दर, शुचि, मंगल वातावरण
उभय पक्ष के प्रति कृत्यों से होता प्रेम स्फुरण॥
एक दूसरे के प्रति शुभ चिन्तन रत अन्त:करण।
पत्र पुष्प ये जो देते, वे करते सादर ग्रहण

१४

कुल, शालीन, शील, संस्कृति, रुचि, शक्ति, प्रेम, छवि परक।
सुख, सौभाग्य, सुहाग, तेज, मङ्गल, शुचिता का स्फुरक ॥
वशीकरण, जय, आकर्षण कर, परिणीता का सुधन।
शिशु रवि सा सिन्दूर विन्दु यह अघ, कुदृष्टि, तम दलन ॥

१५

सुर साक्षी कर आज विशद के एक हुए दो हृदय।
पड़ी भाँवरें, किये परस्पर प्रण, निबद्ध दृढ़ उभय ॥
तन्मिथ इस आत्मिक ऋण से बँध कभी न दोनों उऋण।
अमिट वधू का शान्त समर्पण नर का सात्विक ग्रहण ॥

१६

नागर वर, नागरी वधू का, निश्चय-निर्णय-स्वकृत।
गुरु जन कर देते मर्य्यादित, कर विवाह विधि उचित ॥
रूढ़ि, रीति का व्यर्थ दुराग्रह, क्षुद्र हृदय कर विवश—
दोनों के मधुमय जीवन को कर देते कटु विरस ॥

१७

त्यागोत्सर्ग, तितिक्षा दृढ़ता-क्या होतीं हैं स्व-कृत ?
होतीं ये उत्पन्न प्रेम से प्रेमी मन में प्रकृत ॥
हो समाज समुदार प्रेम को लखे प्रेम के नयन।
सूक्ष्म प्रेम का दर्शन जग में, प्रेम तत्व अति गहन ॥

१८

सादर वर के निज कर से नव परिणीता शिर सुभग-
सिन्दूरार्पण-सीमन्तार्चन हुआ प्रेम पथ सजग ॥
चिकुर-तिमिर-मय-शिर नभ पर-चिर जीवन प्राची द्युमय।
ले सुहाग घट विन्दु अरुण नव माँग-उषा का उदय ॥

१९

अर्धोन्मिषित नयन, अवगुण्ठित, शिर किरीट लघु लसित।
सद्यालंकृत, आनख-शिख शुभ, शुचि रागारुण ललित ॥
वर दुकूल बद्धाञ्चल-मङ्गल-सूत्र-राग-स्रक्-सहित।
पुण्य दर्शना-प्रति सुलक्षणा, मधुर नव वधू मुदित ॥

२०

जन अनिष्ट, मन का अरिष्ट हर, प्राण कष्ट, अघ दहन।
सुष्टु, मिष्ट, जीवन वलिष्ठ कर, दुष्ट भाव-भव कदन।।
व्यष्टि, समष्टि, सुतुष्टि कारिणी-पुष्टि पुण्य की प्रचुर।
वधू दृष्टि शुभ, वृष्टि दया की, सृष्टि शान्ति की अमर।।

२१

यह अमोघ बन्धन अविनश्वर, इसकी महिमा अमित।
सब विचार करना पूर्वोचित, बाद शिथिलता दुरित।।
यज्ञ कुण्ड से चितारोह तक निभे प्रेम के सहित।
'पति-पत्नी' सम्बन्ध जगत् में अमर आत्म रति भरित।।

२२

संस्कार मोह का, नियमन विषयों का, कर सविधि।
कर परिशोध वासनाओं का, बाँध स्वार्थ का जलधि।।
अन्तरमुखी इन्द्रियों को-कर-फलद काम को स सुधि।
दे विवाह-प्रेमी दम्पति को क्षेम प्रेम की सु-निधि।।

२३

बन्दी जन शृङ्गार, वाद्य भूषण, रागानुग मुखर।
छवि अलात्, भ्रू नटी, माँग ध्वज, वय निशान, कच चँवर।।
छत्राधर, वितान पट, गति गज, चिबुक शङ्ख, कुच कलश।
कान्ता, कटि हरि पर अनङ्ग शोभा यात्रा के सदृश।।

२४

विकच रहा यौवन अञ्चल में, मन अधरों पर द्रवित।
लिपट रहा लावण्य लाज में, रूप लालसा लिहित।।
छलक रही माधुरी लोम से-अङ्ग चाँदिनी स्रवित।
उष्ण शिरा की मस्त मदिर लय मुग्ध चाप में स्वरित।।

२५

अनिश पुरुष की शाश्वत शोभा, परम सत्य का यजन।
श्रेय प्रेय पथ कीं चिन्तामणि, सुखद वास्तविक सदन।।
निज अभिमान-भूमि-यश-रस की, गौरव की गुरु शिखर।
वधू लक्ष्मी करती जन का मंगलमय प्रति प्रहर।।

२६

घर को स्वर्ग, धरा को नन्दन, स्व को ऊर्ध्वगा विधा
देती मानवता को, युग को, नव संजीवन सुधा ॥
भाव कान्ति यौवन को, जन को ललित कलाकर विभा।
नारी ही शोभित रखती चिर मन की स्वर्गिक सभा ॥

२७

छम छम करते, रस रिमझिम से, सह दर्शेन्दु तम हरण
च्युत अप्रतिम, प्रियतम के प्रियतम-पद्म उगाते चरण
हंस अरुण मुक्ताहल पाते, मंद पाते मद द्विरद
जयति वधू की गगन ज्योत्सना-सुगति प्रदा, गति वरद

२८

मूल सर्जना की, जीवन की केन्द्र, कर्म की प्रमुख।
ओत प्रोत सभी की इसमें सब तथ्यों की परख ॥
नारी का ये स्थिर स्वरूप शुचि, सर्व भाव रस रुचिर।
अति नारीत्व विराट व्यास का-विन्दु वधू यह, मधुर ॥

२९

हुआ पूर्ण परिचय, अब आया विदा समय अति दुखद।
जननी जनक, सखी गण, भगिनी, आर्त्त हुए सब सुहृद ॥
वर्षों का स्नेह भङ्ग कर, प्राण भग्न कर, अजिर—
आज सदा को त्याग रही है सब अपनों को निठुर ॥

३०

संसृति के अपार सागर में स्वर्ण तरी सी प्लवित।
यह तट तज जाती उस तट पर युग लहरों से स्फुरित ॥
बैठा आज सत्य, शिव, सुन्दर, यात्री वाञ्छित वरद।
वधू तुम्हारा यह लीला वपु, कवि कुल का स्थिर विरुद ॥

३१

मुक्ता से आँसू कण छलके-दुहिता दृग से विरल।
सबके प्राण करुण हो जिनसे, गये मोम से पिघल ॥
निज निज पट से मुख ढक सारे सिसक उठे अति विकल।
उठीं अजिर में घोर घटाएँ करुणा रस की सजल ॥

३२

हटे द्रवित वर नत शिर बाहर, तभी वधू ने निकट।
माँ ममता सरिता प्लावन मय-गयी-अङ्क में समिट ॥
मौन करुण एकान्त रुदन सह-अश्रु विमर्शित मिलन।
योगी भी जब सह न सकें तब भोगी का क्या कथन ! ॥

३३

कुछ क्षण में सम्हाल निज को माँ, बोली कर धृत चिबुक–
हुई हृदय में स्थिरता मित, पर रुका न दृग का उदक ॥
"बेटी ! हेतु इसी दिन के सब दुहिताओं का सृजन–
शान्ति धैर्य्य से तुम प्रसन्न मन करो स्वपति गृह गमन ॥

३४

जैसा है सब यहाँ वहाँ भी तुम पाओगी सुखद।
माता, पिता, बन्धु, भौजाई, बहिन सखी, सब सुहृद ॥
सह तुलसी, गुलाब, के बिरवा, शुक, सारी, मृग निचय।
उस घर सुलभ विशेष वस्तु नव प्रेम भरा पति हृदय ॥

३५

सुमति विवेकमयी ! सुख दुख के आते जाते समय।
मलिन न होने देना पय की लाज वंश यश सभय ॥
तुम पर है दायित्व उभय कुल गौरव का है मृदुल।
मम अभिन्न आत्मा, दुहिते ! तुम पग पग चलना सम्हल ॥

३६

स्वेच्छाओं विषयों से ऊपर मन इन्द्रिय से अलग।
तव स्वरूप हे ! सती ! सत्य प्रति रहो प्रेम मय सजग ॥
तुम नारी हो, हेतु न अपने जो जीती सुख तृषित।
सदुत्सर्ग, सत्सेवा सत्पथ परहित जिसका स्व - व्रत ॥

३७

मम कुक्षी से जन्म तुम्हारा, मम आत्मा से रचित।
मम भावों की परिणति-तुममें-तेज पिता का ज्वलित ॥
कीर्ति ध्वज हो तव नभ चुम्बित, चाहे सुख हो स्वमित।
शील, स्वधर्म, प्रेम हो अक्षय, श्वास श्वास हो अमृत ॥

३८

गायें यात्री गण आआ कर, सदा सुनायें पथिक—
गृह के प्रति जन, स मन सराहें तव स्वभाव गुण अथक ।।
ज्योतिर्मय व्यक्तित्व तुम्हारा जगे दीप सा विमल ।
बेटी ! पुण्य मयी करणी कर जीवन करना सफल ।।

३९

सास श्वसुर ही मात पिता अब देवर ही तव अनुज ।
भगिनी, ननद, ज्येष्ठ अग्रज हैं, उनको ही निज समझ—
सबका आदर, आज्ञा, सेवा श्रेय तुम्हारा परम ।
कभी हमारे कारण इनमें त्रुटि मत करना सभ्रम ।।

४०

तुमसे तुष्ट हमारी आत्मा, तुम निज कुल आभरण ।
नव गृह में सन्तुष्ट सभी हों ऐसा हो आचरण ।।
निज शिक्षा, दीक्षा, विद्या का सदुपयोग कर सजग ।
चिर विनम्र सच्छील मयी तुम रहना पति की अनुग" ।।

४१

कहते कहते माँ की आँखें बरस उठीं फिर विवश ।
विनत मातृ पद की रज शिर ले, उठी जनक पद परस ।।
शिर पर वरद हस्त रख बोले गद् गद् स्वर में पिता ।
जीवन हो सुखमय; चिर समुदित रह सुहाग रवि सुता ! ।।

४२

निष्कण्टक पथ मिले, लक्ष्य मयि सर्व सिद्धि मयि प्रगति ।
लोकोत्तर प्रतिभा आभा से दीप्ति मती हो प्रकृति ।।
पति का हृदय तुम्हारा गृह हो, तब उर पति का निलय ।
अकुतोभय, अपराजित जग में हो चरित्र तव उदय ।।

४३

सार्थकता है इन श्रवणों की तव शुभ गुण गण श्रवण ।
शीष हमारे रहे तुम्हारा श्वेत सुयश आभरण ।।
दुहिते ! तुम कर्त्तव्य धर्म का परम ध्यान रख सतत ।
क्षणिक देह, सुख मोह, 'अहं' से अघ से रहना विरत ।।

४४

यदि तव अनुज और अग्रज में आजाये कुछ विकृति।
तब केवल हो एक इसी कुल की क्षति अपयश, कुगति॥
पर तव कण भर कलुष त्रिकुल का क्षय कारण हो अकथ।
अति दायित्व तुम्हारे ऊपर, सुते! न तजना सुपथ॥

४५

संग तुम्हारे शुभाशीष मम-हो न तेज तव मलिन।
देव कृपा से-पुण्य ज्योति का-तुमसे हो अवतरण॥
आज पवित्र प्रेम की बेला, मोह न अब यह उचित।
पति में तुम्हें प्राप्त हों बेटी, प्रभु जो सबके दयित॥

४६

फिर कुल गुरु के सम्मुख आकर चरण शीष धर प्रणत।
अञ्जलि बद्ध खड़ी आनत मुख आज्ञा पाने स्तमित॥
"सुते! तुम्हारा चिर मंगल हो सब सुख हों चिर सुलभ।
सब अनुकूल तुम्हें आदर दें सदा रहो तुम प्रतिभ"॥

४७

कभी न निज में आने देना कृत्रिमता, पर-प्रकृति।
स्वच्छ, सरलता-सद्भावों से सात्विक रखना स्वमति॥
सत्य, न्याय में रत रहना तुम द्वेष घृणा से अलग।
साथ देह के आत्मा की भी सुधि रखना चिर सजग॥

४८

रूप, ढंग, पथ, प्रतिमा जो हो वस्तु स्थिति, अधिकरण।
हो सबका शुचि लक्ष्य आत्मा परमात्मा का स्मरण॥
शान्ति, सफलता, सुख का पथ है शुद्ध साधना गहन।
हो प्रयोग निज से तृण तक का कर उसका उपकरण॥

४९

अग्रज का अभिवादन करके विकल हो गई सुतनु।
बोले वे गम्भीर गिरा में ज्यों पावस का ञदनु॥
'बहिन! शान्त स्वस्थ मन से कर दुर्बलता पर विजय—
हो गृहस्थ के कर्म गगन में तव मङ्गल मय उदय॥

५०

प्राण वर्तिका, दीप हृदय रे ! नव स्नेह घन भरा—
ज्योति जगे ऐसी तुम में जो तिमिर मुक्त हो धरा ॥
नारी की गौरव गरिमा की तुम में छिटके शरद—
बहिन ! बनो तुम निजाचरण से शाश्वत कवि कुल विरुद ॥

५१

तभी अनुज ने विनत चरण पर शीष धरा हो द्रवित ।
बाहों में भर विकल दुलारा भगिनी ने दृग स्रवित ॥
'बहिन ! कहूँ मैं क्या ? तुम जानीं ,मैं न टोकता गमन—
तव चरित्र से मिले हमें नित नवादर्श—अनुकरण'' ॥

५२

बहिन-कण्ठ से लग रोई वह सिसक सिसक जब विपुल ।
आश्वासित कर कहा आर्द्र हो-''धीर धरो प्रिय ! सम्हल ॥
इसी भान्ति मैं भी तो पर के गेह गई हूँ बहिन ! ।
मंगल और शकुन है जग में इस प्रकार निज गमन ॥

५३

नारी जीवन बहुत कठिन है पग पग पर अति गहन ।
तनिक चूकने से हो जाता सत्ता का ही दहन ॥
पक्ष, प्रतीप उभय में रखना निज को कोमल, मधुर ।
मेरी प्रभु से विनय मिले सब तुम्हें सुसङ्गत, रुचिर''

५४

भाभी के पद छू बोली वह ''रहना मुझ पर सदय ।
नव स्नेह उपकृत मैं कैसे व्यक्त करूँ निज हृदय ॥
अङ्क स्थित कर बोली वह रो-मैं चिर तव हे ! ननद ।
इस नवीन गृह में सर्वाधिक तुम ही हो मम सुहृद ॥

५५

सखियों से फिर मिली पुलक कर प्रीतिमयी हो करुण ।
रोयी शैशव से अब तक की कर क्रीड़ाएँ स्मरण ॥
सर्वोपस्थित जन का करके अभिवादन अति विलख ।
पति के संग चली छाया सी विस्फारित दृग निरख ॥

५६

पाणिबद्ध वृद्धों ने वर से कहा विनत कर विनय।
करके ध्यान हमारा इसकी क्षमा करें त्रुटि सदय ॥
निज गृह की प्राणाधिक निधि यह लाड़ प्यार से सुकृत
हम सबकी सम्मिलित याचना दया दृष्टि रह सतत ॥

५७

"आत्मा सी, कुल का देवी सी ससम्मान यह अभय।
हों विश्वस्त, स्वामिनी बन कर रहे हमारे निलय ॥
इसके वारि-विन्दु तोलेंगे हम देकर निज रुधिर।
आप गुरुजनों का किङ्कर मैं" धन्य वर गिरा मधुर ॥

५८

विदा हुए सादर दम्पति वे, शकुन हुए सब प्रतिभ।
यव, प्रसून, खील लाजा की वृष्टि हुई प्रति ककुभ ॥
उत्सव की इति की व्यापित थी यहाँ शान्ति अति गहन।
उधर नवोत्सवमय था घर में नवल वधू आगमन ॥

५९

समारोह सह, अति आदर से, गान वाद्य के सहित।
बहिनों ने गोपुर पर स्वागत किया वधू का बहुत ॥
शुचि आरता उतारा माँने न्योछावर की अमित।
पितु ने दिया दीन दुखियों को पुष्कल धन मन मुदित ॥

६०

लोक लक्ष्मी नई वधू का गृह में मङ्गल चरण।
मर्त्य स्वर्ग की शुचि विभूति का मनु सम्पूर्ण वरण ॥
सरस्वती विधि निज मराल सह गणपति गति के अनुग।
पञ्चभूत तन की इस छवि में सपति इन्दिरा सजग ॥

६१

एकाकीपन सूनेपन की पाहन कारा कठिन।
भङ्ग प्राण का वधिर मूक मन विश्व मौन आवरण ॥
पारस का प्रवेश सोने का देश वना घन तिमिर।
पारद सा झिलमिल गेहाङ्गन वारिद सा प्रति प्रहर ॥

६२

कुल रीतियाँ पूर्ण होने पर, हुआ देव कुल यजन ।
किया सविधि फिर नई वधू का वंश सूत्र में ग्रहण ॥
कुल के नर नारी गण ने आ क्रम से विस्मित नयन ।
देखा अवगुण्ठन ऊँचा कर मधुर वधू का वदन ॥

६३

"अमृत नयन, अमृताधर, अमृत दृष्टि, अलकावलि अमृत ।
अमृत हास्य, छवि अमृत, अमृतस्वर, श्वास अमृत, श्रुत अमृत ॥
भाव अमृत, लावण्यामृत नव, घ्राण अमृत, वय अमृत ।
माधुर्य्यामृत-वधू अमृत निधि मृदु रद रेखा अमृत" ॥

६४

शची मानिनी, उमा अर्ध तन, अस्थिर श्री, रति दुखित ।
मुखर शारदा, क्षणिक शरद, अप्सरी स अघ, द्युति ज्वलित ॥
मदन अतनु, पर वश मधु, सुरद्रुम अलभ, हीन कुल कमल ।
शशि सकलङ्क, स्वर्ण सौरभ बिन, स्वयं स्व उपमा निखिल ॥

६५

यौवन की आग्रह, अभीष्ट निज, प्राणों की अभिलषित ।
कलाकार की पोषक रस निधि, रुचि संगत कुल उचित ॥
यथा कल्पिता, पूर्व प्रार्थिता, दृग शोभन, असु प्रतिभ ।
सुन्दर सपनों की चिर सुन्दर मन चाहीं खरु सुलभ ॥

६६

कितने मौन मुखर आमन्त्रण, मूक निहोरे-निहुर ।
अविदित आकर्षण, सम्मोहन, चाटु, प्रार्थना प्रचुर ॥
चिन्तन, चाह, आग्रह, ईडा, सुचपन, अनुनय, विनय ।
तड़फन, लगन, साध, मानता से आई नर निलय ॥

६७

जन के पुण्य, धर्म से जग के, पूर्वज गण के सुकृत ।
कुल के न्याय, सत्य सुहृदों के, व्रत समाज के फलित ॥
गुरुजन के अशीष, पुरजन सहमति से, विधि के हितज ।
जननी जनक यत्न, निज तप से, प्राप्ति न इसकी सहज ॥

६८

अलबेली, चुलबुली, मनचली, छैल छबीली, चपल।
गर्वीली, नव खिली, मदीली, सजल, सजीली, स्वरिल ।।
नवल नवेली, अठखेली प्रिय चटकीली तनु तिलक।
मिली लजीली, सती, सुरीली, वधू रसीली रसिक ।।

६९

धरती के कङ्काल उठ पड़े पुष्ट प्राण मय चकित।
इसके आते ही करण करण में रूप, गन्ध, रस लयित ।।
हुई तीन दिन में ही घुल मिल घर में सबकी रुचिर।
विदा कराने अनुजागत, सब उठे प्रीति से सिहर ।।

७०

जो भर्त्ता है वही भार्या, एक पन्थ दो पथिक।
जो कर्त्तव्य धर्म पत्नी का, पति का उससे अधिक ।।
पितु गृह आई वह प्रसन्न मन, तुष्ट हुए सब अनिश।
भाभी ने, बहिनों, सखियों ने पूँछी बातें सरस ।।

७१

भाभी ने गृहस्थ की दी शुभ शिक्षा रस की ललित।
किया तरंगित परिणत उसका हृदय प्रणय से निभृत ।।
पति के योग, क्षेम, प्रेम का नवोत्साह नव लगन।
नई कल्पना नव आशा में जी.न तन मन मगन ।।

७२

एक वर्ष तक विप्रलम्भ की मधुर साधना निरत।
पुष्ट-प्रस्फुटित हुआ हृदय पा स्वप्न सत्य का अमृत ।।
आत्म साधना के प्रकाश में निज स्वरूप की झलक।
मिली दयित के दिव्य रूप की भव्य भाव भयि चिलक ।।

७३

न मन यत्न करने पर भी जो टिक पाता है तनिक।
चुम्बक से, हटता न हटाये गया लोह सा चिपक ।।
उद्घाटित हो रहा वधू के मर्म मूल में प्रणय।
जगा समन्वय, शाश्वत विनिमय, शुचि अनुनय नव विनय ।।

७४

प्रेम-तत्व वेत्ता गण की निज दिव्यात्मा से स्फुरित
पूर्णाध्यात्म वादियों की यह आविष्कृत, श्रुति जनित
मानव की सर्वाङ्ग सांस्कृतिक मानवीय अति प्रगति।
परिणय की पद्धति यह जीवन दर्शन की शुभ प्रसृति ॥

७५

पत्नी पर अंकुश रखने का स्वत्व नरपति को प्रमित।
वह अपने पथ पर स्वतन्त्र, यह मुक्त स्व पथ पर सतत ॥
निज इच्छा से करले चाहे जो उत्सर्जन सयश।
किसी विशेष भाव, धर्म, के लिये नहीं यह विवश ॥

७६

नर नारी के मध्य प्रेम के परम भाव का ग्रहण।
यह समाज द्वारा दोनों का सात्विक एकीकरण ॥
है विवाह उत्साह पूर्वक नव जीवन का सृजन।
इस मिष प्रिय-प्रेयसी उभय का सर्वाङ्गीकृत मिलन ॥

७७

पहले राम स्वयं बनलें हम तब फिर इससे उचित—
सीता बन रहने की आशा, एक पक्ष गति असत् ॥
स्वाभिमान सम्मान वधू का करें सुरक्षित पुरुष।
नारी के व्यक्तित्व सत्व को हम समझें निज सदृश ॥

७८

व्यक्ति, जाति, देश, संस्था की, स्वस्थिति, गौरव, सुयश।
अधिक नरों से नारी रखती निजोत्सर्ग कर अनिश ॥
प्रलय घात सह कर भी पथ से नहीं हुई जो विमुख,
भारत की विभूति सञ्चय में नारी ही है प्रमुख ॥

७९

सहज सींचने निज त्रिफलद तरु, प्रकट हुई यह सुतनु।
धन्य समय पर बरस रहा निज सौभाग्यों का नदनु ॥
अक्षय कीर्ति, स्व अमृत स्थिति की सिद्ध पीठ यह उदित।
वधू रूप में प्रकट हुए प्रभु, सदा रहे यह विदित ॥

८०

जीवन का विस्तृत पथ जिस पर कठिन अकेले गमन ।
निर्वाचित हम करें परस्पर सहमत सात्विक स्वजन ॥
नारी की प्रेरणा, चेतना, नारी का रस कलश ।
हरे श्रान्ति, कुछ खले न दूरी, प्रति यात्रा हो सरस ॥

८१

नैतिकता, मानवता, शुचिता, दृढ़ चरित्र, शुभ हृदय ।
भाव, विवेक, शक्ति, साहस से निभ पाता है प्रणय ॥
नित नव नव बलिदान चाहता पग पग पर आमरण—
यह विवाह लोहे का बन्धन समझ करें हम ग्रहण ॥

८२

वधू रूप में एक साथ सब सम्बन्धों का निचय—
प्रेयसि प्रीति, कामिनी की रति, शिष्या की शुचि विनय—
माँ ममता, भगिनी की निजता, सुता भक्ति, गुरु दया ।
मित्र मैत्री, इष्ट अनुग्रह क्या न वधू ने दिया ? ॥

८३

दिव्य पुरुष नारी, नर, बालक, सर्व सुधन, उपकरण ।
देव प्रकृति के सहमत-सम्मत-मर्य्यादित सब स्वजन ॥
नवादर्श – उत्कर्ष – हर्षमय सात्विक वातावरण ।
हो गृहस्थ निज सफल, वधू तुम स्वर्ग करो निज सदन ॥

८४

लोक और परलोक बनें निज तवालोक से प्रयत ।
भाग्यकोकनद खिलें, शोक सब-मिटें ओक के दुरित ॥
रोक टोक कुछ रहे न सबकी कोख शान्ति से निभृत ।
जीवन का सन्तोष प्राप्त कर तृप्त रहें हम सतत ॥

८५

श्रवण स्पर्श स्मृति दर्शन से, अमृत भरे सुन वचन ।
कृपा दृष्टि तब पा हो जाते शीतल, जलते नयन ॥
नारी ! तब यह रस रत्नाकर मुक्ति-भक्ति मणि भरा ।
आप्लावित होरही पुरुष की आज अहं की धरा ॥

८६

बीते कुछ दिन, वृत्त मिला शुभ, आया मंगल प्रहर।
शुभागमन शुभ हुआ दयित का द्विरागमन प्रति मधुर ॥
शुचि शुभाशीर्वाद सबका ले सुष्ठु समय सह शकुन।
विदा हुई कामिनी स करुणा सायोजन पति सदन ॥

८७

नारी की मृदु भोक्तृ शक्ति के वर विलास से जगत्।
तप्त दीप्त शान्त रहता है रुचिर और रस लिहित ॥
सुभगं-करणी, शक्तीकी यह आढ्यं-करणी, सुमति।
अति धीवरी, सुनयिका नारी नृप्रियं-करणी जयति ॥

कामिनी

सप्तम सर्ग

१

भीता, श्लथ साहस, लज्जाकुल, नव स्निग्ध वय,
द्विरागता, पद्मिनी, नवोढा, वधूत्तमा जय।
सखियों के आग्रह अनुनय से प्रथम मिलन प्रति-
उदित कामिनी के सम्मति मय मौन मधु स्मय॥

२

सुतनु हृदय में निखिल भाव-रस सिन्धु तरङ्गित।
आनख-शिख इन्दिरा इन्दु इन्दीवर विलसित॥
इसमें अति सौन्दर्य, प्रेम, चैतन्य समाहित।
प्रति स्पन्द संगीत, प्रति स्थिति से सुख प्लावित॥

३

खाद्य निवह शृङ्गार, दृष्टि-सेनाचय यौवन—
करता दिव्य–हसित निर्मित अधर स्थित माधव।
मदनाहव के शिविर हृदय पर तने हेम मय।
श्वांसों में ढल रहे तीक्ष्ण मन्दार तीर नव॥

४

पद ने नयन धैर्य, दृग ने ली चरण चपलता।
कटि गुरुता नितम्ब ने, उर पर उठे रहसि द्रुम॥
अङ्ग अङ्ग में सकुच लाज का पीवर पहरा।
लोम लोम के सुरा चषक भरता सुवयोद्गम॥

५

गमनोपक्रम व्यस्त खड़ी वह सद्यस्नाता।
कच सृत जल मनु तिमिर निगल मणि हार उगलता॥
तन पर शीकर हेम कमल नीहार कण सदृश।
सिक्त पट स्तन ज्यों गिरि पर झीना हिम जमता॥

६

प्रोच्छण, गन्ध, राग, रस, भूषण, पोशाकार्चन।
केश प्रसाधन प्रभृति क्रिया सह चतुर सखीगण॥
रति रस कह मधु मिलन हेतु उद्यत, प्रोत्साहित—
भीति, सकुच हर, प्रीति नीति से करतीं शिक्षित॥

७

'बन जाना अनजान, व्यक्त रुचि हृदय न करना।
मान, कोप के अभिनय बिन द्रुत निकट न कढ़ना
रीति नीति से, मधुर प्रीति से हरना पति मन
हाव-भाव, लीला-विलास से भर उन्मादन

८

नटन, गमन अवलोकन, हसन, वचन की पटुता
दिखलाना पर तनिक न आने देना कटुता।
घूँट घूँट, घट पर घट अपनी सुधा पिलाना!
तृप्त न होने देना, कण कण प्यास बढ़ाना॥

९

मिला अनोंखा रूप, स्वरप्सरियों सा यौवन।
तना तुम्हारी भ्रू पर तीक्ष्ण मनोज शरासन॥
रक्षा प्रति रख पञ्च बाण चितवन में जाओ!
कसो न इतनी लाज कि टूटे प्रणयास्वादन॥

१०

अनुनय, विनय, अर्चना से ही मुख दिखलाना।
पति का सत्य सत्व पाने पर ही मुस्काना॥
उनके कथन सिन्धु में तव स्वर हो मोती सा,
यत्न विवश निषेध करते शय्या पर जाना॥

११

कर अनल्प उत्पन्न स्व प्रति विश्वास कान्त में
श्रद्धा का उद्गार प्रकट में बहने देना॥
इङ्गित से ही निज अविदित आत्मार्पण करके
प्रियतम की बाहों में अपना-पन खो देना॥

१२

तन स्पर्श तव करें न प्रिय, मत डरो सदय वे
वही करें जो तुम्हें लगे सुखकर अति रुचि कर!
चलो अकेले में डर, भरदे शर न मदन का
सहमा, कहीं मर्म भेदन कर, पीड़ा गुरुतर॥

१३

अधिक कहूँ क्या? स्फुरित करेंगे मनसिज गुरु सब।
समयोचित का ज्ञान स्वतः देगा सुरतोत्सव॥
निर्भय सखि! सम्पन्न करो तुम प्रथम मधुमिलन।
पति तव कोमल हृदय-रसिक-चूड़ामणि, सज्जन॥"

१४

"मन शङ्कित, मम विकल प्राण, लज्जाकुल हूँ मैं।
मुझे छोड़ दो, शिथिलि होरहा मेरा साहस ॥
रस विदग्ध वे, मैं अनजान किशोरी अल्हड़,
करुण हुई कह—'हाय आज मैं कहाँ गयी फँस' ॥

१५

पाणि पकड़ ले चलीं सखी *विवशाश्वासित कर,
महक उठा चञ्चल अञ्चल का मृदु मलयानिल।
खिंचा चरण प्रतिविम्ब धरा पर इन्द्र धनुष सा,
मदन दुन्दुभी बजी नूपरों के मिष कोमल ॥

१६

अधरों पर नव उदित प्रणय की कुंकुंम रेखा—
प्रथम समझ के भार झुकी भ्रू खिंची भाल नस।
मदन यज्ञ प्रारम्भ अर्चना हेतु हृदय पर—
हेम शिव स्थापना सविधि श्रीफल से कुच मिष ॥

१७

शरद चन्द्रमा को ले ज्यों तारों की अवली—
नील गगन के नये मञ्च पर आती हिलमिल।
नई वधू को नव प्रियतम के मिलन कक्ष में
लाया उत्सवमय सखियों का उत्साहित दल ॥

१८

मौन, स्पन्दित, रुकी कामिनी काम कल्प तरु—
शयनागार सुसज्जित की मखमली धरा पर।
सहमी सलज कनखियों से लख स्वर्गिक सजधज,
स्वप्न कल्पनामय शोभा, स्वागत मय मन्दिर ॥

१९

कुसुमार्चित, कौशेय पटावृत, दिव्य तल्प से—
उठा, प्रतीक्षा व्यथित सुरोपम नर स्वागत को।
बरस उठे अभिवादन, अभिनन्दन, नयनों से—
रुका लीन लज्जार्णव में लख नव-आगत को ॥

२०

वधू गृहीताञ्चल, कर्षण कर चली, सखी कह·
इससे कोमल, रुचिर, प्रीति मयि, रीति बरतना' !
यह सौभाग्य, पुण्य, सुकृतों का सिद्ध सुधा फल,
हेम-मयी का निज निकषा पर स्वर्ण परखना' ॥

२१

द्वार बन्द द्रुत हुए, सिहर वह उठी मृगी सी,
प्रणय वचन, रस सम्बोधन, सम्मोहन बरसे।
गज कर से कर में उसका पुष्कर कर उलझा.
गई सिकुड़ती-गड़ती सी वह, प्रिय दृग तरसे ॥

२२

'देवि ! तुम्हारा क्रीत, प्रीति याचक, अनुगत मैं,
निठुर बनो मत, सदय समुद निज करुणा कण दो ।
अब इतना संकोच लाज अन्याय नहीं क्या ?
करो न आकुल अधिक, वरद ! हे ! कृपा किरण दो ॥

२३

द्रवित हुई तनु, शिथिल हुई मित, बढ़ी मन्द मृदु,
झलके श्रम कण, पुलकायित तन, मीलित लोचन।
उर की धड़कन बढ़ी, ठगी सी कढ़ी तल्प तट—
आनत शिर, घूँघट सम्हालती स्मित स्निग्ध तन ॥

२४

हुई कलाकृति सी सानुग्रह आग्रह से स्थित
रही फैलती सुरभि, रूप द्युति कङ्कन शिञ्जन।
गया सँजोता वह उसमें नव भाव चाव रति,
उत्सुकता भर किया तृषा का प्रथम जागरण ॥

२५

उदित प्रीति रवि, विकचित हुआ सुतनु पद्मानन।
आर्द्र हुआ अलि गुञ्जन से मकरन्द कोष तल ॥
चञ्चल अवगुण्ठन कोरों पर थिरक उठा श्लथ—
बरसाता मन्दार श्वाँस का मृदु मलयानिल ॥

२६

"मधु विलास के गगन ! तुम्हारे शशि पर कब तक
घिरा रहेगा सान्ध्य रेशमी झीना बादल ?
गंगा की निर्मल धारा के मध्य स्थित भी–
एक बूँद के लिये तरसता मन तृष्णाकुल !

२७

सहसा झलक गया छवि अमृत स्नुत फुल्लानन।
अंग अंग में दौड़ गई बिजली सी तत्क्षण ॥
योगी मायावरण हटा ज्यों लखते आत्मा,
खोल वदन अवगुण्ठन प्रिय करता मुख दर्शन ॥

२८

ऊपर नभ पर उदित हुआ पूर्णेन्दु शरद् का,
पर धरती पर प्रकट आज उससे उज्वलतर।
सस्वर - सामृत-अनघ-निकट - सुरभित स्पर्शमय–
अन्तर तम हर शशि पाया नर ने अपने घर ॥

२९

अपलक दृष्टि स्थिर छूकर प्रिय की रागारुण,
सद्य कपोलों पर लज्जा का भग्न कुंकुमा।
छूटी अलक, झुकी भ्रू, द्युत श्रुत अधर, पलक नत–
रंगी नयन की कोर रिसी रस मुग्ध भङ्गिमा ॥

३०

"की याचना-तड़फ रहा हूँ सुनने को तव—
भुवन माधुरी सार गिरा का वीणा सा स्वर।
एक वार बोलो, वह सहसा बोल गई 'ना'
इतने से ही उमड़ा गीत सुधा का सागर ॥

३१

"मेरी ओर न दृष्टि कर रहीं क्या मैं हूँ प्रिय–
भाद्र चतुर्थी का शशि, अथवा सान्ध्य उडु प्रथम !
बनना चाहूँ देवि ! तव दिशोद्बोधक ध्रुव मैं,
जिससे मुझे सदैव समुन्नत वदन लखो तुम ॥

३२

"रूपसि ! करके कृपा बतादो मधुर नाम तो !
सकुच, सहम, श्रम से कह सकी सु 'ज्योत्स्ना' अस्फुट।
सुन प्रशस्ति निज रूप, शील, गुण, भाव, नाम की–
भूली सुख की वधू वदन पर विरल तरल लट ॥

३३

हस्थि शुण्ड से निज कर में ले वधू पद्म कर,
भाल स्पर्शित दिया: भावमय भव का आदर।
रूठ गईं क्या? कुपित हुई हो! शपथ तुम्हें मम,
आज मुझे दो दान सुकोमल प्यार भरा उर ॥

३४

भीरु भामिनी भीत शपथ से सिहर उठी क्षण,
रह न सकी चुप, 'वह तो तुमने छीन लिया है।
किन्तु देवि! उससे पहले मैंने अपना ही,
प्राण सहित मन तव चरणों पर वार दिया है ॥

३५

उभयों की इस सहज गिरा मङ्गलाचरण से—
हुआ प्रणय मन्दार मुकुल का प्रथमोद्घाटन ॥
दयित भुजाओं में घिर बरसा सुतनु सुधा घन।
वधू अधर पर दीप्त कान्त का मधु नीराजन ॥

३६

'फुल्ल कमल, पूर्णेन्दु मिलन' चर्चा खग रव मिष,
'कमल बन्धु' सुन उदित, चलाते कुपित रश्मि शर।
भङ्ग सुहाग प्रथम निशि मिलनोत्सव दम्पति का,
कुमुद नयन मीलित अतृप्ति का हिम सागर भर ॥

३७

दिन में सखी माध्यम से सुयोग सुविधा पा,
हुआ मिलन, सह भोज, भ्रमण, सामोद समन्वय।
लख स्वभाव, सद्भाव, धर्य्य, व्यवहार सुसंयत,
पति प्रति प्रत्ययमयी, वधू सङ्कोच हुआ क्षय ।

३८

प्रथम प्रभाव परस्पर का उदात्त मङ्गल मय,
आस्वादक, आस्वाद्य बने तन्मिथ रस साधक।
एक हो चले शान्त समर्पण मय अनुरागी,
मधुर भाव से आत्मा के रस सिद्ध उपासक॥

३९

कंल की सोने की प्रतिमा में द्युतिस्पन्द अब,
कल सुगन्ध परसा जब जीवन शक्ति तरङ्गित—
हो, तव उसके उर घट से चैतन्य सृष्टि का
स सौन्दर्य, सङ्गीत, शान्ति, सुख, रस मय प्लावित

४०

पिछले दिन सव सृजन मात्र के आज उदय का,
सम्प्रति दिन वसन्त के, फूल फलों का नन्दन॥
नव प्रकाश, नव प्रगति, श्रेय का पावन क्षण तो,
मानव की धरती पर अब उतरेगा प्रति दिन॥

४१

यह कोमल आवेश हृदय का—सत्तार्जित कर—
अहं भेद-उच्छलित 'स्व' में संज्ञा प्रज्ञा मय।
इस नव पथ पर साधु सुयोग आत्म दर्शन का,
सहज 'रसो वै सः' अनुभव की स्थिति का उपचय॥

४२

जीवन के उल्लास; लास, की निशा दूसरी,
नई किरण का नया इन्दु ले भूपर उतरी
मधुर मिलन के नवोत्साह सुख में विभोर मन—
आई वधू अनूप रूप की अमृत अप्सरी॥

४३

दिव्यायोजन युक्त दयित ने कक्ष द्वार पर—
किया भव्य स्वागत, आदर से अगवानी की।
सुतनु पाणि में सुमनार्पण कर सहज शीप पर—
बरसायी कवि कुल मोहक विभूति वाणी की

४४

प्रत्युत्तर में रणित वलय, काञ्ची, नूपुर, स्रक्,
रुनक भनक कर ललक, चिलक लज्जार्त चरण से।
पाणिगृहीती चली रूप के भार लचकती,
रति मन्दिर में छलकाती छवि मुखावरण से।

४५

हुआ विविध आतिथ्य, पान, ताम्बूल, गोष्ठी,
रहसि रीति मय शृङ्गारिक क्रम से रुचि विनिमय।
ललित कलाओं, सरस केलियों के माध्यम से,
समैकावयवी हुआ द्वैत अभेद एक - मय॥

४६

"मैंने सुना गीत रचतीं तुम सुमधुर गातीं,
क्या मुझको सौभाग्य न दोगी इस प्रसाद का!॥"
" मैं अबोध कुछ मुझे न आता, विवश न करिए,
भेट हठी ने वाद्य हरा अवसर विवाद का॥

४७

सह निषेध मित मान मयी ने सकुच बीन पर—
एक गीत गा मादकता का सिन्धु बहाया।
इति पर सहमी, सलज वधू का चिबुक ग्रहण कर—
पति ने भावोद्वेलित बाँहों में दुलराया॥

४८

'क्या न बजेगी मधुर वेणु तव' सुन प्रियानुनय,
मुक्त मूर्च्छना मयी बजी वंशी प्रियतम की।
झूम उठी वह मन्त्र मुग्ध सी नृत्य पुलक भर—
मुखर हुई रस रिमझिम ध्वनि पायल छम छम की॥

४९

ब्रह्मानन्दास्वादन जन को दे सकते हरि,
और वधू दे सकती उसका सहज सहोदर।
आत्म लीन नर हुआ एक टक निरख वधू मुख।
एक स्तर पर दीख पड़े नारी अरु ईश्वर॥

५०

चाहों की झंझा में बाहें उलझ गईं खुल—
अधरों पर मधु कलश अधर का उलट गया जब।
तभी गगन के द्वार अरुण घट ले शिञ्जित पद—
उषा लख पड़ी विहँस छिड़कती प्रात सुधासव॥

५१

सोना जगना, रोना हँसना खाना पीना।
चलता ही रहता है जग में मरना जीना॥
वे ही धन्य जगत् में चलते फिरते जिनके—
मन में बजती सतत मधुर भावों की वीणा॥

५२

क्षण क्षण बढ़ने लगा प्रीति का अंकुर उर में,
पल पल होने लगे नयन तन्मय रस लोलुप।
होने लगा प्रतीत युग्म जन्मों के परिचित,
कल्प लता सी एक अपर कल्पाश्रय पादप॥

५३

पुनः सरस सम्पर्क प्रात से प्रकृत स्थापित।
लग्नोत्साह, समुत्सुकता, अतृप्ति उद्वेलित।
अब तक दोनों स्वप्न, कल्पना, भाव जगत् में—
सरल वासना रहित स्वस्थ शुचि मन से विलसित॥

५४

हुआ शिराओं में समुष्ण नव रुधिर स्पन्दित,
दोनों का मन आज नई लहरों में दोलित।
सुतनु दृष्टि से लुक कर आज मदन ने पहला—
किया मर्म भेदी सम्मोहन शर संधानित॥

५५

काव्य, चित्र, संगीत गोष्ठी, चौसर क्रीड़ा,
रहसि वार्त्ता, बहु विधि चर्चा, ग्रहण, समर्पण—
में बीता दिन एक निमिष सा आयोजन में,
हुआ मधुर नव मिलन निशा का सुखद आगमन॥

५६

कर सोलह शृंगार षोडषी आनख-शिख सज–
चली हंस गति से कुसुमाकर गन्ध उड़ाती–
लुका रहा छिप अलङ्कार में मदनायुध निज—
अधरों से रवि, दशन ओट मदिरा छलकाती ॥

५७

आती पति गृह-स्वर्ग-लक्ष्मी शयन कक्ष में,
प्रिय ने मधुपर्कार्पण कर की अति पहुँनाई
"स्वागत अतिथि, स्वामिनी, अभिवादन, उपकृत मैं।
आज भुवन की शोभा मेरे घर चल आई।"

५८

निश्चल इस मनुहार प्यार से हार गई तनु,
विश्रामार्थ विजय की पति ने अङ्कवार में।
नव स्नेह मय निज मृण्मय में द्युत वर्त्ती सी—
उसे लसित कर पर्व दीप सा बहा धार में !

५९

"देवि ! न मैं तव योग्य तथापि पसन्द प्यार कर,
मुझे परम सौभाग्य सुगौरव दान किया है"
"क्यों इतना सम्मान दे रहे मैं अनुगत तव
दो दिन में ही मुझे आपने जीत लिया है" ॥

६०

तुम कल्पाश्रय शुभे ! प्राप्त दैवी सम्पद् सी,
मिला मुझे उड़ने को तुममें मुक्त विशद नभ।
"हे विनीत, भावुक, प्रिय ! तुममें देख रही मैं।
सुन्दर, शिष्ट, उदार, एक अति मानव सप्रभ ॥

६१

"मानवता, नैतिकता की प्रतीक तुम सन्मुख,
सहज स्व को ही लखा प्रतिच्छायित मुझमें प्रिय"।
"जो निज में जैसा जितना होता है, पर में—
लख पड़ता वैसा-उतना ही जग में निश्चय" ॥

६२

मधुर तुम्हारा श्रम कण चिर मम रुधिर धौत हो !
देवि ! तुम्हारे हित में हों मम निखिल आचरण।
दे यश मय कर्त्तव्य धर्म का सह सुयोग दिन,
रात हमें दे नित्य मिलन का नव मंगल क्षण" ॥

६३

"प्रियतम ! तुमने मुझे आज चरितार्थ किया है !
मेरे पन का विशद अनोंखा अर्थ किया है।
भाव समाधिस्थिता प्रिया बोली हे ! चिन्मय !
तव निस्वार्थ हृदय ने मुझे समर्थ किया है ॥

६४

बहुत देर तक दोनों भाव विभोर रहे स्थिर—
फिर सुधि ने अनजान अवश झकझोर दिया मन।
आलिङ्गन में विसुध वधू के बिम्बाधर पर
कमल कोष के मुक्त मधुप सा प्रिय का चुम्बन ॥

६५

वातायन पर ललक रही हिम चिलक चाँदिनी,
रुधिर उष्ण लख हुआ, मची तन मन में हल चल।
दोनों के विलास विग्रह में मादक आग्रह—
मसृण स्पन्दन जगा गया मन्थर मलयानिल ॥

६६

चञ्चल खञ्जन से दृग के भीगे कटाक्ष ने
किया मर्म भेदन, अन्तर रस का उन्मन्थन।
प्रिय के मधु स्पर्श से तनु के श्रुत कपोल पर
अधरों पर ढुल गई सुरा, पाटल की विकचन ॥

६७

हँसते दीपक को लख वधू सहम सकुचायी
निरख दयित के कर स्पर्श में चटुल मनोभव।
समिट गई चितवन तिरछी कर हँसकर 'ना' कह—
रूठ गई-मित मान किया सह रस लीला नव ॥

६८

अन्तःपुर के शान्त निभृत में बस दम्पति का
मर्य्यादित है, अनुचित या अश्लील नही है।
रमारमण के काम श्रेष्ठ भुवि वन्द्य एक सुत
उनका भी सम्मान कहो क्या शील नहीं है ?॥

६९

अनुनय, विनय, प्रणय से कर मधु मान निवारण,
बहु अभिनय कर किया प्रिया को सहमत सम्मत।
'वाद भक्त ने काञ्चन शिव पर पञ्च सित मुकुल
शरदुत्फुल्ल सरोज एक आरक्त कियार्पित॥

७०

पुण्य धर्म यह यहाँ, सृष्टि विस्तार श्रेय मय,
दम्पति का यह शास्त्रोचित, सन्त स्थापित है।
देवि ! न तुम भय करो, सहन मित करो सती हे !
अखिल पुरुष मन इसी अमृत के लिये तृषित है।

७१

कुच कैलाश, समाधि मुग्धता, भ्रू वरुणी, अहि,
धूली मलय, विभूति विभूषण, शशि तिलकोत्तम।
केश जटा, पट व्याघ्र चर्म, सुरसरि मुक्ता स्रक्
मदनाक्रमण हुआ तनु पर निज रिपु शिव के भ्रम॥

७२

फल तृतीय पुरुषार्थ काम ऋषि-शास्त्र-इष्ट मय,
दम्पति धर्म, प्रजा सर्जक, गृहस्थ सुख पूरक।
काम कला सर्वस्व कामिनी मूल तत्प्रदा,
अध्यात्मोन्नति हेतु काम भी अति आवश्यक॥

७३

लज्जाक्रान्त विशेष सुतनु को देख दयित ने,
किया दीप निर्वाण सहज कर लीला पाटव।
हुआरम्भ अनुकूल विधा से समुचित संयत,
सह उत्पादित राग प्रथम समरत सुरतोत्सव॥

७४

श्यामा, सुर सत्वा, तनूत्तमा मृगी पद्मिनी,
नवा, स्वल्पभावा, मृदु, शुचि-रति, काम कल्प द्रुम।
पति अनुकूल प्रचण्ड वेग, शश, चिर कालिक नव
काम कला पटु धीरोदात्त, रसिक पुरुषोत्तम॥

७५

मस्त मधुर यह निशा प्रीतिमयि मधुर मिलन की।
आज न हो रवि उदय, उषा तुम प्रात न करना॥
करता नव प्रिय विनय हृदय में रात न बीते—
तारों के मणि दीप सतत तुम जलते रहना॥

७६

जीवन का संगीत, हर्ष यौवन का मन का,
अग जग की सौन्दर्य सुधा ले पास प्रिया है।
इधर तृषा की सिन्धु तरंगों के भीगे दृग
उधर और भी शीघ्र दैव ने प्रात किया है॥

७७

सलज रति श्रान्ता के मुख को बार बार लख,
निशा मिलन की स्मृति से होता रोमाञ्चित तन।
सिमिटी, सकुची, झुकी सुतनु कर सखी स्मरण निज
कक्ष न तजती, अकुलाती, झिपती मन ही मन॥

७८

रतिश्शेष में केश आप्लुलायित, तन शिथिलित,
अप्रतिभ अरुण कपोल, भाल श्रम सिक्त, दृगाकुल।
अस्त-व्यस्त सुवेश, हार उच्छ्रित, व्यथित श्री,
वसनान्वेषण कुपित करुण बाला लज्जोज्वल॥

७९

"करें सखी परिहास, निठुर! यह ठीक करो सब!
सोपहास, सायास लिया प्रिय ने रस अभिनव।
की पट, कच, स्रग, माँग, बिन्दु, तिलकाञ्जन रचना,
अनभ्यस्त कर, कृत करते जो प्रकटाधिक सब"

८०

पति ने कर शृङ्गार प्रिया का आनखशिख सब
निरख निरख निज सुकृति हर्षमय मृदु मुस्काते
करने यावक राग किया जब चरण ग्रहण झुक
सस्मित, कुपित, हटी, कह क्यों शिर पाप चढ़ाते !

८१

प्रात सखी लख तन विस्मित बोली सीधी बन
"क्यारी क्यारी का पुष्प चयन, सूना मधु वन
बड़ी चतुर पर जिसने पिया भराया उससे"
लज्जा विह्वल, भाव तरङ्गित, हँसी सुतनु सुन ॥

८२

घेर लिया सखियों ने परिहासोन्मुख सस्मय,
खिसिया बोली वह 'आनखशिख निशि ऊष्मा वश
पुनःस्नान किया, पर मिला न दर्पण, अतः उन्होंने
शुभ सुहाग चिह्नाङ्कित किये, अहेतु रहीं हँस" ॥

८३

"ह्री अकथ स्मर ज्वर, या वह कृत सुरत ऊष्मा ?
प्रिय मन मदन दहन का या निज दाह सुवदने !"
अट्टहास कर उठी–"शीत में ऊष्मा, हिममय
जल से स्नान, दर्पणाभाव, धन्य पटु छलने !"

८४

नव नव कला प्रयोग, विविध सुख भोग, राग रस,
दिन दिन नूतन प्रीति नित्य नव भाव विमोहन।
सम्प्रयोग, संयोग, भोग, नव नव सुयोग नित,
क्रमशः नव उत्साह, नित्य नव नव आस्वादन ॥

८५

नीवी स्खलन, हरण हृदयांशुक, विरुत, कुचार्चन,
नख-दशनच्छद, आलिङ्गन उपसृत, रति, चुम्बन।
सीत्कार, प्रहरण, संवेशन, पुरुषायित मय
जयति वधू के अंग दयित का मदनाराधन ॥

८६

प्रेम परम पुरुषार्थ, व्यक्ति के चित्स्वरूप का,
सत्प्रकाश मय, सार्वभौम 'सद्' शुद्ध सनातन।
नारी कक्षा में अभ्याग आचरण कर, हो
आत्मा परमात्मा में तद् उपयोगास्वादन ॥

८७

मधु विलास, उल्लास, हास, अन्तर विकास में,
जीवन के प्रकाश, नव ऋतु के नव वतास में।
पास चरण के प्लावित रस आकाश धरा का,
दम्पति का विन्यास नया रे श्वास श्वास में ॥

८८

काम 'सदंश' तदांशिक क्रिया मात्र 'निधुवन' यह,
जिसे कला, मर्य्यादा से गृहस्थ में पति युत।
कामिनी-भोक्तृ शक्ति नारी की 'वधू' रूप से—
निज मातृत्व प्राप्ति प्रति करती धर्मानुष्ठित ॥

८९

जीवन का सौन्दर्य निखरता है धरती पर,
नारी की श्वासों से जब संगीत छलकता,
स्वर्ग उतर आता है रश्मिल धूलि कणों पर,
नारी की आँखों का जब आनन्द उमड़ता ॥

९०

नारी के अनन्त रूपों में मधुर कामिनी-
का, प्रकार भी तत्व दृष्टि से अति महत्व का।
उसकी निज स्वरूप सत्ता की गहन कुञ्ज में,
यही विमोहन, आकर्षण, करता नरत्व का ॥

९१

बुद्धि, विवेक, चेतना, स्फूर्ति, अभय फल दायक,
सुतनु नव-ग्रह शोधक-निज गृह में मङ्गल ग्रह।
जिस पर इसकी दशा, दिशा, में जो सभाव नत,
वह कर लेता सहज निखिल निधियों का संग्रह ॥

९२

'हर्ष, गीत, लावण्य, रूप, वाहित शिविका के-
पादपीठ इन्द्रासन, पुहुमी सिंहासन पर।
शशि, शृङ्गार, वसन्त मदन, सुर शिल्पी सेवित,
यौवन राज्य स्वामिनी का जय रम मण्डल द्युत॥

९३

उभय हृदय के नव नव परिचय, नव प्रकाश में,
नये परस्पर के प्रत्यय, प्रण, हों अविनश्वर।
अविरल शरद् सूर्य्य का कुन्दन, शशि की चाँदी,
पुष्कल बरसे सुःख स्वर्ग का नित इनके घर॥

९४

मधुर कामिनी की पूजा में अग जग का मन,
स्वतः प्रवाहित, आकर्षित रहता प्रवृत्त जन।
मम कवि उसके युग वाञ्छित चर्चित चरणों का,
नत वरूनियों के जल से करता प्रक्षालन,

९५

सदुपयोग निज का, प्रयोग विनियोग जगत् का,
जीवन के उपभोग-भोग संभोग समाग्रह।
मणि काञ्चन संयोग, सुधामय-आत्मयोग मयि,
प्रकटित नारी सदुद्योग के प्रति सुयोग सह॥

९६

दंष्ट्रा में रक्षा का धारण, हिम नग का कर,
त्रिपद माप त्रिभुवन का, शिर पर सुर सरिता जल।
सम्भव अञ्जलि गृहण जलधि का रवि का मुख में,
सहन असम्भव स्व में प्रिया का उन्मादन पल॥

९७

नैश, निशान्त, प्रात, सायं, प्रदोष, अपरान्हिक,
सह मध्यान्ह अष्ट कालिक लीलाएँ अद्भुत।
पुनि संक्षिप्त, समृद्धिमान, सम्पन्न, अतायित',
दम्पति रस सम्भोग अनिश अनुराग समूर्जित॥

९८

वधू युक्त लघु वन्य कुटी है इन्द्र भवन सी,
आतप हिम सा, हिम आतप सा, तत्समीप रह।
वह पाथेय नृजीवन पथ की, मृत्यु पन्थ द्युति,
उसके विन गृह वन सा है, वन गृह सा तत्सह ॥

९९

हुआ मिलन से दम्पति के जग तरु में दोहद,
उदित चिर प्रतीक्षित अति मानव का तेजोज्वल।
दोनों की आत्मा ने सुन्दर सत्य शिव स्तुत,
तनय रूप में व्यक्त किया व्यक्तित्व अमृत फल ॥

१००

गृह - गृहस्थ - कृति दक्ष कामिनी भुवन उपासित,
करती भीतर बाहर का विष शमन जागरण।
गृहिणी के गृह में आत्मा मन प्राण पुष्ट कर
नृ देवत्व की ओर सफल करता आरोहण ॥

१०१

नारी प्रभु के स्व की स्वयं कृत श्रेष्ठ कला कृति,
उनके निजानन्द की रस की अनिश अमृत घन।
प्रति आत्म लीन आप्त काम की शुचि श्वाँसों में,
महका करता सूक्ष्म इसी का मोदन - मादन ॥

गृहिणी

षष्ठ सर्ग

१

सर्व प्रतिष्ठा, निश्छल निष्ठा, सुख स्रष्टा, शिव द्रष्टा सी।
लोक लक्ष्मी, भुवि सरस्वती, दुर्गा, सब पर तुष्टा सी॥
रस की राधा, रुचि की रति, चिर अन्नपूर्णा, सत्सेवी।
शक्ति भक्ति मयि, गेहात्मा, जय-नव गृहिणी कुल की देवी॥

२

सौम्य, सत्वमयि, परिचर्य्या नव सुलझी हुई समस्या सी।
शान्त तपोवन की शिष्या सी, ऋषि की साङ्ग तपस्या सी॥
सफल मनोरथ, सिद्धाशा शुचि, अनिश असूर्य्यपश्या सी।
है गृहिणी गृह के सुर-धनुषी-नभ की फाल्गुन संध्या सी॥

३

शुक्ल पक्ष की विभावरी सी, द्वितीया के शीश की रेखा।
कल्प वृक्ष की हेमलता पर शरत्प्रात विद्युल्लेखा॥
अग जग की सौभाग्य श्री सी निज हिरण्यमय की आभा।
विलस रही हो इस धरती पर तुम चिर सुन्दर की शोभा॥

४

चितवन से मन्दार बरसते, लज्जा से रस की स्रोती।
पद पद चलती पद्म उगाती, हँसने में झड़ते मोती॥
वचन सिता से मन में घुलते, साँसें स्वर्ग सँजोती है।
निजान्तः सलिला तव ज्योत्स्ना, जग की कुरूपता धोती है॥

५

कोटि हृदय, अनन्त प्राणों के सिंहासन की रानी हो।
शत साम्राज्य, अमित स्वर्गों की तुम अविश्वर वाणी हो॥
विश्व विभूति भारती की निधि, महिमा भारत जननी की।
तुम समाज की मेरु दण्ड, चिर कर्णधार भव-तरणी की॥

६

आर्द्र न रखता नरता को यदि तवाचरण रस का स्रोता।
अखिल अलौकिक आकर्षण फिर इस संसृति का क्या होता?
निज स्वरूप में जहाँ न तुम, वह सृष्टि सिद्धियों से रीती।
प्रति युग में आस्तिकता, प्रभुता, नैतिकता तुम से जीती॥

७

लड़ते भिड़ते घातें करते, चलते जो न्यारे न्यारे,
तव विशाल मन की छाया में सुसङ्गठित होते सारे।
एक विन्दु में विनिमय करती सबके भिन्न विचारों का,
विजयाधिक स्वागत करती हो सङ्घर्षों की हारों का॥

८

दान, दया, तव भाव, चाव से धर्म, कर्म, क्रम जीता है।
नर न राम रह पाया घर में नारी अब भी सीता है॥
लोक सृजन का, लोक गठन का, लोक सत्य का जय नारा।
लोक तन्त्र में- लोक हृदय में जगा रही तव स्वर्धारा॥

९

मंगल मय-अकुतोभय पथ पर तव गति प्रगति पुनीता है।
सदाचार व्यवहार सार मयि चलती फिरती गीता है॥
ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सर्वोन्नत, सुन्दर, तृण सी सहज विनीता है।
वाञ्छा कल्पलता-बिन माँगे देती जो मन चीता है॥

१०

विजित, नियन्त्रित, अभिमन्त्रित है कीलित भव विष की व्याली।
पुष्पित, फलित, पल्लवित, तुमसे नर तरु की डाली डाली॥
न्याय और विश्राम विश्व में केवल पास तुम्हारे हैं।
बाकी तो फूलों से मढ़ कर खोले खड़े दुधारे हैं॥

११

द्वन्द्व, क्रान्ति की ज्वालाओं में शान्ति सुधा की धारा सी।
बहती बहती लख पड़ती हो दिग्भ्रम में ध्रुव तारा सी॥
जो कुछ भी पाथेय पथिक की झोली में रख देती है।
उतने से ही सफल यात्रा, लक्ष्य प्राप्ति हो लेती है॥

१२

रस विभूति अवतरित न होती यहाँ न जो नारी आती।
बाण भट्ट की, कालिदास की प्रतिभा किस पर जी पाती?
क्या संस्कृति, क्या दर्शन होता, तुम बिन क्या करती वाणी?
आतप मय मरु सा रह जाता रूखा सूखा सा प्राणी॥

१३

प्रेम, माधुरी, रूप, गीत, द्युत, जीवन यौवन का स्रोता।
तुम से बहता, तुमसे निकला, तुम में ही जब लय होता॥
मूर्तिकार किसकी छवि गढ़ते, गीतकार फिर गाता क्या?
तुम बिन चित्रकार चिर रञ्जित, कवि व्यञ्जित कर पाता क्या?

१४

रस के पनघट से दृग पथ पर तृषा, तृप्ति, मधु की रानी।
चाहों की गगरी सिर पर ले चलती, छलकाती—पानी ॥
तव गम्भीर उदधि निज तट से उछल मचल टकराता है।
कोटि अगस्त्याञ्जलि कवियों में मुक्ता विरला पाता है ॥

१५

अपनी सिकुड़ी सी लज्जा में भुवन समेट समाती सी।
अनहद गान सजाती सी, अग जग का मौन चुराती सी ॥
अस्फुट पग के चाप चिह्न पर ज्योतिस्तम्भ उठाती सी।
लसित स्वरूपोचित सत्ता से सब का अहं सजाती सी ॥

१६

ओज भरीं, पर खोज भीत, रत सुधा उरोज छिपाने में।
मुख सरोज के दोज इन्दु से भ्रमर मनोज उड़ाने में ॥
नटन, गमन, लख सहन, वचन में, स्वाञ्चल करने में गीला।
लास रास मयि दर्शित होतीं—तुम लीला मय की लीला ॥

१७

परम सत्य की परम्परा सी, विश्व धर्म की चेष्टा सी।
त्याग, क्षमा की वसुन्धरा सी, इष्ट ईश्वरी स्रष्टा सी ॥
छवि की स्वरप्सरा—रसेन्दिरा, सुख की मंगल वेला सी।
मानव के व्यक्तित्वार्णव की रत्न राशि के मेला सी ॥

१८

श्यामा! निज नभ पर नव दिन की सघन घटा सी आती हो!
शस्य श्यामला ऋतूर्वरा सी—कुसमाभरण सजाती हो ॥
शिरा शिरा में प्लावन आया कूजन, कलरव छाया रे!
रस स्निग्ध दृष्टि से जग का व्यथित मर्म दुलराया रे ॥

१९

आनत पलक, सकुच लज्जा से, पाणि बद्ध सुख संज्ञा में।
रह निष्काम, स्वसुख वाञ्छा तज, मन की प्रेम प्रतिज्ञा में ॥
अर्ध बदन पर घूँघट काढ़े कुल की परम समज्ञा में।
प्रस्तुत, विनत, पति प्राणा तनु, सादर पति की आज्ञा में ॥

२०

नित नव नव न्यौछावर करती, नूतन राग सजाती है।
प्रियतम की रुचि पर निज श्रद्धा, सत्व, समत्व चढ़ाती है॥
भव गौरव गरिमा, महिमा मयि कान्त कण्ठ की माला है।
निज तम का विष, अमृत सत्व का, रज की द्राक्षा हाला है॥

२१

आया श्रमित, व्यथित मानव तब, अभय दायिनी छाया में।
तुम उसका अभीष्ट शिव सुन्दर लायीं निज शुचि काया में॥
भव अज्ञान तमोन्ध नयन की ज्ञानाञ्जना शलाका हो।
आराध्येष्ट आत्म मंदिर की तुम रंगीन पताका हो॥

२२

तन, मन, धन, जीवन, यौवन की, जन की जो कुछ माया है।
राशि राशि अपनापन, सादर प्रिय पर पुलक चढ़ाया है॥
आप्त तृप्त चिर दीप्त पूत तुम कब किससे क्या लेती हो?
कोटिक कठिन कुघातों पर भी बस मंगल फल देती हो॥

२३

कण कण प्रतिमा प्रतिमन मन्दिर, दर्शक अग जग सारा है।
मधुर पुजापे की थाली सा निखिल निसर्ग पसारा है॥
क्षण क्षण नीराजन की बेला, श्वास श्वास में पूजा री।
एक पुजारिन हो तुम, ले निज अगरु धूम सा आपा री॥

२४

पग पग पर सद्गति उन्नति के प्रगति कलश पधराती सी।
द्वार द्वार निज मुक्ताहल के बन्दनवार झुलाती सी॥
ऋद्धि सिद्धि दैवी सम्पद् के घर घर दीप जगाती सी।
है हरि की अहेतुकी करुणा हरि को प्रकट लखाती सी॥

२५

पुरुष भाग्य चौपड़ की चिकनी सिद्ध चेतना गोटी है।
गौरव गगन, यशेन्दु चुम्बिनी-सुख सुमेरु की चोटी है॥
गई चेतना युग की इसकैं ही प्रयास से लौटी है
नर का खरा खोट पन कसने नारी खरी कसौटी है॥

२६

प्रिय-दर्शना देव-मानव-प्रिय, प्रियम्वदा, श्रद्धा पाली ।
सत्य, दान, तप, सेवा में रत, सब विधि मर्य्यादा वाली ॥
ध्येय, धैर्य्य, धर्मशीला तनु, शुद्ध शान्त, मति, व्युत्पन्ना ।
विप्र, धेनु, गुरु, अतिथि परायण गृहिणी है श्रुति सम्पन्ना ॥

२७

नियम निभाती, व्रत, प्रण करती, देवी देव मनाती है ।
पर पालना, पुष्टता, हित में निज मृदु देह सुखाती है ॥
गृह जन मोद विनोद हेतु, दुख में प्रफुल्ल मुस्काती है ।
करने शुभ-सन्तोष गृही का अपना कष्ट भुलाती है ।

२८

कुल, समाज, परिवार-लोक की जन सङ्घटना की खूँटी ।
तत्वान्वेषी अति मानव की सञ्जीविनी सुधा बूँटी ॥
निज तरणी के प्रति यात्री का तीर स्वयं बन जाती है ।
अभिशप्तों की रज समाधि पर स्वर्धारा सी आती है ॥

२९

जीवन के ऊँचे तथ्यों का जन समुदय का मेला है ।
युगोत्कर्ष, युग का अति मानव, यहाँ धूलि में खेला है ॥
अखिल आर्त्त की आर्द्र पङ्क पर यह पाथोज खिलाती है ।
भूतल के कण्टक डण्ठल पर पाटल सी खिल जाती है ॥

३०

सतरङ्ग पल्लव का यह तरु - मुक्ता के फूलों वाला ।
शत वर्णी पद्मों का मणिसर कोटि धार कूलों वाला ॥
छवि वसन्त की रस स्पन्दिनी मदनोत्सव वीणा वाली ।
हंस वाहिनी ने यह भावों - गीतों की प्रतिमा ढाली ॥

३१

पंथ वनोद्घाटन शीला द्युति कलश उषा छलकाती है ।
इन्दु मुखी, रवि आभा वाली, तनु पहले जग जाती हैं ॥
पहले अलङ्कार वादन फिर विहग प्रभाती गाते है ।
भीतर शोभा बाहर आभा एक साथ जन पाते हैं ॥

३२

लोक जागरण आभासव का प्रथम घूँट इसने पाया।
मलयानिल ने प्रथम इसी का धानी अञ्चल फैलाया॥
ध्यान मग्न हो हरि की छवि पर मङ्गल भाल झुकाती है।
चुपके से फिर पति के आगे भाव भरी झुक जाती है॥

३३

श्वेतोत्पल तल पर बहु वर्णी नर्तित छायाएँ झीनी।
गृह में तब तन की पाटलता कमल गन्ध बहती भीनी॥
अञ्चल युक्त मदीला मन्थर मलयानिल गन्धोन्मादी।
मधुवन में खग कलरव कूजन, घर में भूषण हैं नादी॥

३४

पृथ्वी की रज मस्तक पर ले दर्पण के आगे आती।
बिखरी वेंदी अलक उठाकर सन्मुख गुरुजन के जाती॥
वयोवृद्ध निज सास श्वसुर के पद की लेती धूली है।
चिर सौभाग्य वती होने का वर पाकर सुधि भूली है॥

३५

गाते वीते युग, न गा सके कण महिमा कुल शीला की।
पार न इसके सच्चरित्र का थाह न हरि की लीला की॥
पति के प्रिय को रुचती पचती आदर से दुलराती है।
पति के मङ्गल शुभ चिन्तन से फूली नहीं समाती है॥

३६

नन्द, जिठानी, दिवरानी का अभिनन्दन करने आयी।
अनुजों ने, शिशुओं ने उसकी निश्छल प्रेम सुधा पायी॥
पति के नियमित नित्य कर्म का कर प्रबन्ध क्षण में सारा।
दैनिक कृत्य सभी शिशुओं के पूर्ण हुए उसके द्वारा॥

३७

गौ दर्शन, गौ रस मन्थन, अरु गौ ग्रास देने वाली।
अद्भुत झाँकी होती जब खग चुगा सींचती शेफाली॥
कोमल पद्म पाणि से रवि को सादर नीर चढ़ाती है।
तुलसी, शालिग्राम समर्चा करके अति सुख पाती है॥

३८

भृत्य, चेटियों को आवश्यक कार्य्यादेश किये सारे।
जो परिवार जनों जैसे ही होते हैं प्रतीत प्यारे॥
गृह-मार्जन, सङ्कलन, नियोजन, आदि अन्य सब तय्यारी।
शीघ्र व्यवस्थायें, सुविधायें करलीं करवालीं सारी॥

३९

अङ्गराग, आप्लव कर पहिनी शुचि पोशाकें नई नीली।
फिर शृङ्गार करे आनख-शिख सती सुहागिनि गर्वीली॥
पूजा गृह में देवार्चन युत नृत्यवती स्तव गाती है।
गृह मीरा की मन्जु वीणा ध्वनि मुग्ध पवित्र बनाती है॥

४०

नारी रत्नाकर में रत्नों के बहु भण्डार भरे न्यारे।
जिन्हें निकाल रसिक सज्जन जन पाते सुख जग के सारे॥
कामुक डूब वासना जल में निजास्तित्व संज्ञा खोते।
गृहिणी की करुणा से सबके सिद्ध मनोरथ हैं होते॥

४१

षड्‌रस व्यञ्जन स्वयं सिद्ध कर हरि के भोग लगाती है।
गौ, द्विज, अतिथि भाग अर्पण कर थाल परोस बुलाती है॥
शिशु, वृद्धों, फिर अन्य जनों ने भृत्य आदि सबने खाया।
गृह देवी ने सर्व अनन्तर पति प्रसाद युत ही पाया॥

४२

अभिमन्त्रित, कर्पूर मिलित जल, प्रोक्षण कर आले द्वारे।
साँझ, सकारे अगरु धूम धूमित करती घर में सारे॥
हेम शलाका सहित स्वकर से सान्ध्य प्रदीप सँजोती है।
कृत्य मुक्त, नव छवि, सुवेश से, श्री सी शोभित होती है॥

४३

कर्त्तन, सींवन, वयन, कर्षणा अतिथि अध्ययन, लेखार्चा।
सखि - वार्त्ता, योजना, मन्त्रणा, स्वर्ग, मर्त्य की सच्चर्चा॥
नृत्य, वाद्य, गीत, चित्राङ्कन, काव्यास्वादन, सच्चिन्ता।
प्रियतम की आगमन प्रतीक्षा सन्ध्या तक करती कान्ता॥

४४

शुचि साचरण प्रेम शिक्षा दे, आत्म विभूति जगाती है।
श्रुति स्वधर्म की सोपानों पर चढ़ती हमें चढ़ाती है।।
सत्प्रवृत्तियां-सच्चिन्तन दे, शुभ सत्कर्म कराती है।
यह सर्वोच्च कीर्ति ईश्वर की महि माहात्म्य बढ़ाती है।।

४५

श्रान्त, शिथिल प्रिय के आने पर शुचिस्मिता मुस्काती है।
नवाभ्यर्थना, नव स्वागत से सारी श्रान्ति मिटाती है।।
करती है अनुकूल आचरण, समयोचित हो जाती है।
पति रुचि के अनुरूप सभी कुछ करती वस्तु जुटाती है।।

४६

मन, क्रम, वचन, कर्म से करते पति न कलत्र अवज्ञा हैं।
श्रद्धा से शिर धर करती यह पालन पति की आज्ञा है।
पति, भर्त्ता, स्वामी, सेवक है, दयित, सखा, रक्षाकारी।
पत्नी-पति की सखी, स्वामिनी, प्रिया, सचिव, अनुगा, प्यारी।।

४७

माँ सी, भगिनी, गुरु, दुहितासी, शिष्या, प्रेयसि, सी भार्य्या।
सखी, कामिनी सी गुण वाली शोभित है गृहिणी आर्य्या।।
फिर प्रभात सा क्रम चलता है सब सम्हालती एकाकी।
पाल रहीं उत्साह, ध्यान से तनु शिक्षा अपनी माँ की।।

४८

ब्रह्मवादिनी मोह सुख विरत कर्त्तव्योन्मुख करने में।
भक्तिमती यह प्रियतम का मन भाव रसों से भरने में।।
एक साथ एक वपु में यह शत सम्बन्ध निभाती है।
एक रूप में विभु ईश्वर सी सबको भिन्न लखाती है।।

४९

असन्तोष, आरोप, विमति, रुचि, सबके भिन्न विचारों का-
श्रवण-सहन कर ध्यान न करती जग के कटु व्यवहारों का।।
अलसाते ऊबते, खीभते, कहते कठिन मृषा वाणी।
कुढ़ते, चिढ़ते, क्रोधित होते लखी न किञ्चित कल्याणी।।

५०

सुख, सुविधा, सन्तोष, शान्ति की, क्षेम, क्षमा, क्षम की दानी ।
स्वर्ग सृजन की चिन्ता, चेष्टा, चाह चेतवाली रानी ॥
आती मलय प्रभात वात सी नव जलजात खिलाती सी ।
जाती सन्ध्या सी जग नभ पर न्न से नखत उगाती सी ॥

५१

समाधान कर तोष यथावत् कामों से छुट्टी पायी ।
चली चापने सास चरण फिर श्रद्धान्वित अति हर्षायी ॥
कर आमोद - प्रमोद ननद से सबसे समुदाज्ञा पाके ।
छम, छम, रुन भुन करती स्व शयन कक्ष चली तनु हर्षाके ॥

५२

शयनागार मदन मन्दिर सा, रंग पीठ रति का दोला ।
रस शृङ्गार विहार कुञ्ज सा मधु विभूतियों का डोला ॥
ऋतु शोभन सैश्वर्य्य, सावरण, कुसुमार्चित सज्जा वाला ।
अगरु सुवासित, वहु रस सिञ्चित, द्युत, सज्जित रखती बाला ॥

५३

पुलक प्रतीक्षा, श्रान्त कान्त की आगे बढ़ अगवानी की ।
स्रवित हुई फिर कवि कण्ठी सी स्रोती स्वागत वाणी की ॥
द्विरद शुण्ड सी प्रिय बाँहों की स्वीकृत तनु ने की माला ।
पद्म स्तवक सदृश शोभित अति जिनमें उलझ हुई बाला ॥

५४

क्षण स्पर्श, शुभ दृष्टि प्रणय से विगत श्रान्ति चिन्ता सारी ।
मन उमंग, तन की तरंग में, मग्न हुई मुद में नारी ॥
मुखर हुआ संगीत प्राण का श्वास सुरा बरसाती हैं ।
प्रियतम के रस की पावस में विद्युत सी मदमाती है ॥

५५

शकुन्तला दुष्यन्त, मदन रति, नल समेत दमयन्ती सी ।
शची इन्द्र सी, इन्दु रोहिणी, सावित्री पतिवन्ती सी ॥
समणि द्युति-रसाब्धि-तम अहि पर विष्णु रमा शोभा बाँकी ।
एकासनासीन दम्पति की शम्भु - पार्वती सी झाँकी ॥

५६

ताम्बूल गोष्ठी, रहसि वार्त्ता, मृदु विनोद, रुचि रागार्चा।
चौसर केलि, रसोक्ति रञ्जना, मधुर स्मृतियों की चर्चा ॥
विविध वाद्य वादन, सह गायन, मधु विलास रस लीलाएँ।
गृहिणी सपति स्व गृह में करती विविध स्वर्ग की क्रीड़ाएँ ॥

५७

प्रियम्वदा, सुखदा, वशंगता, प्रजावती, भव मूला है।
साध्वी सुपटु, कृपालु, विनीता, रसवन्ती अनुकूला है ॥
सद्गुणसदना, विदुषी, सुभगा लक्ष्मी सी भार्य्या वाला।
है न गृहस्थाश्रम सम जग में चारों फल देने वाला ॥

५८

अन्याश्रम के सब साधन फल पाने तपी स्वयं जाते।
किन्तु गृहस्थाश्रम में प्रति फल पास गृहस्थी के आते ॥
सब आश्रम, सब तप, साधन श्रम, चिर आश्रित गृह यत्नी के।
श्रेष्ठ गृहस्थ, जहाँ हरि श्री से चिर दर्शन पति पत्नी के ॥

५९

अन्ताश्रम सिद्धों का जहाँ न प्रायश्चित कृत पापों का।
अर्थ, कीर्ति, षड्रिपु हैं जिसमें हेतु निरय के तापों का ॥
इस गृहस्थ में सब खप जाते समाधान सबका होता।
पति पत्नी का मिलित कर्म शुभ सहज त्रिविध अघ को धोता ॥

६०

इस गृहस्थ में भक्ति भाव मय दम्पति प्रेम प्रतिष्ठा से।
पद पद पर सुख दुख में करता हरि स्मरण अतिनिष्ठा से ॥
जिनसे डरते बटु, सन्यासी, योगी वानप्रस्थी हैं।
निज त्रिविधोन्नति का साधन कर भोगें उन्हें गृहस्थी हैं।

६१

निश्चय वाञ्छा सुर तरु गृहणी सुर, नर, मुनि जिसके द्वारे—
साँझ सकारे हाथ पसारे स्वेच्छित निधि माँगें सारे!
प्रति उपकार नृ धर्म कर्म को स्व नय सूत्र से बाँधे है।
निखिल स्वार्थ परमार्थ दान से गृहिणी अब तक साधे है।

६२

न्याय प्रिय संयत सात्विक शुचि, दम्पति सुनियम आस्था से।
सदाचरण से स्वर्ग बनाते घर को सुविधि व्यवस्था से॥
गृहिणी का आदर कर जग में सम्भव वस्तु न क्या पाना।
गृहिणी की ड्योढ़ी पर रहता देवों का आना जाना॥

६३

गृहिणी कर उत्सर्ग, समर्पण, शुभाचरण प्रेम स्पर्धा।
पति पद पर टिकवा सकती है गर्वोन्नत अग जग मूर्धा॥
निश्श्रेयस्, अभ्युदय, शान्त गति, जन्म सफलता प्राणी की।
मिल सकती बस सुधा, कृपा से सदगृहिणी कल्याणी की॥

६४

घर में प्रेम नदी गृहिणी की, गौरव की गिरि छाया है।
इसकी शान्ति-सिद्ध आश्रम है, मन्दिर कञ्चन काया है॥
गृहिणी की संकल्प सिद्धि सह रहते ऋषि सद्भावों के।
प्रत्यय के भगवान विचरते हरते असुर अभावों के॥

६५

श्वासों से सङ्गीत सरसता आँखों से रस की धारा।
होठों से आनन्द छलकता, भालोदित मंगल तारा॥
पद गति से आलोक बिखरता, स्वर विवेक बरसाते हैं।
गृहिणी की छवि के वसन्त में प्राण पद्म खिल जाते हैं॥

६६

कोष प्रेरणाओं का देती ललित भावनाओं द्वारा।
कला कलश पति का भर देती ललित भावनाओं द्वारा॥
यौवन का चैतन्य दान कर, जीवन का मधु देती है।
गृहिणी निज सौभाग्य पुण्य की शश्य श्यामला खेती है॥

६७

अनावरण होते रहस्य सब, उद्घाटन निज ध्येयों का।
विस्तारित करती शत सत्पथ, हर्ष प्रसारण गेयों का॥
संस्थापन करती श्रेष्ठों का उद्यापन सत्श्रेयों का।
संयोजन करती उचितों का, गृहिणी संग्रह ज्ञेयों का॥

६८

एक ओर सुत अपर ओर पति, दोनों पलड़े भारी हैं।
इधर सूर्य्य, शरदिन्दु उधर लख, सन्ध्या सी बलिहारी है॥
एक मूर्त्त निश्श्रेयस्, दूजा निखिल अभ्युदय धारी है।
वात्सल्य शृङ्गार उभय के मध्य सुशोभित नारी है॥

६९

जीवन के साफल्य साधनों के संग्रह की प्रेक्षा सी।
स्वेच्छा सी स्वतन्त्र ईश्वर की अन्वीक्षाचिदपेक्षा सी॥
उसकी सत्ता सी, साक्षी सी, मीनाक्षी, तद् आस्था सी।
जीवन जन जग की, युग युग की गृहिणी, सुकृत व्यवस्थासी॥

७०

जिसके दर्शन से विचार, व्यवहार प्यार से संसारी।
भीतर बाहर स्वस्थ शान्त शुभ स्वभाविक हैं आभारी॥
लिये बिना उतरायी सबकी नाव पार तक खेलायी।
तृष्णा का मरु सींच कृपा से तृप्तिलता है फैलायी॥

७१

नर होता आहूत ढालता बहु बिधि सामग्री ला ला।
स्थूलांश भस्म करती मख-शाला में नारी ज्वाला॥
प्राप्त उपार्जित के शुभांश की करे विभाग सुरक्षा है।
नर संचालक सुतनु विभाजक तन्मिथ उभयोपेक्षा है॥

७२

नर वेत्ता समस्त विद्या तनु, यह मायी वह माया है।
नारी मुक्ति, पात्र जिसका नर, तनु प्रकाश नर छाया है॥
नारी गीत अनादि अनश्वर नर शाब्दिक स्वर काया है।
नर कवि—जिसने छन्द छन्द में नारी का रस गाया है॥

७३

सकल समुज्वल कान्ति प्रदर्शित गृहिणी के मिष नारी की।
सीमा है सद्भाव प्रेम की करुणा शिष्टाचारी की॥
गृहिणी की मधु वाणी में 'मधुमती' मधुर तद् वीणा में।
कुछ भेद न जान पड़े उनके अन्तर सुर में मधुरीड़ा में॥

७४

गृहिणी गृह में उदयाचल सी रवि शशि उदय करी प्राची।
समुत्थान भूमिका सब की जीवन पोथी की साँची ॥
हाला, अमृत, हलाहल त्रय की तीन द्वार वाली शाला।
इष्ट पथों के चौराहे की चतुर्मुखी ज्योतिर्माला ॥

७५

गृहिणी प्रहरी लोक हृदय की प्राणों की जीवन बूँटी।
सिन्धु तीर पर प्लवन रक्षिका सुदृढ़ नर तरी की खूँटी ॥
संयोजिका निखिल उत्सव की प्रति रुचि, रस, यश की मेदी।
साध्वी सती शिरोमणि गृहिणी अखिल योजना की वेदी ॥

७६

'सत्' साक्षात्कार की दीक्षा' ललित कला मति की भिक्षा।
रक्षा कर अघ दुस्तापों से देने भावों की शिक्षा ॥
नव उत्कट, उत्प्रेक्षा प्रभु की, दिव्य दृष्टि की श्री सारी।
स्वेच्छा से आई सदसद् की स्पष्ट समीक्षा सी नारी ॥

साध्वी

नवम सर्ग

१

अचञ्चल प्रकृति की, सदाचार की सिद्ध सुदृढ़
मूर्ति भावना की, आत्म निष्ठा की ज्योति सजग
अनघ, अपराजित, अनन्य प्रेम साधिका,
साध्वी - जयति - दैवी शक्तिमयि मानवी

२

व्यापक जिसकी चरित्र चिन्तामणि, किरण
सतेज व्यक्तात्मा, मंगल विभूति मती।
स विलक्षण व्यक्तित्व, विचित्र अग जग में,
भारतीय संस्कृति की देन यह अद्भुत ॥

३

पतिव्रता, पति स्थिता सविशेष, दुर्लभ,
स्व व्यक्ति में पूर्ण, निखिल यज्ञ फलवती।
जिसके भय काल भीत, मृत्यु तप्त पाश शिथिल,
अग्नि दग्ध, सूर्य्य, अखिल तेज मलिन ॥

४

अयुत कोटि वर्ष स्वर्ग सुखदा स्व पति को,
जिसकी शुचि पदरज से पावन चराचर।
धन्य पिता, प्रसू, गेह, काल, धरणी,
जिनमें विराजती साध्वी नारी सती ॥

५

देव, सिद्ध, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर,
साध्वी स्पर्श से आप्त पूत होते नर।
पाप, शाप, ताप सकल के द्रुत विमोचित,
सतवन्ती का प्रभाव प्रकट अग जग में ॥

६

मूल गृहस्थाश्रम की, मेरु प्रति सुख की,
धर्म आदि फल प्रदा, कारण सुसृष्टि की।
अतिथि, देव पितर की, तुष्टि करी-हरि की,
तीर्थों की तीर्थ, पुण्य करी सुरसरि की ॥

७

स्व इहि लोक, परलोक स्वार्थ, परमार्थ सव,
सहज बनें इसके संयम से सुतप से।
भक्ति से ईश्वर की, स्व सुकृतों-पुण्यों से,
प्राप्त होती सती वधू भूरि भाग्य से ॥

८

रोग, राग, कर्म भोग, मिटते दुरित सब,
पातकी होते पात्र सहज विष्णुधाम के
बसते समस्त तेज मुनिगण के इसमें,
निखिलाखिल शक्तियाँ सेवा रत रहतीं ॥

९

तपस्वियों का तप, व्रत, फल, त्रिबल, सम्बल,
दाताओं के दान का प्राप्य, यश सकल।
हरि, हर, विधि का, त्रिकृत्य लोक मङ्गल पथ,
सद्‌तलाश्रय, सत्व विग्रह है साध्वी।

१०

सती चरण नख नखत संसृति मस्तक मार्ग,
निज त्रिकुल, त्रिपीढ़ी तारती त्रिवर्गदा।
अकुतोभय रहते पति सुत प्रसादित हो,
रवि शशि किरण सभय तन छूतीं सती का।

११

तुहिनागिरि से गिरिजा, विष्णु से गङ्गा,
सिन्धु से शशिकला, शिव शिर विहारिणी !
नभ से प्रसूत ज्यों उषा तेजस्विता,
त्यों ही निज सदन कन्या सती जन्मती ॥

१२

स्मरण, दर्शन, श्रवण, स्पर्श, गन्ध से जो,
रसा नन्दार्णव उढ़ेल दें अन्तर में !
साध्वी तनु के अतिरिक्त भुवि - मण्डल में,
ऐसी न अन्य मणि रचना विधाता की।

१३

धरती पर कामधेनु, वाञ्छा कल्प तरु,
स्यमन्तक, पारस, चिन्तामणि, रत्नाकर।
प्रत्यक्ष इष्ट मूर्ति, विभूति विभु आत्मा,
है साध्वी धरा की अक्षय यशोधरा ॥

१४

पूजनीय, आदरणीय, वन्दनीय चिर,
लोक लक्ष्मी यह, सरस्वती गृह की शुभं।
स्वधर्म की आश्रय, आलय सद्गुणों की,
सञ्चय पुण्यों की, सुकर्मों से सप्रभ॥

१५

वैराग्य मार्गी जो मूढ़ता बश करें,
गुण गण विहाय केवल दोष गण, निश्चय
वे अविवेकी, छल कर ढ़कते स्व निबलता,
नारी निन्दा से कर लेते नष्ट आत्मा॥

१६

दृष्टि में जिनके विषय मदिरा विघूर्णित,
मेधा में मोह का तिमिर तोम छाया।
दीखती जिन्हें बस काया बिन आत्मा की,
नारी स्वरूप की उन्हें पहिचान कहाँ?

१७

उदरदा, दुग्धदा, अन्नदा, विवेकदा,
रसदा, शक्तिदा, स्वरूप-सौन्दर्य्यदा।
जीवनदा, धर्मदा, कर्म-गुण-प्रकृतिदा,
जन जन को नारी पौरुष, पुरुषत्वदा॥

१८

साध्वी, सृजनमयी सिद्ध पीठ जाग्रत,
दैवी सम्पदा की निभृत कोष अक्षय।
स्व मानवीय 'ज्योत्स्ना' की दीप अमर,
सर्वोच्च शृंग मानव श्रेय सुमेरु की॥

१९

परम अमृतत्व की अनन्त अनुभूति अनिश,
प्रस्थान त्रयी की सुसार मूर्ति; कविता-
मयी ऋचा, ऋजु संगीत मय साम् की,
प्रकट अन्तरिक्ष की पृथ्वी रसोमयी॥

२०

विभु कर्त्तृत्व, सकल की कर्त्ता क्रिया,
अन्तर्क्षेत्र की कर्मठ, कर्त्तव्यपरा।
यह वरद मुद्रा में, प्रसन्न आकृति में,
करे मांगलिक रुचि से स्वस्ति नित वितरण॥

२१

कान्ता सम्मित सर्व मान्य स्वर सृष्टि में,
कौन कर सकता उल्लङ्घन आदेश का।
उपमा न इसकी, प्रभुता भी इसके सम,
प्राणी का स्रोत-सेतु पोत है येही॥

२२

धर्ममय इसके आचरण से समुन्नत,
प्रोत्साहन, साहस, प्रबोधन से सुस्थिर।
जग है इसकी शोभा से सुन्दर सुखद,
पति-पुत्र वश कर अजेय त्रिभुवन में॥

२३

मयङ्क मुखी हरती आतङ्क-रङ्क भय,
निश्शङ्क रसा-सी, संसार लिये अङ्क में।
आनन्द रस में बुझा लोक ज्वालाएं,
मंगल अपाङ्ग से हरती विघ्न बाधा सब॥

२४

आत्म विष्ण नाभि की पद्म सी स्व नारी,
सृजन की जननी, विनाश की पितामही।
भगिनी पालना की, प्रेयसी विवेक की,
कर्म अधिष्ठात्री, नियति अग जग की॥

२५

इङ्गित से रुकता संहार-शिव ताण्डव,
दृष्टि से नवारम्भ होता संसृति का।
मृत्यु के तामस तम मय मृत्यु लोक में,
स्वर्ग की मूर्त्त जीवन ज्योति सी दर्शित॥

२६

जन में नव जीवन भरती, सिन्धु में ज्यों
सरितायें क्षण क्षण नूतन निज मधुर जल।
मानव का पीकर क्षार, नये मेघ सी,
बरसाती अमृत शशि उसके हृदय पर॥

२७

गृह की रङ्ग - भूमि निज प्रीति सुरक्षित कर,
बाहर की कर्म-भूमि पति सुत को देती।
बाहर पुरुष करते तत्पर कर्म कठिन,
भीतर छिप करे शक्ति सर्जना जिनकी॥

२८

कर्त्ता ईश्वर, निमित्त पुरुष, क्रिया प्रकृति,
क्षेत्र संसृति, कर्म चेतना नारी है।
यह संसृति की प्रगति मति, इसके बिन जग—
अचल हो रहता एक पत्थर सा, रूक्ष सा॥

२९

तन्मात्र, निसर्ग, जाति, नाम, गुण, रुचि की—
कल्पाश्रय, जिनमें ये, माँ सहज उनकी।
नारीत्व घनीभूत, नारी है शाश्वत,
सब कुछ हो शून्य मात्र, शून्य हो सब कुछ॥

३०

सूक्ष्म, स्थूल, ज्ञात, अज्ञात, सर्वस्थल,
प्रतिष्ठित प्रत्यक्ष व स्वप्न मूर्ति तनु की।
सब में व्याप्त समर्पण वृत्ति साध्वी की,
भाव सम्बन्ध अमित एक एक के प्रति॥

३१

सत्ता सृजन-करती, सुशोभित सत्य को,
प्रकट करती आदर्श, जन्मती मानव।
निखारती स्वरूप निज निर्मल रूप से,
कोमल कर-हृदय भाव विधियां सजाती॥

३२

अतिशय विराट, विशाल मना सुतनु सहज,
सुलघु हो रहती समर्थ सब सहने में।
पञ्चभूतों में इसकी स्वभाव किरण,
तृण सी विनत सहज उन्नत जो शैल सम ॥

३३

पति में 'पूर्ण स्थिति' उसकी आत्म संज्ञा,
'एकान्त निष्ठा'—उपासना वृत्ति परा।
पति में 'भगवद्भाव'—दृष्टि यह योग की,
'सधर्मा विरुद्ध काम'—स्वरूप यह हरि का ॥

३४

ज्यों ताम्र पात्र में दधि होता घोर विष,
त्यों आत्महीन पुरुषेन्द्रियों में तनु—
होती उत्तेजक; मणि घट में अमृत सम,
होती उपशामक साधुओं के हृदय की ॥

३५

निन्दा की सन्त ऋषि मुनि ने उस पथ की,
सम्भव जहाँ अयश, काम, मोह, अधः पतन।
साध्वी अवज्ञा की कहाँ ? किसने ? जो स्व,
पारस द्युति से करे हेम पुरुष तम को ॥

३६

स्व को सुरक्षित आप रख सकती यह
पुरुषों द्वारा किञ्चित रक्षा न सम्भव।
वह स्वयं निज की सुरक्षा न कर पाता,
सुतनु को होता जब पतन इष्ट उसका ॥

३७

कौटुम्बिक शान्ति, सङ्गठन की शृङ्खला,
कटि में, चरणों में नूपुर मिष सबका हित।
कङ्गन में ध्यान, सबका श्रेय हार में,
माँग मिष मानव सम्मान लिये शीष पर ॥

३८

तपस्या कर चाहती प्राप्ति पति पद की,
प्रसन्न पति देते स्थान उसे शीप पर।
कल्याण करते सुपति आर्य्य पत्नी का,
वह भेटती सादर समुद सर्वस्व निज।।

३९

पर गृह निवास, एकाकी प्रवास गमन,
कुसंग, कुपुरुषालाप, कुसमय पथ भ्रमण।
कुचिन्तन, कुशृंगार, खान-पान कुपठन,
साध्वी न भूल करें आचरण अनैतिक।।

४०

स्व पौरुष को कृत कार्य्य निज सहयोग से,
करती, यह दैवी प्रवृत्ति की सात्विकी।
अपूर्व रागानुग प्रेम की चूड़ामणि,
चन्द्रिका सी महि पर विलसती-चिलकती।।

४१

साध्वी का प्रेम कभी घटता समय से न,
एकसा एकाकार रहे सुख दुख में।
जरा मिटा पाती न रसानन्द इसका,
वयावरण परे शेष स्नेह सार सा।।

४२

करती निर्माण, संवर्धन, संरक्षा,
स्व धर्म, कर्त्तव्य स्थित श्रेय संयोजन।
साधु सहधर्मिणी, सहधर्मी उभय के,
प्रीतिमय योग में सत्ता संसार की।।

४३

बुद्धि, मन्द, प्राण, कर केन्द्रित पति मूर्ति में,
प्रतिष्ठा, भावना, ईश्वराभिन्न कर।
पति परिचर्य्या में ब्रह्मानन्द पाती,
ब्रह्मानन्द सहोदर देती स्व पति को।।

४४

न कर प्रतिकूल उन्हें, अनुकूल रहे कर
स्व पति को निज में, निज को पति में स्थापित।
हुई एक प्राण, पति-प्राणा को बना
अर्धाङ्गिनी 'अर्धनारीश्वर' पति हुए ॥

४५

मर्य्यादातिक्रमण कर सुतनु विकृत ज्यों
तटोल्लङ्घन कर विनाशिनी बने नदी।
यह कौमार्य्य, यौवन स्थविर में सरुचि
रहती अधीन पितु, पति, सुत के स्वतः ॥

४६

गार्हस्थ्य रक्षण, अवेक्षण का भार ले,
देती सदवकाश पति को उपार्जन का।
साध्वी स्व शक्ति भर जीवन के समर में,
होने न देती कभी पति को पराजित ॥

४७

प्रतीक्षित सुख की मूर्ति सी रहती निकट,
निश्चित तपोनिष्ठा की दृष्टि सी अमिट।
अभीप्सित स्वर्ग की निधि सी गृह में प्रकट,
साध्वी लखे स्व लज्जा के पट में समिट ॥

४८

पति के प्रकाश, विकास, उन्नति, प्रगति में,
श्री वृद्धि, आदर, यश, कुशल, शुभोदय में।
उनके अनुराग, सन्तोष, सुख, शान्ति में,
साध्वी है करती परम गौरवानुभव ॥

४९

चेतना पुञ्ज पुरुष को ज्ञाता-कर्त्ता,
स्रष्टा, पालयिता, संहर्त्ता करती तनु।
नारी को पाकर-अपनाकर-अपनी कर,
होता नर सुशक्तियों का संगमोद्गम ॥

५०

गिराते दुख दे जो स्त्री के अश्रु यहाँ,
कुपित करते स्पर्श केश काया जो।
भग्न होते भाग्य नक्षत्र उनके सब,
पूजा से व्यष्टि, समष्टि का अभ्युदय॥

५१

अन्तर में देखती, जानती, समझती,
सुनती, खोजती, प्यार करती उसे चिर।
शरीर के मोह, व्यवहार, प्रभाव विवश,
हनन न करती आत्मा का साध्वी कभी॥

५२

अध्यात्म चेतना मयि, जाग्रत, समुद्यत,
नारीत्व इसका शुद्ध, बुद्ध, अमृतमय।
कुभौतिक, विषयों, पदार्थों से उपेक्षित,
चाहती अमर तत्व, अमर प्रीति पति से॥

५३

रुचि, स्वभाव, विश्वास, कर्म, कल्पना में—
सत्य में स्वप्न में विराजती सु साध्वी।
स्वपति के हृदय में, प्राण में, नयनों में,
श्वास, श्वास, लोम लोम आत्मा में अनिश॥

५४

साध्वी सिन्धु की थाह तृण से मिले कब?
जान सकता वही जिसने उतारा हो—
निज व्यक्तित्व मन्दराचल तल में कभी;
अहं की बल्ली टिक सकती न वेग में॥

५५

वियुक्त भले हो चन्द्रिका चन्द्रमा से,
किन्तु साध्वी हृदय न पति से विरत हो।
तज्जीवन वीणा पर जो राग बजता,
उसकी मूर्च्छना पर मोहित है अग जग॥

५६

लता वृक्षाश्रय, घनाश्रय दामिनी, अरु—
सरिताश्रय उदधि का, स्व पति आश्रय तथा—
सु साध्वी न विचलित सम्पत्ति, विपत्ति में,
पतनाध्यात्मिक अनिष्ट कर न इष्ट उसे ॥

५७

दम्पति एक दूसरे के मंगल कुशल
प्रति-करते परस्पर प्रीति से व्रत, नियम।
साध्वी भार्य्या, साधु पति रखते तन्मिथ—
शाश्वत देवी देव - भाव गृह स्वर्ग में ॥

५८

सु कन्या सुशील - शिष्ट जननी जनक की,
श्वश्रु स्वसुर की सु कुलीन, शालीन वधू।
अमृत सुत की माँ, बहिन महा मानव की,
यह नारी हैं साध्वी पत्नी स्व पति की ॥

५९

गेहाजिर की मख वेदी सधूम चिर,
अक्षय कोष, रत्न कञ्चन, अन्न घृत का।
रवि शशि सी उदित संतति से निभृत गोद,
छीन सके साध्वी सौभाग्य न काल भी ॥

६०

रंग रूप मिला, गत जन्म के पुण्य से,
किन्तु सच्चरित्र सद्विचार से छवि में
लोकाभिरामता लाती साधुमति से,
ऋभवा सी दिव्यता सदाचरण करके ॥

६१

क्लीव, श्री हीन, कृश, कुरूप, वृद्ध, दुर्बल,
अन्ध, बधिर, पंगु पति मिले यदि दैव वश।
स्व आत्म वल से, सतीत्व, सत्य निष्ठा से,
कर लेती देव कुमार सा दिव्य उसे ॥

६२

धरा धीर, तरु सहिष्णु, तृण विनत, गिरि सी
सुदृढ़, मर्य्यादित सिन्धु सी, नभ सी विशद,
सती के हृदय में न झाँक पाते कभी,
ईर्ष्या, द्वेष, रोष, काम, कलह, भय, घृणा।

६३

पुरुष घट, नारी जल, तन्मिथ उपयोगी,
जल हीन घट व्यर्थ बिना घट दूर सलिल।
घट की उपयोगिता भरले निज में जल,
जलोपादेयता घट में समाने की॥

६४

अलग शक्ति निष्क्रिय - बिना स्व क्रियाश्रय के,
क्रियाश्रय जड़ शक्ति रहित, अतः शक्ति निज—
सक्रिय क्रियाश्रय युक्त कथित नारी, अरु
शक्ति केन्द्रित क्रियाश्रय शक्तिवान् पुरुष॥

६५

पुरुष की अहमन्यता ने अनेक बार,
आक्रमण किया है नारी इयत्ता पर।
पर महत्ता बढ़ी है, घन वन तिमिर में—
सर्प मणि होती ज्यों अधिकधिक दीपित॥

६६

तदनुकूलता स्वर्ग, निरय प्रतिकूलता,
स्व विविध रोगों की राम बाण औषधी।
रीति, प्रीति, धर्म, कर्म, यश की स्वामिनी,
सती प्रसन्नता से पूर्ण सब मनोरथ॥

६७

पुरुष शौर्य्य का शाश्वत सौन्दर्य नारी,
चैतन्य की संज्ञा, प्रज्ञा स्फूर्ति सहज
पारावार शुचिता की अमलीन, अमल,
अभिव्यक्ति साध्वी मानवीय आत्मा की॥

६८

गुण कोष का रक्षक, प्रीति का पालक,
होने से 'पति', भरण करने से 'भर्त्ता'।
समाज में नारी स्वरूप सम्मान शुभ,
पूजा कर्म करके पुरुष हुआ कर्त्ता॥

६९

बैठे न द्वार पर, झाँके गवाक्ष पर,
अकारण न हँसती, सम्मुख किसी के यह।
न आप करती कुवार्त्ता, सुने न पर की,
धीर गम्भीर शान्त लज्जा नत रहती॥

७०

आदर्शोत्कर्षों का प्रात सुतनु वपु,
जीवन सुधा निर्भरी के निनाद मुखर।
अन्तर तमिस्र भेद जिसका कृपा रवि,
नवोद्योग क्षमता नव भरता पुरुष में॥

७१

साध्वी सतीत्व के प्रभाव से टिका,
निखिल भुवन मण्डल, बल त्रिदेव का सकल।
जननी त्रिभुवन की मानवी गौरव मयि,
जिसकी चरण रज से प्रयत हो चराचर॥

७२

इसमें है प्रेम प्रतिकार न क्षोभ तनिक,
इससे किसी का सम्भावित अहित नहीं।
पाता प्रति प्राणी सुफल इसके तपका,
सबमें जगाती ज्योति दिव्य जीवन की॥

७३

विधि, हरि, हर समस्त तीर्थ सेवित,
निखिल लोकाश्रय, मुक्ति पंथ द्योतक, द्युत।
मधुर रसार्णव स्नात, जल जात कोमल,
जय साध्वी की स्वरूपाभिव्यक्ति सुखद॥

७४

मानित्र इतिहास, वाङमय, रस कला की,
व्यष्टि, समष्टि के उत्थान की सृजन की।
आत्मा, तन, वाह्याभ्यन्तर क्रान्ति की है,
नारी जन्म जात जन मनकी 'नायिका'

७५

उत्पत्ति स्थिति, प्रलयकारिणी, भगवती
सुविलसित नारी के मंगल अपाङ्ग मे।
निखिलाखिल शक्ति का विलासोल्लास सब,
नारी चरण नख दर्शन से अभ्युदयित ॥

नायिका

दशम सर्ग

१

नर-गन्धर्व-देव सत्वा, शुचि, सुरत सात्विका, मृदुस्मरा, स्थिरा,
उत्तमा, श्लेष्म शीला, श्यामा, मृगी, साधुभावा, रति मधुरा।
शुभानुकूल पतिका, सुकिशोरी, धीरोदात्त-विदग्ध-प्रेमिका,
सती, स्वकीया, जयति पद्मिनी, ललित नागरी, स्निग्ध नायिका।

२

अनिश हर्ष, उत्कर्ष-अमित है, रूप अमृत, सङ्गीत अतुल है,
महिमा, गरिमा, स्थिर-यौवन है, प्रचुर भाव, अनुभाव विपुल है ।
प्रभु, विभु, सार्वभौम सुन्दर है, अपराजित प्रसार है मन का,
ममता में मानव, करुणा में—है इसके भगवान् भुवन का ।

३

पद्म-कान्ता, पद्म-कोमला, पद्मांशुका, पद्म सी विकसित,
श्वास, सुरत पय, स्वेद, ष्ठीवन, आनखशिख सब पद्म सौरभित ।
शुद्धा, श्रद्धामयि, मित निद्रा, मितभाषिणि, मितभुक्, सुलक्षणा,
है सद्गुणा, सुखद, शुक्ला यह, पद्मा सी, पद्माङ्ग, दक्षिणा ।

४

अधर अधर की देह देहली, इसके स्मित दीपों से चर्चित,
हृदय हृदय का अजिर राग की, मधुर फाग किंशुक से रञ्जित ।
सबके मृण्मय पर अपाङ्ग खिंच, कनक कोट केयूर सजाते,
इसके युग गति हंस दृगों में मुक्ता के तोरण दुलराते ।

५

कीर्ति धवल शिर, भ्रू निष्ठान्वित, दृष्टि शुभा, लोचन पुण्योत्पल,
अधर सात्म द्युति, रद विवेक सित, गिरा सत्य ऋजु, मुख प्रेमोज्वल ।
उरभावोन्नत, वाहु कृपायत, पद सलक्ष्य चेष्टा कुलीन चिर,
गति विनीत, मति निश्चल, कृति शुचि, प्रकृति उदार चरित रत्नाकर ।

६

नये वर्ष की नव जीवन की, नये विश्व की, नव मानव की,
नवल सृजन वेला नव युग की, नयी प्रकृति यह नव माधव की ।
चिर नवीन यह, अभिनव रसमयि, नव दर्शन की नई प्रेरणा,
नूत्न निशा का नव चन्द्रोदय, नव प्रभात की अरुण चेतना ।

७

ललित कला, कौशल, क्रीड़ापटु, कर्म कुशल, रस रहसि-कोविदा,
रीति नीति निपुणा, रति पेशल, काल-स्थिति, पर हृदयगति विदा ।
निःश्रेयस्, अभ्युदय-उभय मयि, रक्षा, पोषण, सृजन, पारगा,
श्रुति शिक्षा, विनोद दक्षा—है-गृह्य चतुर, सर्वार्थ सौभगा ।

८

जीवन ज्ञान हर्ष यौवन चिति रस सन्तोष सुधा सुधि का भव,
प्रेम प्रभा छवि प्रतिभा, मन का स्वर्ग, मर्त्य, यश का शरदुत्सव ।
जीव-प्रकृति, ईश्वर-आत्मा की, सत् चित् की, रति की अनङ्ग की,
तत्व समन्वय की धरती यह, कोर किनारा भव तरंग की ।

९

मादनाख्य की, उज्वल रस की, महाभाव की कल्प त्रिवेणी,
श्रमोत्साह साहस संघट की, सत्प्रवृत्तियों की शिव श्रेणी ।
हैं इसके संगीत सृष्टि में, सप्रणय दृगमीलन उन्मीलन,
मौन समर्पण, शान्त ग्रहण पुनि, धीर गमन, गम्भीर आगमन ।

१०

नव शृंगारवती श्यामा यह, हसित हसित कर्षित लसता है,
मन में रति-रति सी रमती है, रस शृंगार रुनक रिसता है ।
वय कमला, चपला सी कुहुकिनि, रूपनदनु, सुर धनु रँगती है,
नख शिख कान्ति, नखत शशि वर्षिणि,अलंकार त्रयि में रमती है ।

११

चौंसठ कला स्तम्भ शिविका पर,सदा विराजित,कवि कुल वाहित,
इसकी शोभा यात्रा का पथ, जन मन रुचि चन्दन से चर्चित ।
स्वर्ग मर्त्य के मध्य अमृतमयि, मुक्तामयि केवल यह सरिता,
साँझ सुहानी में रसिकों का सोत्सव भ्रमण पोत है वहता ।

१२

सब पर कुहक मदन मादन का, सब निहुरे कर नयन निहोरे,
शिञ्जित पायल की रुनझुन ने किसके स्वप्न न हैं झकझोरे ।
किसका दर्प, अहंता किसको, जयी कौन है इसके सम्मुख !
चित्ताजिर-चिति की चौखट पर, मोहावलि वखेरते नख शिख ।

१३

प्रियंगु स्पर्श, अशोक पदाहत्, कुरवकाश्लेश, चूतक मुखान से,
वकुल मुखासव, तिलक दृष्टि से, चम्पक हास्य, नमेरु गान से ।
कर्णिकार नर्त्तन, सुरुतरु में–नर्म-वाक्य से होता दोहद,
मानव में तनु की स्मृति भर से रिसते रस निर्झर–भावाम्बुद ।

१४

रज चन्दन, करण अक्षत, जिनसे द्यु ति कपूर, तृरण अगरु सुहाते,
चरण द्वन्द पर चार चरण के–छन्द थकित, नव रस ढुलकाते।
इसका चिर माहात्म्य महार्णव अविदित अगम,अनिश,अपराजित,
कवि कुल की हे सिद्ध भारती ! वरदो मैं गा सकूँ उसे मित।

१५

अंग अंग अरिण के चिन्मय में, निखिलात्माओं का ज्योतिर्मय,
विलस रहा नारी में विह्वल, रूप विलास, प्रकाश भावमय।
एक रूप, भिन्न सत्ताएँ, सबको अपने की प्रतीति भर,
सबकी प्रतिभा में, प्रतिमा में, छवि विहार कितना विस्मय कर।

१६

अंगुष्ठाङ्घ्रि, सुगुल्फ, जानु में, जघन, नाभि, उर, उरज, कक्ष में,
गल, 'गण्डाधर, दृग, लिक, शिर तक क्रमश:श्वेताश्वेत पक्ष में।
दक्षिरण तन में ऊर्ध्व, वाम में-निम्न रमरण करता तिथित: स्मर,
तथा सितासित मति में जन भी उन्नति पतन प्राप्त करता चिर ॥

१७

स्वस्थ,स्निग्ध,सौम्य,सुन्दर,मृदु सुगठित,कान्त,सौरभित,विकचित,
सम,शीतोष्ण,यथा ऋतु शोभन,भाव वलित,रस ललित,अरुण,सित।
लास्योचित,सोत्सव, गीतस्फुट, सज्जित, सजग, सलज शोभाश्रय,
हिम-कर्पूर–इन्दु–इन्दीवर, इसका सुरधनु बपु–हिरण्यमय ॥

१८

इस सर्वज्ञा, कान्ता सम्मित, आज्ञा की सम्भव न अवज्ञा,
रस के सूक्ष्मान्तर दर्शन की, मूर्तिमती यह संज्ञा–प्रज्ञा।
शुभ का शोभा का निमित्त अरु, उपादान यह ही पदार्थ निज,
आत्मंगत विवेक में विकसित विश्व प्रारणमय यह सुख सरसिज।

१९

सुरुचि,सकुच,नव विकच, कुचांकुर,भ्रू खिचाव,चर्चित कच नीले,
शैशव गमन, उदय यौवन का, कहते सस्मित नयन लजीले।
नव वय की सुरम्य सीमाएं, छवि की अमित अमृत धारों पर,
चञ्चल हो उठतीं चाहों से बाँहों में मधु की लहरें भर ॥

२०

किया कलाओं को जीवन मय, जन-जीवन को मधुर कलामय,
जीवन और कला की इसमें, एक रूपता, एक समन्वय।
इसके मन की दश धारों से कला, शिल्प, श्रम, सिक्त, सरस, प्रति,
छवि की रंग पीठ पर नर्तित-पहिन घूँघरू अग जग की चिति ॥

२१

स्वप्न सँजोती, सुरुचि रूप की, सत्य सजाती-रूप साधना,
मुक्त न मन को रहने देती, रूप रञ्जना, रूप वासना।
मोह रूप का मर्म भेदता, चैन न पाती प्राण मोदिनी,
अनिश कोंधती है बिजली सी शिरा शिरा में रूप मोहिनी ॥

२२

दृष्टि मुषित निद्रा का मृग मद, रसिक नयन मधु के मोहांकुर,
इन्द्रनील मादन यौवन का, मन की मस्ती के मदिराक्षर।
रूप चषक में तीव्र मदीला, तरुणी के तन का नव रस घन,
मिष लावण्य, अतृप्त अतनु सी, चिलक रही, लुक ललक तृपित छन ॥

२३

लगन उषा किरणों के कर से, छूकर रस का सिक्त समीरण,
नव लावण्य कान्ति कमला का:जिसमें मुक्त मुकुल अवगुण्ठन।
वयः सन्धि की दीप्ति सरसि में राज हंस सा तिरता यौवन,
जिस पर चढ़ शोभा सरस्वती करती भव मन वीणा वादन ॥

२४

यह हिरण्य गर्भा, पूर्णाक्षय, धरा, उर्वरा सीं समस्त धृत,
इस तटस्थ में प्रतिजन पाते, निज रोपित, गोपित, कर्मेप्सित।
पाप;पुण्य, शुचि, अशुचि न इसमें, इसके मुकुर स्वयं के बिम्बित,
यह महान् चुप कर सहलेती-हित-अहेतु कर, खल आक्षेपित ॥

२५

विविध बिम्ब से भाव झलकते, हाव मीन शैवाल रुचिर से,
सित वक्र रेखा, कल प्रवाह सी विकसित हेला भँवर निकर से।
शिरा-शिरा माधुर्य्य सरित् सी, सह प्रगलभता के हिलकोरे,
चमक रहे औदार्य धैर्य्य के शुक्ति, शङ्ख छवि जल में कोरे ॥

२६

ललित,चकित विच्छित्ति कुतूहल किलकिञ्चित, विव्वोक कुट्टमित
हसित, विलास, मुग्धता विभ्रम,लीला,लपन, विहृत, मोट्टायित।
मद विक्षेप केलि, तरुणी के, अलङ्कार भी चिर आयुध भी,
धन्य कभी होते अनन्य बन, कभी व्यथित, क्षत होते बुध भी।

२७

श्रद्धा प्रत्यय, और समर्पण–गठित स्व के स्वरूप चेतन से,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मय विभु से, अवगत भव समत्व रस घन से।
निजोपयोगिता, निज अस्तित्व के, सत्य- श्रेय, शिव के प्रति निश्चित,
निज अविनाशी को नश्वर को–पृथक् लोक हित में रखती रत।

२८

जृम्भा, स्वेद स्तम्भ, स्वर-क्षत, अश्रु, पुलक, वैवर्ण्य प्रलय, नव,
उत्सुकता, स्वप्न, स्मृति,धृति, मति, ह्री विबोध श्रम,सञ्चारी सब,
हासोत्साह, रौद्र, विस्मय,भय दुख,शम विन, श्रवणादिक नवधा,
चित्तोन्मादोद्वेग दशादिक–जिसकी अनुग सुरत गति विविधा–

२९

समदन-मधु-मोदन-शाद्वल रति, मरकत ऋतु, निसर्ग उद्दीपन,
नीलम निशि सङ्केत निकुञ्जित, श्यामाश्रय श्यामा आलम्बन।
प्रेम हरित फल, जलदोत्मसुर,जिसका निलय-नील नभ सा मन,
रस शृंगार, जलधि कुरल द्युत,तनु के नलिन नयन का अञ्जन।

३०

दान, धर्म, रण, दयोत्साहिका, वीराङ्गना, निडर दृढ़ रमणी
माता, बहिन प्रेयसी, शिष्या, मित्र सुता गुरु वधू, सुगृहिणी।
मर्य्यादित, संयत, सुशील, शुचि, सदातिथ्य-सेवा प्रिय तरुणी
है नायिका पूर्ण तम नारी-आप्त, दीप्त सबला, भव तरणी ॥

३१

छवि, यौवन, मन, भार श्रमित यह, कुसुम कोपलों पर पग धरती
स्वप्न मरालों के मानस पर चलतीं जब मुक्ता बखेरती।
स्वर्ग बरस जाते धरती पर, हो जाता कण-कण ज्योतिर्मुख
सबके दृग के मेघ मलय पर इन्द्र धनुष से जगते नख शिख ॥

३२

अति मानव, अति मानस, इसमें, है अति मुक्त, अतीन्द्रिय, साश्रय
उनमें इसकी सह सत्ता है-प्रति सुन्दर-शुचिका सारोदय।
निश्चेतना तिमिर से जग के-डूबे जीवन को उबारती
चेतन का जड़ फोड़, सेतु बन, ज्योतिर्मय के तट उतारती॥

३३

अहिकुल कौतुक-मलय कुसुम सा मणि सा सुन्दर, शुभ शिर शोभित
नील कमल वन में श्री, तम में ऊषोदय सी माँग है लसित।
कुसुमार्चित नागिन सी कवरी-श्यामाप्सरा अलक का नर्त्तन
सुरभित, कृष्ण, मृदुल, शीतल हैं दीर्घ स्निग्ध केश कुञ्चित घन॥

३४

शून्य भेद कुण्डलिनी प्रकटित, नव रस अण्ड कला कर्मा का
जूड़ा भुवन बीन का तूम्बा, श्याम तेज मण्डल श्यामा का।
सहित बाल रवि-बिन्दु नवोदय, शशि शेखर-शेखर शशि अर्चित
स्वर्ग मुकुर सा-हेम पट्ट सा, भाल अष्टमी-शशि सा है सित॥

३५

मदन शरावलि, कृश कुञ्चित भ्रू, हैं नर्त्तित छवि बन की मधुपी
वधू घ्राण है भुवन मोहिनी, शुक चंचुल तीखी, तिल पुहुपी।
उठे भरे-किरणों में विहरे, नव अनुराग, राग रस निखरे
हेम कमल, श्री सर के, श्री के-केलि कुंकुमा, गण्ड मधुर रे॥

३६

मुक्ता से दाडिम से-रश्मिल, स्वच्छ-सुलघु, शोभा के कोरक
पद्म पराग, कुन्द सौरभमय, रद शृंगार, सुधा के-पूरक।
अञ्चल दोला-रसना रमती-जिनमें शरदाम्बुद चपला सी
कैरव कुल में उषःकला सी, दन्त पयोदधि में कमला सी॥

३७

विरल स्फीत, द्युतिल, हिम शीतल, अमृत चषक, दुर्लभ बिम्बाधर
मचल रहा जिनमें चञ्चल हो, निज अतृप्ति, तनु छवि का सागर।
मूँगा की झिलमिल रेखा सी, झाँक रही मधुर स्मित लुक छिप
रीझ रहा जिसकी लक्ष्मी पर, शरद प्रभात किरण का आतप॥

३८

सुरा, अमृत, विषमय, उत्सवमय, नव वय के पराग से ऊर्मिल
अरुण, असित, सित, तृप्त, तृषामय, स्वप्न,नींद, जाग्रति से झिलमिल।
जीवन, हर्ष, चेतना सुख के गीत, रूप, रस, रति के नन्दन
मृग चकोर, खंजन, सरसिज से पाटल से, शशि से हैं लोचन ॥

३९

नवल राग मयि कोर कलश में पुतली के संकेत न सुलझे
वरुणी घन खण्डों सी जिसमें मोह कुहक मुक्ताहल उलझे।
पलकों का मीलन-उन्मीलन, अनबूझे रहस्य की रचना
रेखारुण, तिल, मदिर दृष्टि की शुभ शोभा की कहीं न तुलना ॥

४०

रस विभोर, दृग कोर लाँघते, मृग बांधे ताटङ्क छोर से
मुक्ता मिष मुक्त्यङ्कित करते, पलक पींजरा के चकोर से।
मीनारोही-मीन डराते, खञ्जन नर्त्तन के अनुरागी
कार्त्तिक चन्द्र चौथ से हैं श्रुत रक्तोत्पल वन कान्ति विरागी ॥

४१

वापी, कम्बु, कपोत, शङ्ख सी, चिबुक लसित, जिसपर तिल षट्पद,
पद्मानन, मृणाल ग्रीवा यह, घोर गहन अद्भुत रस की ह्रद।
"उपमा रहित, आप अपने सम, प्रति युग के प्रति कवि से कीर्त्तित
रस विभूति मय, निखिल रूप ले कवि की श्रद्धा में चिर जीवित ॥

४२

पद्म मञ्जरी, अमृत फेन सी, द्वितीया की मृगाङ्क लेखा सी
शोभाद्रव सी उडुधारा सी, चपक तटोर्मिल, मद रेखा सी।
उदित उषा सी, मदनाकुंर सी, सान्ध्य सुरसरी की लहरी सी
प्रात किरण सी मुख की विकचन, है सब छवियों से निखरी सी ॥

४३

ललित कफोणि, सुडौल, सुगुम्फित, लसित कलाची इन्द्र रश्मिकृत;
शुभ चिह्नित, मंगल रेखान्वित, लिखे कमल से करतल शोभित।
विद्रुम वृन्त सदृश मृदुलांगुलि, इन्दु कुन्द से नख हैं भास्वर
प्रिय के कण्ठाभरण अरुण हैं-सम-सुकुमार वरद सुन्दर कर ॥

४४

विस्तृत, पाण्डु, सुदृढ़, उन्नत, घन, अविषम, कठिन, वर्त्तु लाकृत प्रिय,
मुकुलाकृत युयुत्सु लोक स्थित मदन वसन्त शिविर तम्बू द्वय ।
भुवन पोषिणी, दिव्य सुधाके, पुण्य कलश, मधुरस के निर्भर
बाला के उरोज, ओज मय, वय मनोज के स्फुटित नवाकुंर ॥

४५

पर्वोत्सव - पुराण - पावन-शुभ महातीर्थ, चेतन रत्नाकर
परम कलाकृति, विधि शिल्पी की, सर्वोदयकारी तुच्छोदर ।
रोम राजि लघु, मित केशर सी नाभि दक्षिणावर्त्त, सोर्मिमद
नारी शोभा के मदुजल के सरस कमल द्युति के पूरित हृद ॥

४६

शोभित कृश, कोमल, केहरि कटि, मदन राजधानी, लीलापट
पृथुल नितम्ब, कदम्ब, कल्प सी, रंग पीठ, पद्म पुष्कर तट ।
शीत स्निग्ध, कान्त, जघन स्थल, मनु सुरतोत्सव, कदल यूप नव
गजकर ऊरु, जानु अति गुम्फित, चारु पिण्डरी, निरूपम अवयव ॥

४७

द्युमणि कांत तल, अरुण नखत नख, गुप्त गुल्फ, अँगुली, लघु सस्थित
अग्र विरल, सच्छिह्नित, उन्नत, सम, उपचित, सित यावक रंजित ।
जपास्निग्ध, किसलय मृदु, रश्मिल इन्दु सरस मन्दार सौरभित
हँस यास गज गति मद शिञ्जित चरण द्वन्द अरविन्द ज्योति नित ॥

४८

प्रकति मोदिका ऋतु बिनोदिका, खग मृग, द्रुम की मधुर चाहिका
गृह जन रुचि, अनुरोध पालिका, निज चरित्र, धृति, आत्म रक्षिका ।
गुरु जन के प्रति-भीति, भक्ति-मयि, प्रभु की प्रीति, प्रतीति साधिका
लास्य-हास्य-रस भाव रता यह, है अनन्य रति वती राधिका

४९

आनख शिख, अभिराम रसवती, नव प्रणयातिथि, रति मन्दिर की
प्रथम मिलन की सिहर पुलक यह, नव दर्शन के निकट प्रहर की ।
मुकुर समीप सलज सकुचाती, पुनि प्रिय रुचि कल्पना भीतिरत
पार्श्वागत प्रिय ने निसार हो-वेश प्रशस्ति गान की कविवत् ॥

५०

वय श्रृङ्गार, अंग की प्रथम वसन्त बहार, रूप की बेला
भूषण गमक, मार के मोदन का भण्डार, प्रणय का मेला।
पटोपचार, धार का अधर अवन्ध कगार, भँवर का भागी
पीता सुतनु, प्यार का उच्छल पारावार, हृदय का रागी॥

५१

नील साटिका, पीत ओढ़िनी, अरुण कञ्चुकी, असित उपानह
प्रकटित करते प्रति प्रहरों का, सारी रस ऋतुओं का आग्रह।
मादक मधुर लोम रन्ध्रों से पी घनसार कणों का परिमल
लहरा लहरा कर मधुराञ्चल, छलका रहा सुरभि मलयानिल॥

५२

खिसके पट की मसृण ठसक से वेणी में बेला इतराती
हरसिंहार, झड़ें झरना से कुन्द घात चम्पा दुलराती।
भ्रमर भीत लुक रही जपा यह, कमल भ्रमित निज नये मोल में
सिहर रहीं माधवी केतकी, वकुल स्पर्शित मदन दोल में॥

५३

स्वाति कणों की बदली काया, परिचित भी पहिचान न पाते
होठों पर ही खड़े मानसर प्यासे के दुख पर इतराते
मुक्ता का श्रृंगार, अजाने पारावार तृषा का रुलता
छिप मम चाहों के पङ्खों में चातक का संसार कलपता

५४

तप्त हेम तन पर रत्नावलि जटित हेम भूषण, हेमाम्बर।
हेम कुसुम स्रग उर कवरी में, अङ्ग अङ्ग मनु हेमेन्दीवर॥
चाहक दृष्टि तरी सी तिरतीं, लहर लहर मीनों की हेला।
रस वर्षा की सान्ध्य सुनहली, सुर धनुषी तन सागर बेला॥

५५

नव वसन्त के नव पराग कृत, नई सर्जना की नव धरती।
अलकों की सुन्दरी स्वप्नमयि, नभ के नव स्वर्गों से भरती॥
तैराती अनुराग अरुण घट, आती उषा चुपाती तारा।
मुखरित करती नव स्वर में तव रस सङ्गीत सुधा की धारा॥

५६

लोध्र पराग, तिलक मृग मद का, माँग हेम रज, शिर की बेंदी ।
पद यावक, नयनाञ्जन, नख द्रव, भ्रू गोरोचन, कर की मेंहदी ।
उर कुंकुम, बहु पुष्पसार गण, तन पर के सब अङ्गराग रस ।
अधरों की ताम्बूल रंजना, क्यों न करेगी आज भुवन वश ।।

५७

कवरी स्तवक, रत्न मय टीका, चूड़ामणि–मुक्ता की झालर ।
भुज केयूर, करों के कङ्कण, कण्ठ हार, कर्ण के झूमर ।।
कटि किङ्किणी, चरण के नूपुर, मुद्रांगुलि, नासा नथ, बेसर ।
नव यौवन शृङ्गार, मधुर यह मचल रहा नव छवि का सागर ।।

५८

कला शिल्पता, निखिल नव्यता, मौलिकता, उत्तम उर्वरता ।
समुची सुरभि, समस्त मधुरता, तन्मात्रा, सब सार, सुघरता ।।
विधि पटुता, निसर्ग की रसता, भावों की भवकी चेतनता ।
तव रचना में देवि ! चुक गई, मदन, फल्गु, सुर, नर की निजता ।।

५९

संसृति में नित नवोन्मेष मय, पद पद पर वह परम पुण्य प्रद ।
होता नारी मन नन्दन के, प्रेम कल्प तरु में नित दोहद ।।
जीवन को चैतन्य, कला को लक्ष्य, भाव को स्वर, रस को गति ।
तुम देतीं आचरण धर्म को, जग को सुख, प्राणी को परिणति ।।

६०

अशकुन, अशुचि, अभद्र, असंयत, कु-स्वभाव, अघ, अस्वाभाविक—
अकुशल, घृणा, कुदृष्टि,कुपथ गति, स्वार्थ, व्यसन, अनुचित, अमानुषिक-
निद्रालस, लिप्सा, षाड्रिपु, तम, अहित, अभाव, अरुचि, दुश्चिन्तन–
द्वेष, ईर्ष्या, कलह, कुयश, भय, दोष, कुगति, कटुता, न दुर्वचन–

६१

भ्रम, सन्देह, तर्क, शङ्का, लघु, द्वैत, अनुपकृति, त्वरा, उपेक्षा—
चञ्चलता, अधैर्य्य, आकुलता, क्षौद्र, अनिष्ठा, क्लेश, अशिक्षा—
असहयोग, अपकार, अशोभन, पश्चात्ताप, अभक्ति, जल्पना—
इस विचित्र तनु में न अल्प भी, अकृपा, असद्, अनर्थ, भर्त्सना ।।

६२

इसका कुशल तटस्थ तृप्त निज भावुकता में भूल पात्रता।
सुन्दर की सुकल्पना में लय लखना सुनना कुछ न चाहता॥
निज स्वरूप सुधि में रत इसकी प्रति पल पूजा का क्रम चलता।
सागर यह अनुसार स्वगुण के सबको अमृत-सुरा-विष मिलता॥

६३

रीति, कला, रस, भाव, रतिवती, पूर्ण रता, पूर्वानुरागिणी।
प्लुत कटाक्ष, संधान श्रमस्खल, सहज स्वप्रिय उर विजय रङ्गिणी॥
सुतनु विश्रब्ध नवोढ़ा, मुग्धा, अप्रगल्भा, यौवनांकुरा।
प्रेम गर्विता, मुदिता, स्वकुला, वनी अनूढ़ा है स्वयम्वरा॥

६४

नयन चपलता, गण्ड पीतता, जघन पीनता, कुच कठोरता
सुकटि गहनता में मदनालस गति में सह रति की विभोरता॥
अङ्ग अङ्ग से, रोम रोम से छलकित शत वसन्त शोभार्णव।
वर्ष रात्रियों के शशि गण की विभा पूत इसका दर्शोत्सव॥

६५

विरह कथन-विनय स्तुति, निद्रा, मिलन, बोध, पटु, दूति उत्तमा—
मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ, परिहास परा, सब सखी सत्तमा।
हित कारिणी, सुव्यंग विदग्धा, वहिरंगिणी, व अन्तरंगिणी,
सहज स्वयंदूती प्रिया कभी प्रिय रुचि-रति-सुख की रसस्विनी॥

६६

विप्रलम्भ, संयोग उभयतः प्रेम वृत्ति में क्रमशः परिणत—
जो व्यवहार अवस्था स्थिति में, नव संज्ञा, नव लक्षण अन्वित—
भाव प्रकाशन के स्वरूप में रूप भिन्न, रस भिन्न लखाते।
जिनको रसिक सभेद सावयव, ललित कलाओं में दरसाते॥

६७

लख पति शिर अरुणाङ्क-श्रमित तनु, सान्द्र भाव गुम्फित-लीला वश।
थकित, कुपित, विस्मित हो प्रिय का, पोंछा भाल, श्रमित हो साध्वस॥
नयी खण्डिता-नव कौतुक से चुटकी ले ईषत् मुस्कायी।
करुण हुई कह—"दोष न तब कुछ—मैं न तुम्हारे हूँ मन भायी"॥

६८

प्रेम वती, अति मान वती हो किञ्चित प्रणय कलह कर आयी।
पछताती अब अपराधिन सी, स्वमति कोसती अति अकुलायी॥
यहाँ अनस्थिर, पर चलने में उस पथ शिञ्जित पद सकुचाते।
कलहान्तरिता के पीड़ित दृग रह रह मुक्ताहल बरसाते॥

६९

गयी प्रीति मयि प्रिय मन्दिर में भरे नयन में विपुल याचना।
शून्य कक्ष, रिक्तासन लख कर, सहसा सह न सकी स्ववेदना॥
रुकी पराजित सी, पीड़ित सी, प्रिय अप्राप्ति से अति दण्डित मन।
लगे विप्रलब्धा में चुभने काँटों से गृह के सुख-साधन॥

७०

सजल, निमीलित, खोज, श्रमित दृग, शिथिल अंग गति अचपल, विह्वल।
भूषण अल्प, वेश परिमित मित, निष्प्रभ राग, असाधित कुन्तल॥
करुण दृष्टि, मुख मलिन, मौन, कृश, चिन्तित, निभृता, विरहवती चिर।
प्रोषित पतिका, पति परायणा जीती स्मृति में छवि लिख, गाकर॥

७१

पथ निहारती, उडुगण गिनती सजग द्वार पर दीप सजाती—
शुक को मन की पीर सुनाती, पलकों पर सपने दुलराती॥
प्रेषित करती वृत्त पवन में वातायन पर अश्रु गिराती—
तनु प्रवत्स्य-पतिका-सुधि तन्मय-निशा-जाग-दिन विरस बिताती॥

७२

पत्र आगमन तिथि का पाकर, उत्सुक मन अतिशय उत्साहित।
हुआ प्रतीक्षा पल अति दुर्वह कर शृङ्गार खड़ी वह उद्यत॥
बीते प्रहर न आये प्रियतम—सूखी धार अधर के रस की।
नवोत्कण्ठिता की उत्कण्ठित भग्नाशा घूँघट में सिसकी॥

७३

प्रिय आगमन प्रिया पुलकित मन, लोम लोम में खिले पद्मवन।
हुआ भाल में नव अरुणोदय, शत शरदिन्दु सुधा पूरित मन॥
रूप सिन्धु उच्छल, गति सिन्धुर मद के शीधु लगा बरसाने।
आगतपतिका का सुख सौरभ लगा बसन्त विभूति जगाने॥

७४

नव शृङ्गार, नवीन प्यार युत, तनु सुकुमार सभार हेरती ।
मूँक यातना, मूर्त्त विनय सी, सलज दृष्टि, तन, मन, सहेजती ।।
राका में राका सी विलसित, वदन इन्दु पर रच घन घूँघट ।
सुख, विहार, अभिसार हेतु यह अभिसारिका चली प्रिय के तट ।।

७५

स्वागत और मिलन उत्सव के कर पदार्थ एकत्र निराले ।
रङ्गों से फूलों से बहु विधि रच पच के गृह द्वार सम्हाले ।।
आनख शिख सखियों के द्वारा रागार्चित, सज्जित, शोभित हो ।
वासक सज्जा खड़ी सानुनय स्वपति प्रणय, लालसा लिहित हो ।।

७६

स्वर्गिक छवि, लावण्य, नव्य वय, प्रकृति, प्रीति, भाव, कृति, रस से ।
सद्गुण राशि, कुलीन वपु-श्री, मङ्गल वेश, गिरामृत, यश से ।।
नट , गमन, एकान्त समर्पण, केलि, कला पटुता, परमा से ।
मुग्ध स्ववशपतिका ने प्रिय को सहज किया अपनी महिमा से ।।

७७

नारी मधुर वारुणी तम की, रज की रम्भा, रमा सत्व की ।
निखिल सर्जना की सरस्वती, उमा नाश के सच्छिवत्व की ।।
ज्योति शिखा भव स्वात्म दीप की प्रकट मूर्ति ईश्वरीय तत्व की ।
मानव के संसार सार में, देवि ! सृष्टि हो तुम महत्व की ।।

७८

झीनांशुक, शशि मणि, मुक्ताञ्चित, कुसुमार्पित, चन्दन लेपित उर ।
सरसि, हिमोत्स, चन्द्रिका, उपवन, सरिता में नौकारोहण कर ।।
गृह उशीर पट, मलयार्चित महि; गन्ध सिक्त शीतल तल्पोत्तम ।
गान वाद्य युत प्रिय सँग करती बहु विहार लख नव ग्रीष्मागम ।।

७९

खग, मयूर, उत्सव मय, निर्झर कल रत उमड़ रहे सरिता नद ।
मृदु फुहार, घनघोर मुखर घन, नर्त्तित विद्युत के विभोर पद ।।
नव रसाल तरु के दोला पर, जुही, मालती वकुल, गन्ध बश ।
वर्षा की सुहास बेला ने सिरजा दम्पति में मादक रस ।।

८०

काशांशुका, कमल वदना, परिणत धानाङ्गी, हंस नूपुरा ।
शरद नव वधू विमुध भुवन को भेट रही निज रूप इन्दिरा ॥
मचली लख नव परिणीता की निज सरोज शोभा की कुरली ।
जिस पर मुग्ध विकल आ बैठी प्रिय मन की सतृष्ण अलि अवली ॥

८१

तुहिन वसन, नीहार हार मय, मधुस्पन्दि—हेमन्त आगमन ।
उदित हुए सब में नव अंकुर, रञ्जित हुए निखिल यौवन, मन ॥
पुलक छलक हो उठे रस विवश, पति प्रियानुनय कर, प्रमोद सन ।
नव शृङ्गार, प्रणय चिन्हों से विलस उठा तनु का सत्कृत तन ॥

८२

आया शिशिर पवन श्वासों से बरसाता सस्पन्द तुहिन कण ।
सिहर उठा दम्पति का नव मन, शीत भीत शशि किरण बिद्ध व्रण ॥
द्वैत मिटा शय्यासन, रुचि का, एक प्राण होगये एक तन ।
बन्द कक्ष के हेम दीप में लक्षित छायाओं के नर्त्तन ॥

८३

सजी निसर्ग वधू, कूकी पिक, नव परिधान पहिन द्रुम पुलके ।
भरे कुसुम कलशों में मधु रस, मलयानिल मलयासव छलके ॥
नव बसन्त के मधुरागम से, मस्त हुआ संसृति का कण कण ।
चिलक उठा तनु के अन्तर में नये राग का नया समर्पण ॥

८४

प्रेम साधना कर नारी की पुण्य श्लोक सुकृत हों नायक ।
व्यक्त उसे कर निज गीतों में अमर हुए धरती के गायक ॥
विषयी, मोही, लुक छिप चलते, प्रेमी ढ़ोल बजाते गाते ।
पहले नष्ट तमोमय होते, अपर प्रबुद्ध, बुद्ध बन जाते ॥

८५

चैत्र सुखद, वैशाख मधुर है, ज्येष्ठ ललित, आसाढ़ समुज्वल ।
श्रावण सरस, भाद्रपद सुन्दर, आश्विन शुभ, कार्त्तिक पुण्यापल ॥
मार्गशीर्ष शुचि, पौष साभ्युदय, माघ मदिर, फाल्गुन विनोद मय ।
दिन, सप्ताह, द्विपक्ष, याम, क्षण, नित्योत्सव मय इसका आलय ॥

८६

स्वर न थमे, सङ्गीत न बीते, रहे लीन निज मस्ती में मन।
इसीलिये तुम निज में पर में करतीं स्वतः विरह संयोजन॥
मिलन तुम्हारा अति सुखदायी है वियोग उससे भी सुन्दर।
विप्रलम्भ उर परुष, दृष्टि सङ्कोच, वद्धता देता क्षत वार।

८७

गर्भ प्रवेश, जन्म, रज दर्शन, परिणय, पति गृह गमन, सम्मिलन
शुभ नक्षत्र, लग्न, ग्रह, बेला, घड़ी, वर्ष, माह, वासर, क्षण—
में सम्पन्न हुए, दैवज्ञों के मुहूर्त्त से, कुछ नैसर्गिक—
मधुर नायिका प्रति पल स-शकुन, सिद्ध, सफल, दुर्भाग्य विनाशक॥

८८

मानव जब चाहता पहुँचना प्रभु तुम तक तब उसकी यह 'मैं'।
अति ऊधम, उत्पात, मचाती, रोड़े अटकाती प्रति पथ में॥
तभी कृपा करुणा कर नारी 'अहं' रहित निज 'तुम' छिटकाती।
जिससे मेरी भँवर पड़ी क्षत नाव तुम्हारे तट आ जाती॥

८९

सरस साधना मञ्जित अपनी मुक्त चेतना की वीथी पर।
तनु की जब सौजन्य सुधा का मणि प्रदीप देता पन्थी धर॥
सहसा जाती है प्रकाश से लक्ष्य दिशाएं भर छोरों तक।
भीत भाग जाते न दीखते हिंसक जन्तु, दस्यु दूरी तक॥

९०

अविषम, तम, भ्रम, विगत, सुनिश्चित, संयम मय, पक्षोभय के क्रम।
सुख से वह शरदिन्दु सुधा सी, दुख में प्रात अरुण आतप सम॥
जितनी जो अपेक्षिता रह कर तदधिक जब उपेक्षिता बनती।
प्रतिकूलानुकूल दोनों की निकषा पर वह खरी उतरती॥

९१

पूजा के गीतों से पूरित, आराधना भावना में रत,—
बढ़ता रहता जिसका जीवन सुर प्रसाद सा जग में संतत।
देख दीप सी प्राणाजिर में मुक्ता तोरण सी दृग में द्युत।
इष्ट देवता की प्रसन्नता सी नारी भू पर है दर्शित॥

उपेक्षिता

एकादश सर्ग

१

प्रोषित प्रिया सी निकट प्रिय के सम्मुखस्थ वियोगिनी।
अधिकार विहृता स्वामिनी - गेहस्थितापि प्रवासिनी।।
निज शयन - गृह की विप्रलब्धा, प्रणय - रति निर्वासिता।
पति युक्त विधवा सदृश दर्शित - जयति वधू उपेक्षिता।।

२

रस साधिका श्रुति के सवेरे के अधूरे गान सी।
हिम पात मर्दित मुकुल मुख के मुखर शीत विहान सी॥
अल्प स्फुरित नव विरहिता के स्वप्न की मुस्कान सी।
तनु! दीखतीं तुम भाव रस से रहित जन के ज्ञान सी॥

३

परिवार सम्मत, निज पसन्द समृद्ध गेह, स्वजाति की।
वय, रूप, गुण, कुल, शील, वपु, में आप अपनी भाँति की॥
सविपुल यौतुक, सविधि परिणीता, सती शुभ लक्षणा।
अनुकूल, प्रेम परायणे, तुम व्यथित लख पति की घृणा॥

४

मणिमय ऋभव के कण्ठ की उद्धत करों से खण्डिता।
भू पर गिरी आलोक कुसुमित कोकनद की संहिता॥
अध्यात्म दीप स्नेह में चेतन शलाका हेम की।
बुझती हृदय वर्त्ती उठाती लौ जगाने प्रेम की॥

५

लौटा लिये अपने निमन्त्रण मलय मन्द समीर ने।
खोये सभी परिचय प्रणय के मिलन कुञ्ज कुटीर ने॥
जागरण दिन ने चुराया, नींद हरली रात ने।
सुख-साध का मधुवन गला कर रख दिया हिम पात ने॥

६

अमरावती का रूप, अलका का सुनहला राग ले।
रस राजि सिंहल द्वीप की, व्रज का विपुल अनुराग ले॥
बलिदान पुण्य अरावली का, पञ्चनद का हास ले।
अश्रुल तुम्हारे नयन क्यों? काश्मीर का उल्लास ले॥

७

गृह कल्पतरु, निज स्वर्ग तुम, आराध्य सुर संसार की।
युग पुरुष बलि पर, मुदित वामन मूर्ति तुम उपकार की॥
दर्शन तुम्हारे पुण्यमय कर धन्य योग व याग हैं।
जिस पर पड़ें पग प्रणत उस महि पर अनन्त प्रयाग हैं॥

८

मरु दग्ध पावस के प्रथम घन की समुष्ण फुहार सी ।
स्वीकृत, प्रतिश्रुत, मूर्त्त तुम विस्मृत उपेक्षित प्यार सी ॥
खग्रास में लख इन्दु विकला कु ग्रह भीना पूर्णिमा ।
प्रमदोत्तमा प्रेमोद्यमा विरहश्रमा क्या हो उमा ?

९

तुम स्वर्ण, सौरभ मयि ! अमृन सौन्दर्य्य की रस रञ्जना ।
तव अति समर्पण मय हृदय की प्रेम ही बस वासना ॥
हैं जी उठे अवशेष जग के सज नये उन्मेष में ।
अद्भुत विभूति विराजती चिर, प्रति नये तव वेश में ॥

१०

मानव शिराओं में, मनों में, अमृत रस उत्पादिका ।
तुम निखिल जीव समूह की जीवन विभा संवाहिका ॥
सन्तुष्ट हैं हम शान्त हैं, हों हर्ष में या शोक में ।
आलोक ही आलोक है नारी ! तुम्हारे लोक में ॥

११

रोमाञ्च गदगद् गिरा, नर्त्तन, गीत, स्वेद, व्यथा, हँसी ।
मूर्च्छा, समाधि, विरक्ति, पुनि आसक्ति, ससुधि, विदेह सी ॥
तन्मय, प्रलाप, प्रमाद मयि, रस रीति रति की साधिका ।
प्रतिकार विरता अवतरित क्या कुञ्ज वन की राधिका ? ॥

१२

पाथेय पीड़ा का सम्हाले निज नवीन दुकूल में ।
जीवन मरण दो कूल उस प्रतिकूल नद उपकूल में ॥
खोई हुई निज भूल में सनती हुई रुचि धूल में ।
सुलझा रही हो फूल निज जो फँसा भाग्य त्रिशूल में ॥

१३

निष्ठावती स्थित प्रज्ञ, निस्पृह, पद्म-पत्रमिवाम्भसा ।
कर्त्तव्य, रत, संयत, सुदृढ़, क्षेमङ्करी, शुचि, सम दशा ॥
अकुतोभया, सम दर्शिणा, उपराजिता, सर्वोदयी ।
मुझ पुरुष के अपराध से तुम त्रस्त हो ज्योतिर्मयी ! ॥

१४

यह रुक गई है प्रगति किसकी कामना के भार से ?
क्यों हार हार पुकारतीं उस पार को इस पार से
हो भग्न वन्दनवार स्वर्ग-द्वार की भू पर गिरी।
नृ-सुमेरु की कटुता न क्यों धो पा रही तव निर्झरी ?

१५

झोली रहेगी आर्द्र, रीती व्यर्थ विलसित वासना।
क्यों तव भिखारिणि दृष्टि ? जग तव पूर्व ही भिक्षुक बना ॥
कुछ पास देय न ? पर न लें क्या तव विभूति स्वकाम में।
रामा ! सदा तुम रम रहीं हममें हमारे राम में ॥

१६

गत सांझ से चिन्तन रता जागी न शेष प्रभात भी
अति भोर की बैठी न हिलती विगत स्वप्निल रात भी
मधु याद में, अवसाद में दिन माह संवत् युग ढ़ले।
निज पर भुवन तम भार ले मरु ताप पर केसे चले ? ॥

१७

प्रत्येक पग उठता निरख जीवन ककुभ निरुपाधि है।
पुनि चोंक नयनोन्मिषित देखा अति समीप समाधि है ॥
अवसान दिशि तुम खोजतीं प्रति ओर दृष्टि बखेर के।
छवि; गीत; यौवन, मुक्ति, मंगल खड़े सब पथ घेर के।.

१८

गुजरात की गति, लास मणिपुर का, बिहार विदग्धता।
लावण्य, संस्कृति वंग की, सौराष्ट्र की उन्मुक्तता ॥
संस्कार अन्तर्वेद के भारत-भरत की पूर्णता।
पीड़ित हुई हो एक से हे विश्व भर की एकता ॥

१९

पाथेय प्रेम, वितान मंगल भाव रस की धार है।
पतवार प्रत्यय की सुदृढ़ शुभ सत्य खेवन हार है ॥
संयम किनारे धर्म लंगर गेर मति के पार में।
तुम मुक्ति की तरणी प्रगति मयि विश्व पारावार में ॥

२०

मानव ! तुम्हारे स्वप्न शत चिन्तन लिहित नव कल्पना,
नूतन, पुरातन, काव्य अनगिन विविध मोदन सर्जना,
उत्कर्ष – पूर्णोत्सर्ग – स्वर्ग निसर्ग की संयोजना,
जिसके निमित्त कलत्र वह निज क्षेत्र में खिन्नोन्मना ।।

२१

कण कण लुटीं, दुख से फटीं, तिल तिल मिटीं, प्रतिपल कटी ।
अणु भर हटीं, न तनिक घटीं; तुम निखिल नाटक की नटी ।।
द्युत, व्यक्त-आत्मा पूर्ण तुम परमात्मा की धारणा ।
स्वीकार हो मुझ क्षुद्र जन की यह अकिञ्चन वन्दना ।।

२२

नव रूप में संयोग चिथड़े अङ्ग में शृङ्गार से ।
ज्यों प्रेम में कुञ्चित कठिन अपराध भी रस धार से ।।
उद्गीथ की, संगीत की चिर मुक्ति पथ की भारती ।
मणि मोतियों का गान दृग में आर्द्र आर्त्त दुलारती ।।

२३

अभिशाप वश लखती विविध कटुता–कुवर्ण–कुरूपता ।
वास्तव में है न जग में मित अशोभन, उग्रता ।।
जब रूप मण्डल मञ्च पर शुचि आत्म दृष्टि विराजती
तव तपः पूत प्रकोष्ठ्य में निज उर्वशी गण नाचती

२४

मरु के तृषित के सामने क्षत स्वर्ण घट मधु का भरा ।
दो छींट अधरों पर पड़ी मनु अग्नि में घृत हो गिरा ।।
जन वेदना में चेतना रस प्रेरणा की भारती ।
तुम द्युत किये हो प्राण तम में अर्चना की आरती ।।

२५

हे देवि ! करुणा का किया शृङ्गार रस शृङ्गार से ।
रीते भुवन के पात्र तुमने भर दिये निज प्यार से ।।
मुखरित हुआ वह तीर इस तट की मदिर झङ्कार से ।
क्या सुन पड़ेंगे गीत तव उस पार के इस पार से ।।

२६

किसके कमण्डल जात, किसकी पदी, किस लोकागता।
किसके सुतप मे अवतरित, किस शम्भु शिर पर राजिता।
किस नगाधिप पर प्रकट किस भूमि पर निस्यन्दिता।
किस सिन्धु की अभिसारिका तुम स्वर्धुनी मी प्रेषिता ?॥

२७

जो गिर गया निज ध्येय, धर्म, विचार शिष्टाचार से।
पुरुषत्व, न्याय, विवेक, प्रण, सौजन्य, पर आभार से॥
उस निज अबोध-निरीह को क्यों परखती व्यवहार से ?
शोधो उसे करुणा अहिंसा क्षमा, शान्त्युपचार से॥

२८

उन्निद्र तव दृग कोंपलों पर ऊँघती निद्रा परी।
प्रिय रहित शयनागार की निस्पन्द आँज विभावरी॥
तुम स्वप्न मुक्ता के अवर में थपकियाँ देती जिसे।
चिर जागता सा वह तुम्हारी दीप की लों पर हँसे॥

२९

गाती हुई करुणार्त्त पलकें आर्द्र स्वर में लोरियाँ।
उड़ते हुए युग खञ्जनों की थाम लेतीं डोरियाँ॥
नव आँसुओं के व्याज खुल जाती हृदय की थैलियाँ।
कब तक छिपेंगी विश्व से तव मर्म घातिनि चोरियाँ॥

३०

बरसा रही है चाँदिनी चाँदी चतुर्दिक रूप की।
यह धूप बरसाती कनक नित भुवन वन्द्य स्वरूप की॥
नीहार में झड़ झड़ पड़ें मुक्ता अनश्वर प्यार के।
पर पा सकोगे कण न मानव ! तुम इसे दुत्कार के॥

३१

हैं फँस गये खञ्जन, रुके हैं हंस, मृग चूके विंधे।
आकुल चकोर, कपोत बन्दी वागुरा में तिमि बँधे॥
बैठा तनिक उठ कर हृदय जिसका पयोधि हिलोर सा।
जो रो पड़ा बस एक ही क्षण नाच करके मोर सा॥

३२

निज क्रूरता के पत्थरों से पाट कर अवरोधके
अङ्गार के तोरण, गरल घट बाँध गुण दुर्बोध के
पथ गोक्षुरों से भर किया है बन्द द्वार विकास का।
अनुरोध घोर विरोध क्यों इस पार दर्शि प्रकाश का ?॥

३३

प्रति श्वास से गीले वसन सी लिपट रोती वेदना।
प्रति अस्थि में कण्टक सदृश चुभ गुभ रही अवहेलना॥
परिमाण क्या इस मूक मन का मोतियों के भार में।
पाती न वल्ली थाह मम तव आँसुओं की धार में॥

३४

स्वेच्छा, निसर्ग, व भाव वश, तव हेतु तनु ने जो किया।
उससे बलाद्भय से कराना चाहते अब वह क्रिया !॥
अन्याय, अनुचित, फिर असम्भव, पात्रता भी है कहीं ?।
होता स्वतः इसको कराया या किया जाता नहीं॥

३५

रहती झुकी की झुकी प्रिय पद रेणु पर पद टेकने।
द्रुत वच निलता वह, तड़फती यह उन्हें पल देखने॥
उच्छिष्ट खाकर तुष्ट जो अति दीनता में भी धनी।
गेह स्थितापि प्रतीत होती नव तरुण सन्यासिनी।

३६

तत्सुख सुखित्व, दुखित्व, दुख जो सहज नारी स्नेह में।
आत्मिक विभूति विशेष की सम्भव न सबकी देह में॥
चिर गेय महदाचरण - आदरणीय – अनुकरणीय है—
रे ! अति अलौकिक कृत्य क्या समुदाय का करणीय है ?॥

३७

प्रिय सदन आते मिल न पाती दूर मर्म विरह सहे।
तनु रमण - गमना सी प्रतिक्षण विवश पछताती रहे॥
खाती हुई कुहु भाग्य शशि को लख पड़ी तम पक्ष में।
पीछे किनारा दूर अति आगे न तट है लक्ष में॥

३८

तनु यह विलक्षण आचरण की करुण रस की दामिनी।
चिर वेदना वंशी तरल स्वर रागिनी की स्वधुनी ॥
मधुभाव सागर मग्न स्वप्निल कल्पनाभ्र विहारिणी।
है अगरु सुरभित श्वास से उर व्यथानल सञ्चारिणी ॥

३९

यह मानवी अबला यहीं हैं बद्ध ममता पाश में।
क्यों जान कर जड़ हो रही जकड़ी हुई विश्वास में ? ॥
आदर्श की, उत्कर्ष की, संघर्ष की अद्भुत नटी।
प्रतिशोध प्रेरित कब वधू उत्सर्ग वीथी से हटी ? ॥

४०

'कभी न घटती, कभी न पड़ती तनु की व्यथा पुरानी है।
बढ़ता ही जाता धरती पर दुखते दृग का पानी है ॥
जितना दूध पिलाती जाती उतनी बनी बिरानी है।
रही अनवगत कथा न इसकी घर घर विदित कहानी है ॥

४१

जब पाटल पर नभ से कोई राजित किये हिमानी था।
नारी के पग पग पर उस क्षण जानु जानु भर पानी था ॥
नलिनी घूँघट खोल नयन के बन्दी मधुप उड़ाती है।
ये अपने दोनों मधुपों को मधु में बोर फँसाती है ॥

४२

लो चलने को निशि सम्हालती निज अञ्चल तारों वाला।
ओस कणों मिष रोकर देती विदा उसे ऊषा बाला ॥
यह प्रभात का शीत समीरण कमल खिलाता आया है।
सन्ध्या के बिछुड़े प्रियतम को इसने अभी न पाया है ॥

४३

तन में शीत कम्प व्यापित है, मन में अति बेचैनी है।
रह रह वातायन से पथ पर झाँक रही मृग नैनी है।
वात स्पन्दित शृङ्खल रव से चौंक पड़े अब के आये।
किसी पथिक की पहिचल भर से बढ़ मन की धड़कन जाये ॥

४४

दूख रहे थे क्षण क्षण व्रण से शत संकल्प विकल्पों में।
दुश्शङ्काओं के वृश्चिक-अहि दंश चलाते पलकों में॥
मोती बरसाती नयनों में कलप गई करुणा रानी।
ममता कोरों पर निचोड़ती निज कोरा अञ्चल धानी॥

४५

तब भीगी सीठी वेला में खुला द्वार धीरे धीरे।
जिसकी पैनी स्वर नोंकों ने हरे घाव मन के चीरे॥
पिक की बोली में जीवन का जो ममत्व उसने गाया।
पति मन का पशु शृङ्गागे कर क्षुभित कुपित हो गुर्राया॥

४६

जीवनधन! 'प्रियतम'! स्वामी! प्रिय! ऐसी मधुर पुकारों से।
छम-छम रुन-भुन भङ्कारों से रस की मदिर फुहारों से॥
प्राण चषक में सौरभ भरती अपने तरुण तराने का।
बदले में हम यश करते हैं उसे कोस कलपाने का॥

४७

वह दुत्कार तल्प पर लेटे, खड़ी रहे यह छाया सी।
चरण चापती, मस्तक मलती, आर्द्र मोह की माया सी॥
चपेड़ पड़े प्रश्न पर–क्योंकर आये देव! सवेरे हैं!।
कहती मन में, मुझे न चिंता मैं उनकी वे मेरे हैं" ॥

४८

दुर्व्यसनों की नई भोंक में नये रंग पति में जागे।
धीरे धीरे शुभ दिन, गृह जन, मङ्गल आंख बचा भागे॥
शान्ति, तुष्टि की बात न अब कुछ, समय न उनके आने का॥
पत्नी पर बस भार शेष है रोने और मनाने का॥

४९

प्रतिदिन ताड़ित, दोषित होती, घृणित लांच्छना पाती है।
योग क्षेम हृदय में प्रिय का, द्विगुणित प्रेम सजाती है॥
चरण बाहु भर रो कहती वह–"अपने कुल को निस्तारो!।
समझो, मन समझाओ प्रिय! यूँ सहज न अपने से हारो॥

५०

अमृत पुरुष ! देवानां प्रिय तुम, देव तुल्य यश के भागी ।
अमृत पुत्र ! तव अमृत सत्व में क्यों तम की माया जागी ? ।।
हे ! प्रकाशमय प्रियतम ! जागो मत अकीर्ति यह फैलाओ ।
निज विभूति शाश्वत स्वरूप छवि प्रकृत स्थिति-मति में आओ।।

५१

हित, भविष्य, गति सोचो स्वामी ! मन में क्यों द्विविधा फैली ।
होने दो न असित चिन्तन से पूर्व पुरुष करणी मैली ।।
देव ! तुम्हारी शिक्षा, दीक्षा, उच्च प्रकृति निष्ठा स्पर्धा ।
बच न सकेगी इस प्रकार तो मर्य्यादा नत हो मूर्धा ।।

५२

मैं अनुगत हूँ मुझे न इच्छा अपने कुछ आरामों की ।
खलना नहीं मुझे क्षण भर भी दुख के दुर्वह यामों की ।।
मुझे आपके सुख की चिंता मुझे आप में निष्ठा है ।
आर्य पुत्र ! तुमसे मानव की मिटे न अमर प्रतिष्ठा है ! ।।

५३

क्या से क्या बनते जाते हो बदल रही उज्वल मुद्रा ।
प्रिय मेरे ! तुम ज्योतिर्मय हो जगो-उठो त्यागो निद्रा ।।
सुख, सङ्गीत, सुधा, छवि के स्थल विष कटुता का क्यों भाया,
दयित ! उपेक्षा मुझ हितैषिणी की कर तुमने क्या पाया ?"

५४

रस सिद्धा विराट नारी की अमृत भारती की वीणा ।
नर के उर के कठिन अवर को द्रवित न कर पायी पीड़ा ।।
गिरि के पत्थर भी रहते निज मादक मृदुता से गीले ।।
क्यों न भीगते तव करुणा से मन की मिट्टी के टीले ।।

५५

निज जीवन के तूफानों से बच शत यत्नों से पायी ।
कुपित प्रलय लहरों पर बढ़ बढ़ डग मग होती जो आयी ।।
निज तट की अवलम्ब शिला से स्वर्ण तरी टकरायी है ।
नर को बचा लिया पर नारी अपने नीर समायी है ।।

५६

उन्हें मनाने उन्हें रिझाने पाने उन्हें अधीरा है।
प्रियतम के मन्दिर में क्षण क्षण नाच रही नव मीरा है॥
तन्त्री तन्त्री जिसकी गाती, रोती कसी विपञ्ची है।
अपने गीले पङ्ख झाड़ती प्रिय के नभ में पंछी है॥

५७

ठुमक ठुमक कर थिरक थिरक कर, अचक अचक ही आती है
लचक लचक जाती तन्वी कटि, अलक अलक खुल जाती है
अपलक पलक-झलक-झलकाती-मिसरी सी घुल जाती है
विकल प्रार्थनाएँ आँखों से चिलक पुलक छलकाती है

५८

अब भी उसे स्व श्वास श्वास का शुचि आधार बनाये है।
पति के चिर मङ्गल पथ पर निज आत्म प्रदीप जगाये है॥
मन्त्र मुग्ध मणि पर अहि नर्तित गर्वित छली सपेरा है।
नारी के पवित्र वट तरु पर नर का प्रेत बसेरा है॥

५९

वह कहता सम्बन्ध न कुछ मम, मेरे आगे से जाओ।
चाहे कुछ भी करो, रहो तुम, आश्रय जहाँ कहीं पाओ॥
यह कहती- सम्भव न मृत्यु से, मिट न चिता पर भी पाता॥
किस प्रकार कच्चे धागे सा टूट सकेगा वह नाता॥

६०

अहङ्कार ने अन्धकार में स्वात्मा सबल ढकेली है।
हुए कपाट कक्ष के मीलित, रोती वधू अकेली है॥
बाहर का यह तिमिर हृदय में शशि नक्षत्र सजाये है।
पर चेतन प्रकाश भीतर का अपना आप बुझाये है॥

६१

पति परायणा आई तो थी होकर इस घर की रानी।
पर सबके व्यवहार भाव से दासी होने की ठानी॥
सबके ताने सबकी कटुता हँस हँस करके पी जाती।
कोल्हू के पशु सी मजदूरिन निशि वासर जोती जाती॥

६२

आज निरंकुश जगने उसका मूल्य न कुछ पहिचाना है।
इस महान् के अमृत तत्व को हमने अभी न जाना है॥
पर रुचि, स्वार्थ, कामनाओं पर निज सर्वस्व चढ़ा आती।
पर प्रशस्ति का-करुणा कण कब-किससे जग में है पाती?

६३

नारी के साहस के आगे धैर्य्य तजा मर्दानों ने।
अमृत पिलाया युग मानव को नारी के बलिदानों ने॥
गूँज रही उसकी जय गाथा सब इतिहास पुराणों में।
मुखरित हो उसका स्वरूप शुभ युग के नये तरानों में॥

६४

जितनी निभती और निभाती कटुता बढ़ती जाती है।
कुसुम कोमला इन्दु धवल तनु, घर में भार लखाती है॥
रत्नाकर देने वाली की अखर रही मोटी रोटी।
सावधान! छूना मत उसकी अग्निमयी पावन चोटी॥

६५

अतिस्निग्ध, कोमल अतिमादक, सुन्दर, शुभ, सुखकारी री।
अति सुरभित, अतिसरस, शुचिस्मित, प्रीति रस स्नुत नारी री!
बलिहारी अग जग से न्यारी, निज तम तारण हारी हो!
जय हो पूजित हो, सत्कृत हो, पूरी साध तुम्हारी हो"॥

६६

गति शोध में प्रलयोर्मियों पर शिथिल शिञ्जित पद रुका।
तनु हो रही शतधा - त्रिधारा तैर हारा मन थका॥
मुख इन्दु कुहु से भीत वन की पिकी कुहु कुहु कूजती।
सकरुण प्रणव रव पायलों में मर्म पीड़ा गूँजती॥

६७

नारी तुम्हारे अश्रुओं ने आज नव निर्माण का।
आलोक मानव को दिया है नव युगीय विधान का॥
कटु सत्य से तुमने सँजोये तथ्य उस संसार के।
जिसमें विमर्शित प्रश्न तव उन्मुक्ति के अधिकार के॥

६८

ऐश्वर्य्य का आमूल चूल निचोड़ विग्रह सुप्रभे !
सम्पूर्ण रस माधुर्य्य का तुम सार संग्रह हो शुभे।
सौन्दर्य्य का सङ्गीत का प्रत्यूष तुम आनन्द का।
ज्योतिर्पराग विकीर्ण तव सन्तोष घन अरविन्द का॥

६९

यह युग लिये है हृदय में गान्धी प्रसादित प्रेरणा।
जिसमें उचित उन्मुक्त आस्था, स्वस्थ, सत्ता चेतना।
सम्मान गौरव श्रेय तव युग की प्रथम सद्भावना॥
सम्पन्न हो घर घर सरुचि तव व्यक्ति की उद्भावना॥

७०

हो प्राप्त जीवन को नई गति नव प्रतिष्ठा व्यक्ति को।
युग मुक्ति मुक्ता शुक्ति सी तुम मुक्त करदो शक्ति को॥
इस सृष्टि की सामर्थ्य का भण्डार तुममें है भरा।
वह लुक रहा, ममता धरा के गढ़े में नीचे धरा॥

७१

आह्वान करता आज जग युग का निमन्त्रण मान लो।
श्रद्धावनत मानव हृदय का सहज शुभ सम्मान लो॥
उतरो धरा पर देवि प्रस्तुत समय की गति थाम लो॥
शिर द्वार देहली पर धरे हूँ स्व विनम्र प्रणाम लो॥

७२

नारी नये युग में तुम्हारा भी नया अवतार हो।
शाश्वत स्वरूप स्वदेश का जिससे सजग साकार हो॥
सबको विकास, प्रकाश, नव उल्लास, पथ विन्यास का,
उपलब्ध हो मन को अनिश आवास प्रभु के पास का॥

७३

आधीन, हीन, न दीन, तुम युग मौलि पर आसीन हो।
मानव हृदय की स्वामिनी ! अब व्यर्थ क्षीण मलीन हो ! ॥
हो राष्ट्र के प्रति - पर्व में चिर प्रथम सर्व अपेक्षिता।
अब व्यक्ति और समूह में तुम अल्प भी न उपेक्षिता॥

७४

बध कर सुतनु वल सिंह का तच्चर्म बाँधा अङ्ग में।
उपचार प्रति निज हिंस व्याघ्र किया सुतनु के संग में॥
कर परित्यक्ता उसे, घर में है मनुष्य मसान सा।
कर शक्ति का हिम दाह शिव शव सा लसित श्मशान में॥

७५

नारी पुरुष के अहं पथ में भैरवी रथ पर चढ़ी।
गिरि भङ्ग करती सिन्धु तरती, सतत आगे है वढ़ी॥
रह लाज पट में मूँक कब तक सहन होगा शान्ति से?
युग का नया उत्थान सम्भव है तुम्हारी क्रांति से!

परित्यक्ता

द्वादश सर्ग

१

अश्रु ल, आकुल, सकुचित, व्रीड़ित, निष्प्रभ, मित मीलित दृग।
महा सिन्धु में बिन केवट की नौका सी चिर डग मग ॥
कम्पित, कातर, गति पीवर ज्यों मृगयु भीत घायल मृग।
खड़ी परित्यक्ता चिन्तित मन, अविदित पथ, विस्तृत जग ॥

२

आहें भर - कराहती - आहत, गृह में ग्रहण निशा सी।
प्रलय समुद्र यान की आँधी, तम घन, लुप्त दिशा सी॥
सृष्टि सार, भण्डार प्यार की हिम, हिरण्य मणि काया।
उस महि सी यह, काट कल्प तरु अपहृत जिसकी छाया॥

३

अपनी मूक वेदना पीती, अपनी तृषा तरसती।
अपनी ही श्वासों से जलती अपने आप बरसती॥
अपना तिमिर आप फैला कर, अपनी ज्योति छिटकती।
विवश परित्यक्ता के मिष वह पीडा स्वयं तड़फती॥

४

सब ऋतुओं के फूल फलों की हरी भरी सी डाली।
सब कालों के पेयासव की चिर ताजी भृत प्याली॥
आशा, अभिलाषा, आग्रह, रुचि, निधियों की सुर भारी।
पांसु पङ्क पर लुलती फिरती काम धेनु सी नारी॥

५

शिथिल, नियन्त्रित, रणित गमन में मन्द मन्द जो नूपुर।
सुन पड़ता है द्रवित सिसकता उनमें उत्पीड़ित उर।
घर की शोभा, शक्ति, प्रतिष्ठा फैंकी है यह पथ पर।
भग्न असावधान के कर से शुचि सौभाग्य कलश गिर॥

६

आज नयन के रङ्ग रङ्ग में घुल अनङ्ग रति क्रन्दन—
लखता तनु उर में शिव दृग का मूर्त्त अनल विस्फोटन।
उसकी श्वास श्वास से निकला अति भीषण हालाहल।
नील हुआ आकाश, सिन्धु का चिर श्यामल खारी जल॥

७

रवि के किरण जाल से फैला यह तम तोम निरुज्वल।
बुझती हुई दीप की लौ भी उगल गई है काजल॥
पर्वत के अन्तर से फूटा युग का संचित कलमष।
मानव की कच्ची पृथिवी पर पङ्क बना पावन रस॥

८

मर्म व्यथा का नयन कोर पर अरुण सूत्र विलसित तनु।
जल कर जल तट होने शीतल हाहाकार खड़ा मनु॥
आँसू खींच चली जो पतली गण्डों पर लघु रेखा।
इन्द्र धनुष के सतरङ्गों से चमक उठा विधि लेखा॥

९

पलकों से ढुल चले स्वप्न शुचि मुक्त हुए तोरण पथ।
पग पग पर पिसते चलते हैं मन के मधुर मनोरथ॥
होठों पर सिकुड़ी बैठी है रद का लिये सहारा।
नारी की लज्जा को किसने पण में आज पुकारा!॥

१०

हम जीवन के निकट पहुँच भी खोल न पाये बन्धन।
वह कर चली प्रलय धारा पर अपनी मूर्ति विमर्जन॥
अमृत घूँट पी पी कर नर में जागी ज्योति न नूतन।
वह पीकर जग का हालाहल शिव सी चली सचेतन॥

११

जिसे खोजते चल मन्दिर में जीवन और निधन में।
व्रत समाधि संयम यम करके, शास्त्र कठिन साधन में॥
जिसे खोजते अग्नि होत्र तप तीर्थ योग आश्रम में।
प्राप्त कर चुकी उसे वधू यह सहज यहीं प्रियतम में॥

१२

नारी के दुख का कातर स्वर क्षत पड़ता है नभ पर।
पृथिवी पर बिखरा कवि का रस पाता नूतन कलेवर॥
तुम सी महामहिम नारी का सुनते ही निर्वासन।
मुखर हुआ ऋषि की श्वासों पर ललित कला का यौवन॥

१३

जग में कटुता विधि रचता है निज में करुणा भरने।
नारी दृग में जल भरता जग धुलने और उजलने॥
नव दूर्वा पर दृग से छल छल गिरते दृग कण निर्मल।
रुधिर बिन्दु बन भू पर चलते वीर बहूटी के दल॥

१४

जो देता भीषण दुख, या सुख सुधा सुरा, विष के कण।
जो तुम पर निज चक्षु चढ़ाता भरता या मर्म व्रण॥
प्रेम युक्त करता नीराजन व्यक्त करे या पशुबल।
मंगल मयि! तुम सबका अविकल करतीं सम रह मंगल॥

१५

ये आँसू हैं नहीं तुम्हारे निर्धन जीवन का धन।
पृथिवी पर इनको बिखराती धनिक बने हम चुन चुन॥
क्षार पान करके सागर का घन देते मधु हँस हँस।
संसृति का कल्मष तुम पीकर उगल रही हो नव रस॥

१६

सन्ध्या समय नीड़ को जाते विहग वृन्द प्रमुदित मन।
गृह सुधि जनित वेदना तुमको कर देती है उन्मन॥
जिस घर पर सर्वस्व चढ़ाया वहाँ न अब कुछ तेरा।
रात कटेगी तरु छाया में सरिता तीर सबेरा॥

३७

धन्य धन्य करुणामय मानव! क्या करुणा दिखलाई।
फूलों सी सुकुमार लता के काँटों पर फैलाई॥
तुम विचित्र अद्‌भुत ममता मयि तव गति मति बिन इति अथ।
जकड़ रहा जग तव त्रिवर्ग पद, खोल रही तू युग पथ॥

१८

'जग में सुख-दुख, तुम में है जग, आँसू में तुम उज्वल।
जिसके उर में आँसू है प्रिय, वह जाने छवि निश्छल॥
जानकार में जाग्रत है कवि उसमें सत्य चिरन्तन।
उसी सत्य को बना रहीं तुम अपने करुणा घन बुन॥

१९

बिना सहारे तुम चलती हो बिना गिरे उठती हो।
अग्नि रहित दाहित रहती चिर बिना जिये मिटती हो॥
दो धाराधर सतत बरसते पर तुम तृषित निरन्तर।
शिशिर निशा, तरु छाँह, नदी तट धधक रहा फिर भी उर॥

२०

तव अन्तर में विरह व्यथानल कण कण दग्ध चराचर।
कटुता शैल पुरुष में तुम में कल कूजित रस निर्झर॥
निज में करुणा, करुणा में हित, हित में जीवन की जय।
जय में सुख, सुख में दुख, दुख में खोज रहीं अपना प्रिय॥

२१

आज दिवाली दीप जगे हैं घर के प्रति कौने पर।
कर शृंगार मुदित नर नारी नृत्य गान में तत्पर॥
निज अंचल से मुख ढ़क आकुल मुख तल धरे हथेली।
अन्धकार में बीहड़ पथ पर रोती तुम्हीं अकेली॥

२२

निष्ठुर की नृशंस क्रीड़ा के उपालम्भ की पीड़ा।
अञ्चल में अङ्गार सँजोती जल ढुलकाती व्रीड़ा॥
पथ के बिखरे काँटों को चुन फूलों से दुलराती।
तुम सहेजती घात, मान प्रिय प्रीति स्मृति की थाती॥

२३

छायी दुख की घोर दुपहरी, पड़े विरह का आतप।
क्रूर काल का हल चलता है कृषक तुम्हारा ही तप॥
उर के मानसरोवर से शुचि दृग की गागर भर भर।
सींच रही जीवन खेतों को व्यथा बीज बो बो कर॥

२४

क्या परिणाम, प्रवाह किधर पथ, कब क्रम श्रम का उपशम!।
बहु उतराव, चढ़ाव, लोक छल छद्म न तुमको मालुम॥
जहाँ पतन पर का, स्व प्रगति को पथ देतीं बाधाएं।
तव अनन्त को विलसित करतीं वहीं सान्त सीमाएं॥

२५

छुई मुई सी तुझ कोमल पर निर्दय हाथ उठाता।
विश्व सिन्धु की तुझ लक्ष्मी को पैरों से ठुकराता॥
दोषारोपण - तिरस्कार कर वह चिर तुम्हें रुलाता।
पर समर्थ! तव नभ उसके शिर कल्प कुसुम बरसाता॥

२६

तू पाटल सी स्वर्ग सुधा सी, बेग वती कृष्णा सी।
सबके प्राणों में अन्तर्हित अनिश तीव्र तृष्णा सी॥
तू धरणी पर है धरणी सी तुझसी है यह धरणी।
दोनों चुप चुप सहती रहतीं क्रूर करों की करणी।

२७

शोभित होते हैं संसृति के सब तुमसे सब तुम पर।
इससे तुम अपने ही सम हो सब प्रकार से सुन्दर॥
कहाँ चराचर में तव उपमा, किसमें स्वल्प सदृशता।
तिल भर तुलना में न हो सके अग जग की सुन्दरता॥

२८

तुमही पी सकती यह कटुता, गरल अश्रु घुट घुट कर।
गिरि पाहन भी अपराजित जब रोक न पाते निर्झर॥
स्वर्ग खोजती हो तुम भावुक पङ्क मयी मिट्टी पर।
जब कि स्वर्ग तुम, स्वर्ग तुम्ही में, स्वर्ग तुम्ही पर निर्भर॥

२९

लक्ष्मी दीन, शची दासी है, सावित्री द्युति हीना।
आज धरा पर पड़ी रो रही सरस्वती की वीणा॥
सनी खड़ी है निज शोणित से सकुच मानवी पीड़ा।
रुधिर क्रान्ति को रोक रही है उसकी करुणा व्रीणा।

३०

लोक काग दृग के मानस में चुग जाता मुक्ता सित।
लिप्सा खगी चक्षु से चुनती श्वास श्वास के अक्षत॥
परिधि तोड़ स्वार्थ पशु घुस कर कृषि उजाड़ता सांकुर।
देख आरती में रत, लेता लूट देवता ही घर॥

३१

तुझे अकारण क्रूर कठिन बन, ठेल चुका है बाहर।
सोता वह निश्चिन्त हिंस्र की दंष्ट्रा पर तुझको धर॥
श्रान्त निशा के शत सपनों को नित प्रभात में खोना।
अरु तरु के नभ के नीचे पड़ शेष रहा है रोना।

३२

टूट चुकी प्राणों की वीणा, भग्न तरङ्गायित मन।
फूट चुका भीगी पलकों में गिर पाताल स त्रिभुवन॥
बिखरा स्नेह भग्न मृण्मय रे! कब तक रह वर्त्ती द्युत।
सम्हल, न कर देना तम में चल, मणिमय प्रतिमा खण्डित॥

३३

कोमल माखन के तन मन की, अङ्गारों से सज कर।
कागद की नौका से करती पार प्रलय का सागर॥
तुम्हें लख स्मृत होता निशि का लिपट उषा से रोना।
ओस अश्रु मुक्ताहल चुगते उदय हंस का होना॥

३४

झूम रहे हैं आज न तेरी ड्योढ़ी पर अहिरावत।
दीख न पड़ते कुञ्ज द्वार के प्रहरी पिक पारावत॥
आती शिखी नटी न, उड़े सब रस गायक सारी शुक।
अब दुलार पाने न घेरते चकित थकित मृग शावक!

३५

आदि महा कवि! एक बार यदि पुनि तुम तक आपाएं—
निरपराध के कातर आँसू छन्दों में ढ़ल जाएं।
इससा निकट प्रकट तीर्थ तज जाता व्यर्थ त्रिवेणी।
मङ्गल दृग की पुण्य त्रिधारा क्षण काटे भव बेड़ी॥

३६

छोड़ चली जो सुख वैभव निज पति हित में सतवन्ती।
निर्जन वन में खड़ी विलखती नल त्यक्ता दमयन्ती॥
जन जन की ठोकर खाने अब युग युग से अचला सी।
गौत्तम वधू खड़ी यह पथ पर मूर्छित एक शिला सी॥

३७

आश्रय दो मेनके! धरा पर शकुन्तला क्रन्दित चिर।
प्रायश्चित्त, सुधार स्व का कर, पाये सभरत भू पर॥
आज न कुछ अपवाद, न जनमत, किया व्यक्ति ने निष्कृत।
तू सीता, पर राम न जो इस करणी पर हो दुःखित॥

३८

केवल तुम न दुखी हो जग में सब के दुख सांघातिक।
प्रकट कहीं अप्रकट बहता दुख कुटिया से महलों तक॥
संस्कृति शिर कलङ्क सा अङ्कित क र कठिन प्रति लेखा।
हिंस्र कृत्य की रद नोकों पर तुम लोहू की रेखा॥

३९

पिछले युग का उज्वल आँसू ताजमहल के जो छल।
नारी की विराट पूजा का अविनश्वर मुक्ताहल॥
उसके पहले का धरती पर महादर्श रामेश्वर।
जहाँ सिन्धु पर वधू प्रेम वश तैर रहे हैं पत्थर॥

४०

फिरे निपट असहाय, रही जो सबकी सुदृढ़ सहारा।
एक भटकती लहर बनी जो कल तक रही किनारा॥
डूब रही है स्वयं खिवैया, हुआ लक्ष में दिग्भय।
माँग रही रुक रुक कर धारा आज नाव का आश्रय॥

४१

अब भी निष्ठुर के प्रति मन में मधुर कल्पना रहती।
यह अतृप्ति है या निष्ठा जो आशा त्याग न करती॥
असन्तोष कुछ गिला न शङ्का तुझमें घृणा न जागी।
तुझमें तप करता रहता है कौन अमृत अनुरागी॥

४२

कौन चितेरा जिसने आँका तव व्यक्तित्व महोज्वल।
किसके ब्रह्मानन्द सरसि का तुम परिणत आत्मोत्पल॥
सज्जन और असज्जन सबके चौराहे की दीपक।
रुकी हुई हैं दुर्घटनाएँ तुम जलती हो जब तक॥

४३

झाँक रहे झुक नयन नीड़ से नीरव भावों के खग।
पर्व पड़ रहा - हिलमिल आते दल के दल दुख अध्वग॥
स्वप्नों के शरदाभ्र सुधा मय प्राण सिक्त कर जाते।
श्वासों के तुषार अञ्चल में चिन्गारी सुलगाते॥

४४

इसे भुलाकर, इसे सता कर अग जगने क्या पाया।
मरण, पतन, असफलता, अपयश, निरय आसुरी माया॥
जीवन मरु में सुतनु एक ही मीठे जल की पनघट।
इसमें गरल मिला तो जग का पग पग होगा मरघट॥

४५

चिन्ता की—किसने सोचा यह—तुमसी नव सुकुमारी।
हिंस्र कण्टकित पथ पर फिरती छवि यौवन की भारी॥
मख से चितारोह तक चलने के प्रण वाली साथी।
भार बनी, शुक चुगा न पाया-झूम रहे घर हाथी।

४६

पिकने प्रिय का मधु पी गाया मिष्ट हुए तरु के फल।
हालाहल पीकर यह रोयी बरस पड़े मुक्ताहल॥
होठों की हिम छाया छूकर लाल हुए सब पाटल।
आश्चर्य क्यों जन मन का तम सका न तनु मधु से घुल॥

४७

पद्म सरसि! चञ्चल सरिताओ! हे! निनाद मय झरना।
तुम कोलाहल मय क्या समझो मूक सुतनु की करुणा॥
दावानल! बड़वानल, पावक! रवि आतप! ज्वालाचल।
नारी हृदयानल की समता कर न सको तुम शीतल॥

४८

प्रलय काल के प्रबल प्रभञ्जन व्यर्थ तुम्हारी रचना।
उर में शत तूफान छिपाये प्रकट हुई जब ललना॥
सुलभ न समता-जिस प्रति होती बिगड़ बिगड़ नव रचना।
विधि के शशि! तुम कर न सकोगे कवि शशि तनु से तुलना॥

४९

बिखरा बिखरा ही फिरता था निराधार उत्पीड़न।
करुणा कर विधि ने दे डाला आज उसे कोमल तन।
तुमसे रोना सीख रहे हैं उडु चकोर पिक चातक।
प्रति प्रयास सृजनात्मक हैं तव सब विचार रचनात्मक॥

५०

लसित रहीं जिसके उर पर बन कल्प कुसुम की माला।
बाला! तुम जिसके अधरों की चिर अंगूरी हाला॥
पद्म पाणि में अमृत कलश सा जिसने तुम्हें सम्हाला।
पाला बना कुमुद बन का वह, तुम न बनीं विष प्याला॥

५१

करुणामय प्रभु की करुणा की तुम अनुभूति अनश्वर।
उनकी प्रेम तरल आँखों की अश्रु मूर्ति चेतन चिर॥
रस मय ललित काव्य चरणों से चलतीं तुम युग युग तक।
तव अक्षय यश मय जीवन में काल न होता बाधक॥

५२

गिरि वधुओं के उर द्राव से सप्तोदधि हैं भू पर।
तुम्हें बनाने है गी! कितने और नये रत्नाकर॥
लाज धैर्य्य की सुदृढ़ परिधि में रुद्ध हृदय की स्रोती।
अपितु नियति की तिल सी रचना पल में बोर डुबोती॥

५३

बिना मँजा स्व अहं का मैला ताम्र कलश नर लाया।
पय पीयूष क्षीरनिधि का तब उसमें भरा, जमाया॥
नील गरल वह बना, पिया कुछ ठोकर से लुढ़काया।
मूर्च्छित होते अविवेकी ने तुम पर दोष लगाया॥

५४

देवि! अहर्निशि अलख जगाए कातर अश्रु सजाए।
किसे सतृष्ण निहार रही हो अञ्चल में दुलराए॥
यह समाज हिंसक पशु सा उठ दंष्ट्रा दिखा रहा है।
शिवि सा तव उदार निज आमिष कण कण चुगा रहा है॥

५५

श्वास श्वास पर रिम झिम करता पथ पर तुमुल छमाछम।
ज्योतिर्मय का उदय सँजोता ओढ़ रेशमी घन तम॥
मरु के कठिन सतृष्ण लोक में ले अनन्त मधु धारा।
शशि के किरण यान से उतरा निर्झर हृदय तुम्हारा॥

५६

लोंटा दिये गीत लहरों को, किरणों को सम्मोहन।
मधु भाषी पिक उड़े, गिरा के सूखे स्वप्नों के घन॥
च्यवितामृत मणिघट नयनों का रंग पड़े सब फीके।
अब जी के जंजाल बने सब जीवन जग के नीके॥

५७

तुम निर्मल उजली, रस बदली, रसिक नयन की पुतली।
गोधूली की मन्द्र मुखर सी मन मोहन की मुरली॥
निज दशेन्द्रियों, असु, मन तन में तव बहु अमृत पिया है।
बदले में मित खारी पानी भर संताप दिया है॥

५८

हम चोंराहे के पत्थर पर सीखे दूध चढ़ाना।
घर के प्रकट देवता तनु पर अंगारे सुलगाना॥
इसके मन, व्यक्तित्व, सत्य, से ऊँचा, बड़ा न भारी।
सबसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, सुन्दर है सार सकल की नारी॥

५९

जहाँ निरन्तर झंकृत रहती मृदु पायल की छमछम।
वहाँ फूँस के नीड़ बना कर करते बीट विहङ्गम॥
तब अभाव में स्वर्ग नरक सा घर धूम्रासित मरघट।
तुम्हें त्याग उसमें रह सकता मनुज प्रेत ही दुर्भट॥

६०

निश्श्रेयस्, अभ्युदय उभय की भृत माणिक मञ्जूषा।
नर भाग्योदित अरुण राजिता जय धरती की ऊषा॥
अगरु धूम सा घुमड़ रहा तव चिर चेतन अविनाशी।
तुम में झाँक रहा है कोई द्रुत जय का विश्वासी॥

६१

ध्रुव तारा सा अङ्कस्थित तारापति सा दृग तारा।
कुल नभ का मङ्गल तारा तारन हारा-सुत प्यारा॥
अरु सुख की यश की धारा सी चित्रा उडु सी सश्रम।
माँ के सङ्ग चले आत्मा सी दुहिता-छवि में निरुपम॥

६२

घोर घाम में इस वर्षा में शिशिर शीत में जननी।
तुम निरुपाय कहाँ जावोगी ज्वालाओं में नलिनी॥
रोता है भूखा वह नव शिशु सूख चुका तेरा पय।
आघातों से फूट रहा है धीर हृदय का मृण्मय॥

६३

दो क्षण का विश्राम न भोजन कब से शुभे! न सोयी।
रात रात दिन दिन भर भूखे शिशुओं के सँग रोयी।
मसृण गदेलों पर चल कर जो थक होते स्वेदित पद।
घायल, व्यथित, रुधिर स्रुत हैं वे कण्टक झाड़ी से छिद॥

६४

कुछ न किसी से कहती, सुनती, अपनी धुन में रहती।
अपने व्रण की कोर कसक तुम मौन हृदय में सहती॥
निज निष्ठुर पति की मित निन्दा अधिक दुखित है करती।
सब दायित्व, दोष निज पर ले उसको बुरा न कहती॥

६५

जो सुकुमार तुम्हारी काया फूलों पर अकुलाती।
हिम आतप में, शूल शिला पर लुण्ठित, विवश सुखाती॥
जो तनु निज छाया, पहिचल से शरमाती, सकुचाती।
जन जघन्य घृणा से दुःखित केवल नयन झुकाती॥

६६

दो शिशुओं को पार्श्वस्थित कर विपदाओं की मारी।
तरु छाया में विकल पड़ी है व्यथित गर्भिणी नारी॥
प्रसव काल की कठिन कल्पना, दुःखों के शत सङ्कर।
चिलक रहे ऊर्मिल चिन्ता में नौका के क्षत लङ्गर॥

६७

शक्ति मती! हे! सती! शोभने! तुम भव से उखतायी।
भव निमित्त युग दक्ष यज्ञ में पावन देह जलायी॥
नव जीवन दे तपीं उसी के हेतु उसी को पाया।
धन्य तुम्हारा प्रेम न जिस पर द्वेष घृणा की छाया॥

६८

सद्य प्रसूता मजदूरी कर ला पायी जो दाने।
मानव का निर्माण किया है आज उसी से माँ ने॥
विधि की कला, सुकवि की प्रतिभा धन्य जिसे दुलराके।
क्यों न धन्य होले मेरा कवि उसको शीर्ष झुका के॥

६९

तिरस्कार तव करने वाले खल विरक्ति के ढोंगी।
बिना तुम्हारे पार लगेगी कभी न जन की डोंगी॥
पुरुष जीत सकता है तुमको अपना अहं मिटा के।
नारी की स्वरूप सत्ता से निज अस्तित्व सटा के॥

७०

श्वास पवन पर नीर भरे नव करुणा घन सरसाओ।
देवि! दिगम्बर इस अम्बर को नीलाम्बर पहिनाओ॥
निज नवनीत स्निग्ध नयन से ज्योतिर्मय दर्शित हो।
जिससे नैतिक नीति-मंगला शुचिस्पष्ट विकसित हो॥

७१

पड़ जिसके पद पर श्वेतोत्पल यावक सा रँग जाता।
जिसकी पद्म पाणि छाया पर इन्द्र धनुष बन जाता॥
निजान्नपूर्णा, जिसके दर पर हैं भगवान् भिखारी।
जल भरती, वर्त्तन मलती है, फिर भी क्षुदित विचारी॥

७२

नवोत्साह, नव रस, नव द्युति है, नव जीवन, नव यौवन।
नया रूप, नव मन, नव तन है, नये भाव, नव विकचन॥
नारी सम्भव गुण विभूति सब भीतर, बाहर पावन।
इसमें त्याग उपेक्षा का है कहीं न कोई कारण॥

७३

कोमल, करुणोन्मुख नव शिशु को कैसे क्या दुलराए।
भोली मति, विस्मित दुहिता को क्या कह कर समझाए॥
"गेह चलो! घर किधर हमारा? पिता कहाँ बोलो माँ!
मूँदते नयन मौन रह जाती ज्यों पत्थर की प्रतिमा॥

७४

शुभ्र चाँदिनी में तुम चलतीं उसमें ही घुल मिल कर।
किन्तु प्रकट कर देते जाना बज बज करके नूपुर॥
भूमि समाश्रय सीता सा, शकुन्तला सा जीने का।
शिव संकल्प जागता तुम में लोक गरल पीने का!॥

७५

एक एक पग जब चलतीं रुक एक एक डग धरती।
सहने में असमर्थ काँपती शेष फणों पर धरती॥
कर अतीत की याद हृदय के दुखने लगते हैं व्रण।
और कड़कता निमक कनी सा गिर उसमें संसृति कण॥

७६

लोक लक्ष्मी दीन हीन हो फिरती है क्षत विक्षत।
निकट देख पहचान न पाते सहज सुहृद चिर परिचित॥
कोई कभी पूछने लगता सकरुण करुण कथा चिर।
लज्जारुण नख गाढ़ धरा पर तुम रहतीं आहें भर॥

७७

वह कपोल की पाटलता शुचि, अधरों की अरुणाई।
नयनों का सरसिज विकास नव, मस्तक की सुघराई॥
भ्रू की चञ्चलता, पिक सा स्वर, अलस भरी अँगड़ाई।
अरी सुन्दरी! कहाँ गई वह सुरा भरी तरुणाई॥

७८

शिर पीड़ा होने पर पति के तज देती जो संज्ञा।
सदा प्रतीक्षित रहती सादर पाने उनकी आज्ञा॥
रुग्णा बूंद नीर को तरसे, बात न पूछे कोई।
भाग्य कोस, बाहों में शिशु भर, सिसक सिसक कर रोई॥

७९

जन जन निरत मनाता होली, घर घर मने दिवाली।
इसके यहाँ वर्ष भर घिरतीं घोर घटाएं काली॥
जब मधुमास यहाँ आता है पीत विभा छिटकाता।
काम कल्प तरु तव इसका मन पतझड़ पर्व मनाता॥

८०

हे ! त्रिकाल दर्शी समाज के शुद्ध बुद्ध जन जागो।
भीत रूढ़ियों से, रूढ़ों से मत यथार्थ से भागो॥
आप्त पूत हे ! तृप्त दीप्त ऋषि ! नव युग नई परिस्थिति।
क्यों न बने फिर नव विधान जब नव विचार नव गति मति॥

८१

शिक्षा योग्य हुए शिशु इस बिन जन्म व्यर्थ हो जाए।
उच्च वंश के होनहार ये भीख माँग कर खाएं॥
पुर में मेला लगता पितु सह सब शिशु सज धज जाते।
मातृ अङ्क में विवश छिपे ये रोते उसे रुलाते॥

८२

इसका जो कुछ धर्म ध्येय ये माने चहे न माने।
विवश न कर सकता करने को कोई किसी बहाने॥
नर नैतिक चरित्र से गिरकर किस मुख से कह सकता।
सामाजिक ढ़कोसला आग्रह मूल्य न अब कुछ रखता॥

८३

मदिरा पय के मत्त जहाँ मित जल को दीन कलपते।
वहाँ लख पड़े छवि-यौवन यदि श्वान, काग से घिरते॥
जब विसूचिका से मृत सुत के दुख में थी वह व्यथिता।
उसे व उसकी सुताहरण की सोच रही थी जनता॥

८४

भिषग् एक पुड़िया मिट्टी दे माँगे उसकापन, तन।
दाता ने रोटी का टुकड़ा मात्र किया मूल्याङ्कन॥
रस्ता चलते का चलता है उसे लूटने को मन।
नगर - नागरिक इनसे अच्छा हिंस्र जन्तुओं का वन॥

८५

अपना दुहिता का, नव शिशु का, भार लिये शशि वदना।
बचा रही निज शील-प्रतिष्ठा, सह कर भी दुख इतना॥
कपिला सी ज्यों त्यों रह पाती आतङ्कित उत्पीड़ित।
जन बहुमत, समाज संस्कृति का भाव स्तर अव्यवहृत॥

८६

स्वयं शुद्ध-स्वच्छ बन करके दाल न निज गलने पर।
साध्वी को पतिता कह लेना बहुत सरल, प्रचलित चिर॥
ईश्वर है—यदि कहीं—न्याय है, शास्त्र न अगर मृषा है।
नारी खल चर्चा निन्दा की केवल नर्क दिशा है॥

८७

सिंहों के जङ्गल में जाना सहज और सुविधा मय।
युवती के घर बाहर जाने में सबको संशय भय?
कारण है 'कु प्रवृत्ति' उपेक्षा, दुष्ट हमारी शिक्षा।
नारी के सम्मान, भाव की होनी उचित सुरक्षा॥

८८

भाव ताव निज मूल्य स्थिर कर मिष विवाह नर बिकता।
कभी स्वयं कुछ देकर वह निज कौड़ी सीधी करता॥
कन्या पक्षी की लघुता का, यौतुक, क्रय, विक्रय का।
हो दुर्भाव नष्ट, प्रचलित हो प्रीति परक विनिमय का॥

८९

'सद्' का परित्याग कर किस ने सुख पाया जीवन में।
'असद्' ग्रहण कर शान्त रह सका कहीं न कोई मन में।
देवि! परित्यक्ते! तुम 'सद्' हो दैवी सम्पद् मयि चिर।
जन को प्राप्त गरुण गति होती चरण रेणु तब शिर धर॥

९०

तनया परिणय योग्य हुई, अब घर वर उचित अपेक्षित।
उच्च वंश के बात न करते, जाल बिछाते कुत्सित॥
जीर्ण वृद्ध धन से, छल, बल, से व्याह ले गया दुहिता।
वह अयुक्त-पतिका चिर रोती जग ताली दे हँसता॥

९१

नारी! उठो! नयी गति, मति से, क्षेम प्रेम से उर भर।
इस युग के अनुरूप रूप में उदित करो स्व सुधाकर॥
मानवता का हृदय तुम्हारे नवोत्सर्ग का प्यासा।
कुछ अभिनव चरित्र चिन्तामणि माँग रही है भाषा॥

अयुक्तपतिका

त्रयोदश सर्ग

१

शुभ नव यौवन शृङ्गार युक्त,
पहली सुहाग निशि में विषण्ण।
जय तनु अयुक्तपतिका निदान,
अश्रुल सम्हालती हृदय क्षुण्ण॥

२

बढ़ रही प्रलय की ओर भीत,
आमरण पराभव से प्रणीत।
झन झना रही प्रति श्वास श्वास,
हो गई पाप की अमर जीत।

३

भर रोम रोम में दुख अपार,
पग पग पर रुक रुक हार हार।
मन की बड़वा पर बूँद बूँद,
ढुलती रहती दृग से तुषार॥

४

अग जग डग मग, डगमग सहेज,
भेदन कर सीमा दुर्निवार।
तरि जीर्ण पुरातन पर सवार,
चिन्तित, हो कैसे सिन्धु पार॥

५

संस्मित से ढ़क कर कसक दीन,
अपनी अतृप्ति में विवश लीन।
अवगुण्ठन से अवरुद्ध झाँक,
लखती सम्मुख का भव मलीन॥

६

अन्तर हृदका का उच्चार्त्तनाद,
उत्पीड़ित प्राणों का विषाद।
युग शान्ति भंग कर सङ्घ बद्ध,
छिड़ गया क्रान्ति मय नव विवाद॥

७

कातर, कम्पित, करुणार्द्र, दृष्टि,
करती अत्युल्वण गरल वृष्टि।
जल रहा सृष्टि का कटु कठोर,
गल रही एक सुकुमार सृष्टि॥

८

अनुराग क्षेत्री अति विराग,
इस ओर नीर उस ओर आग।
यह प्रणय- कि विषमय उग्र नाग,
विश्व श्मशान चिति पर सुहाग ॥

९

किस ओर तीर, है कहाँ अन्त,
किसके कगार सीमा अनन्त।
चुपचाप लिये परिणति अनन्त,
पतझड़ पर फूटा मधु वसन्त ॥

१०

गिर गया पङ्क पर खण्ड खण्ड,
स्वर्गङ्गा का सरसिज अनूप।
अपनी समेट शुचि छांह, धूप,
ढुल गया जरा पर अमृत रूप ॥

११

स्वप्नों के साधों के विहान,
मधुर स्मृतियों के मदिर गान।
रह गये निरुत्सव मणि वितान,
सब व्यर्थ ग्रहण, निष्फल प्रदान ॥

१२

पीवर - पिंजर - पञ्जर विमुक्त,
फँस गया वधू का विवश कीर।
घुट रहा प्राण, रुंधित समीर,
बह रहा रुधिर मर्मान्त चीर ॥

१३

अभिनव प्रयाण, शुचि वरण पर्व,
नर का देवों का सन्निधान।
जीवित जन चिता निदाघ तप्त,
धूम्रायित प्रेतों का श्मशान ॥

१४

शत अलङ्कार-तन पर लपेट,
वह जरा जीर्ण आवृत-अपूत।
बढ़ता समाधि पर सबल खींच,
यम पाश बाँध द्रुत काल दूत॥

१५

चीत्कार चेतना का अमन्द,
हो गई कल्पना छार छार।
खण्डित दुलार, जर्जरित भाव,
मन तड़फ तड़फ उठता पुकार॥

१६

वह नृत्य, गीत, नौबत, निनाद,
कर चले रुदन का व्यंग गान।
अति धूम धाम से पूर्ण आज,
तिल तिल मिटने का नव विधान॥

१७

वह वह्नि कुण्ड आहूति होम,
मख अग्नि शिखा का द्रुत विलास।
कर रहा दग्ध सत्वर त्रिकाल,
धूम्रायित-जीवन का प्रकाश॥

१८

चल पड़ी अन्त के साथ आदि,
बस चली शून्य निर्जन समाधि।
रोने गाने को एक जीव,
ले चला वृद्ध ज्यों आधि-व्याधि॥

१९

लावण्य रूप का उग्र शाप,
यौवन विष ज्वाला चूम चूम।
माँ के गोपुर पर स्रवित घूम,
कातर श्वासों का द्रवित धूम॥

२०

रह गई वधू की चकित लाज,
फागोपहास मनु स्वाँग - कन्त।
ले चला शिशिर शिर पर लपेट,
नारी नन्दन का रुचि वसन्त॥

२१

कुस्वार्थ घटावृत आत्म सूर्य्य,
वज रहा निरंकुश दर्प तूर्य्य।
नवनीत रसा पर कुलिश शौर्य्य,
यह किसका किस पर दाय पूर्य्य॥

२२

भर चली माँग मिष रुधिर राग,
मद-मदन दहन सुत्रिनयन आग।
उड़ गया रङ्ग-किंशुक पराग,
फुङ्कार रहा सब ओर नाग॥

२३

मङ्गल निधियों की राशि-राशि,
धन सार सुरभिमय अङ्कवार।
आत्मा की शीतल तुष्टि-पुष्टि,
पिच रही असहन यह शैल भार॥

२४

भारती विकल खो निखिल वर्ण,
अन्तर आमुख, मुख है विवर्ण।
बह गये गीत- रस- ध्वनि-प्रबन्ध,
झड़ भाव विभव के पर्ण पर्ण॥

२५

भुवि की विभूति अस्तित्व हीन,
कम्पित हाथों में बद्ध दीन।
वलि, अजा, यथा लख वध्य मञ्च,
थर थर कम्पित-तन हर्ष हीन॥

२६

रक्ताम्बर में लिपटी अचेत·
जीवित शव सी करती विलाप।
ले चला बाँध निज नाग पाश,
वह हाँप हाँप कुछ काँप काँप॥

२७

ओ ! माँ क्या तेरा यह सनेह?
क्या पिता यही कर्त्तव्य दिव्य?
यह ही मङ्गल क्या सरल सत्य,
हे ! शुभ चिंतक गण धन्य धन्य॥

२८

निज तथ्य, सत्य के विकृत व्यङ्ग,
सम्प्रति यथार्थ के असद् स्वप्न।
तुम आज भग्न, प्रत्यक्ष नग्न,
हे ! मरण मार्ग के मूर्त्त विघ्न॥

२९

आशा का मन्दिर छिन्न- भिन्न,
सब असम्पन्न त्यौहार वार।
बुझ चला प्रहर का रत्न दीप,
पीकर इन श्वाँसों का तुषार॥

३०

जग उठो प्रकृति के मूर्तिकार,
गा लो कुछ दो क्षण गीतकार।
गुनगुना उठो कवि एक वार,
नारी के मन का शेष सार॥

३१

फय फेन शुभ्र मृदु सुमन तल्प,
किसलय कृत तोरण मुकुल न्यास।
करती विकीर्ण निज सुरभि सोम,
घुट रहा वधू का प्रति प्रयास।

३२

यह राज्य भवन ऐश्वर्य्य दिव्य,
अत्याचारों का केलि मञ्च।
क्या दे सकता मधु एक घूँट,
क्या कर सकता यह तृत रञ्च।

३३

यह पाटल रस, यह इत्र गन्ध,
दुर्गन्ध उठा है मन कराह।
वासना पिशाची ने न एक-
छोड़ी बचने की इधर राह।

३४

अन्तःपुर का नूपुर निनाद,
कर रहा वमन क्षण क्षण विषाद।
अति क्रूर कर्म की यह सजीव,
बन चली विजन में अमिट याद!

३५

भय ग्लानि, ग्रार्ति, विक्षोभ, क्रान्ति,
छल, मौन, निराशा अश्रुपात।
उर दाह, आह, शङ्का, विरक्ति,
कैसी यह पहली मिलन रात?

३६

सखियों के शत शत मिलन वृत्त,
बहिनों का सुखमय शुभ गृहस्थ।
कितनी परिचित जोड़ी प्रसन्न,
कर याद न रहता हृदय स्वस्थ।

३७

वह मृगयु गर्व युत वक्र व्यग्र,
आया झुक जर्जर गात बृद्ध।
अति सितश्मश्रु, क्षत दन्त, क्षाम,
वह धन वैभव का तरुण सिद्ध।

३८

करना चाहा अभिनय अपूर्व,
होना चाहा वह भूत पूर्व।
सूखे अधरों पर रुधिर हास,
है प्रलय प्रेत का हिंस्र रास।

३९

मुख पर अवगुण्ठन, मुक्त केश,
बैठी स्वेदित अवनत ललाट।
अवलोक रही अपलक अपाङ्ग,
जीवन का बिखरा ठाट बाट।

४०

सुन पड़ा प्रिये! सहसा समीप,
तिलमिला उठी, उठ-सकुच चौंक।
तूफान लहर पर नाव तुल्य,
गिरती उतराती नयन नोंक।

४१

टूटे तन्त्री के तार तार,
हो गये स्वरों के पोत मग्न।
जग के पाहन पर खण्ड खण्ड
निर्माण त्रस्त, निर्वाण भग्न।

४२

उतरा कुआरपन, त्रसित गेह,
री री पूरी पिट गई लीक।
पुर गया षोडषी का सुहाग,
नर पूज्य पितामह का प्रतीक।

४३

प्रहरी समाधि का कर नियुक्त,
निश्चिन्त - शान्त होगा प्रयाण।
रोकर गाकर प्रति वर्ष - माह,
यह कर ही देगी पिण्ड दान।

४४

पीयूष तरल, सुर धेनु क्षीर,
क्षत घट में ढ़ाला नयन मूँद ;
हो रहा स्रवित स्वर्गीय शीधु,
पङ्किल पृथ्वी पर बूँद बूँद।

४५

ओ नीरव अम्बर बोल बोल,
अपना विद्युत विध्वंश खोल।
तनु उर पर बजता रह न और,
मानव के मद का विरस ढ़ोल।

४६

वृश्चिक के दंशन लक्ष लक्ष,
दे रहा वेदना शयन कक्ष।
जीवन का रुंधित प्रति विकास,
फँस गया हेम पक्षी अपक्ष।

४७

अपने विराट को बोर बोर,
भर गई नयन की कोर कोर।
मिल सका न नारी को परन्तु,
अपने पन का कुछ ओर छोर।

४८

निर्बल, कम्पित, रस हीन दीन,
स्वालिङ्गन को दो प्रकट बाहु।
वह सिकुड़ गई यह क्या अनिष्ट ?
शशि भीत हुई लख निकट राहु।

४९

उसका सब कुछ क्षण में व्यतीत,
वह खोज थकी स्वर्णिम अतीत।
आरम्भ मध्य-कब क्या समाप्ति ?
हो सका न तनु को मित प्रतीत॥

५०

उसके यौवन का किधर मोल,
उसकी छवि पाया कौन तोल।
रवि-सशि-उडु में चिर आर पार—
नारी जीवन की व्याप्त पोल॥

५१

नारी नर की आलोक राशि,
नारी नर की चिति का प्रसार।
दोनों का न्यायोचित समत्व—
उन्मीलित करता स्वर्ग द्वार॥

५२

उज्वल युग का आरोह शृंग,
मत भग्न करो-सम्हलो समाज !
अन्याय, पक्ष - वैषम्य त्याग,
समता से समुचित करो राज॥

५३

स्वामित त्रुटियों का मुझे खेद,
कल्याण मूर्ति, जय कीर्तिधाम।
हे ! परम - भक्ति प्रभु सन्निधान,
नारी ! तुमको शत शत प्रणाम॥

५४

चुग चुग कर तेरा रत्न हास,
पोषित होता नर प्यार हंस।
पल गया कपट से, खेद देवि !
पिक नीड़ मध्य वायस नृशंस॥

५५

गम्भीर सिंधु, सह विपुल भार,
क्षत नाव, दिशा भ्रम, द्रुत बयार।
चप्पू हत् दुर्बल कर्णधार,
नव तरुण चढ़ी बाँकी सवार॥

५६

जब खोल कभी गृह का गवाक्ष,
विस्तृत पथ करती वधू लक्ष।
मन की अतृप्ति उठती कराह,
नव तरुण युग्म को लख समक्ष ॥

५७

घर के पड़ोस में नव प्रविष्ट,
दम्पति का मुखरित कलित हास।
भर रहे वहाँ दो हृदय स्वर्ग,
कर रहे प्राण दो ललित लास ॥

५८

घर में देवर की नव कलत्र,
कितनी प्रफुल्ल, कितनी प्रसन्न।
माँ के घर भाभी तुष्ट-पुष्ट,
यह नव परिणीता छिन्न भिन्न ॥

५९

वे चलती हैं निर्द्वन्द चाल,
निर्भय उनका आलाप लाप।
इसकी गति पर प्रतिबन्ध-दृष्टि,
संदेह सृष्टि करता कलाप ॥

६०

घर के वाहर के गीत वाद्य,
पथ से वर यात्रा का निकास।
तरुणी सहचरियों का विनोद,
उसके पन का कटु दुरुपहास ॥

६१

पर किसको चिन्ता· ध्यान अल्प,
स्वार्थान्ध हृदय में कब विवेक।
स्वार्थी समझाता धर्म ग्रन्थ,
नारी सतीत्व गाथा अनेक ॥

६२

तनु मर्य्यादित, संयत ससीम,
सिकुड़ी सकुची, नैष्ठिक असीम।
श्रृंखला बद्ध भी व्यक्त-मुक्त,
वह निर्बल, उसका सत्य भीम॥

६३

है भूल चली प्राकृत प्रकार,
तम, नष्ट, निबलता कटु विकार।
कामना वासना से निवृत्त,
लखती लीला मय का प्रसार॥

६४

उस आत्म लीन का देख ह्रास,
तनु के उदार का देख लास।
असमर्थ वृद्ध के तन्त्र क्षीण,
शङ्का भ्रम की लेते उसांस।

६५

करता कृत्रिम, पौरुष, प्रणोद,
करता युवकों से शत विनोद।
अपनी दुर्बलता का प्रतोष,
हँसता कर कुत्सित धृष्ट मोद।

६६

नारी! अमृतार्णव की हिलोर,
थामे संसृति का सरस छोर।
धोले अपने उत्ताप ताप—
मेरे कवि तू हो ले विभोर।

६७

नारी कब किसके दूर पास,
पतनोन्नति का उसमें न हेतु।
वह तो संस्कार निसर्ग निष्ठ,
भावोदधि पर संयमन सेतु॥

६८

वह वीतराग, वह मूर्त त्याग,
अनुराग मात्र उसका सुहाग।
उसकी आँखों का अश्रु अश्रु,
आत्मेन्दीवर का द्युति पराग ।।

६९

पा सकते जिसको नर न देव,
वह खोल खड़ा निज बाहु पाश।
चिर स्वप्नों का नयनाभिराम,
कर रहा नयन में रस विलास ।।

७०

गृह युवक सुतों का भी प्रवेश,
आँखों में खलता है विशेष।
माँ की पावनता भी उलीच,
पति लगा देखने पङ्क शेष।

७१

विश्राम न तनु का तनिक शेष,
पाथेय व्यथा का ले अशेष।
निज के करुणा मय के समीप,
वह रही छलकती निर्निमेष,

७२

जो पीने किञ्चित क्षार नीर,
आई निज तट पर चल विभोर।
वह भी समूल्य फिर क्यों अहेतु,
दी भरी भँवर में नाव बोर ?

७३

मुक्ताओं से दृग तुला मध्य,
नारी ने तुमको लिया तोल।
तुम धूलि कणों को ही समेट,
आँको कुछ उसका भाव मोल ।।

७४

नव परिणीता दुहिता हटात्,
सौतेली अति प्रिय तत्समान–
के विधवा होने का उदन्त,
तनु सह न सकी अति व्यथित प्राण ।।

७५

करतार्पित तव महिमाब्धि तीर,
यह लघु पूजा का पांशु दीप ।
ज्योतिर्मयि, करुणामयि, उदार,
हों परुप पुरुष के क्षत प्रतीप ।।

विधवा

चतुर्दश सर्ग

१

नीलम यमुना का सैकत तट, ज्वलित चिता का आवृत धूम ।
किसी तरुण की प्राण ज्योति ले रहा स्वर्ग तोरण पथ चूम ।।
नर नारी से घिरी नव वधू - व्यथा वेग में आर्त्त अचेत ।
त्याग रही ज्वाला पर शिथिलित मन के शुभ सुहाग संकेत ।

२

अन्तर्शय्या पर अन्तःपुर का दाहित अपूर्व अभिराम,
अङ्गारों की हेम हाट पर, बढ़ा नीर मुक्ता के दाम ॥
मधुर अङ्गना के आँगन का काम कल्प तरु अन्तर्द्धान ।
रे ! चुटकी भर राख बन रहा रत्न भरा सोने का यान ॥

३

जिसकी मूक अचेतन आँखें दुख का पीकर पारावार ।
प्रकट कर रहीं दो बूँदों में भग्न हृदय का हाहाकार ॥
चिन्ता की चेतन रेखा सी विधि कटुता की सजग स्फूर्ति ।
चित्र लिखी सी यह विधवा है पीड़ा की प्राणान्वित मूर्ति ॥

४

यह वैधव्य कु भाग्य, दैव गति, दुर्विपाक, अभिशाप कठोर ।
विवश मीन का जीवित रहना अङ्गारों पर आत्म विभोर ॥
खाली खारी जल पी कैसे मन के चञ्चल शिशु रह शान्त ।
बँधे पङ्ख काँटे से अलि के जब पाटल में नया वसन्त ॥

५

कीर्ति शैल कुल की वज्राहत, राघव दलित सिन्धु की थाह ।
राहु ग्रसित नभ की मूर्च्छित द्युति, विधि कृत आत्मा का मृदु दाह ॥
तुहिन पात मर्दित पद्माभा, क्षत उडु की आभा द्युस्फीति ।
विधवा मिष यह मख की शुचिता असुर तिरस्कृत खड़ी सभीति ॥

६

निकषा पर कस, लोक तुला पर तोल रहा नारी का सत्व ।
विषम परीक्षा की ज्वाला में पिघला शुद्ध हेम नारीत्व ॥
मानव बिना विपण्ण मानवी, प्रिय बिन आज प्रेयसी चूर्ण ।
पति के बिना विलखती पत्नी, नर बिन नारी हुई अपूर्ण ॥

७

विधवा की क्लेशित करुणाकृति, उड़ा अङ्ग का किंशुक रंग ।
वाह्य वसन्त श्री तुहिनाकुल, भीतर जलता स-रति अनङ्ग ॥
दैत्य प्रताड़ित स्वर्ग कीर्ति सी नयनों की शुभ कान्ति मलीन ।
तप्त ग्रीष्म की सूखी सरिता तड़फ रहे हैं जिसमें मीन ॥

८

नारी की दुर्बलता, उसका शुचि स्नेह अपराजित मोह।
उसकी दृढ़ता कर सकती टिक उनके हेतु काल से द्रोह॥
तन्नैतिकता, मानवता के सुख, दुख उभय सनातन सद्म।
हिम, ज्वाला दोनों पर खिलता उसके अपनेपन का पद्म॥

९

मति विक्षिप्त, आत्म विस्मृति सी, तेज नशे सी गति विधि हीन।
उजड़ी मधुशाला सी सूनी, क्षय ग्रस्त नाड़ी सी क्षीण॥
अनभ्यस्त विद्या सी निष्प्रभ, टिट्टिभ दल विनष्ट वन प्रान्त।
किसी सकाम कर्म की त्रुटि सी विधवा मन में अमित अशान्त॥

१०

नारी की रस रुचि अबला है, उसकी मति सबला, स प्रकाश।
इन दुर्बल चित्रों में केवल विलसित मन का मृदु विश्वास॥
व्यक्ति विन्दु के तन्त्र चक्र में रस उपासना इष्ट गृहीत।
आराधना साधना-मूलक, उसके हास रुदन उपनीत॥

११

श्वासों से जो तनिक छूट कर सहसा गया कण्ठ में फूट।
अन्तर में क्षण एक सहम, रुक, आकर गया अधर पर रूठ॥
चिर अतृप्ति का अमिट अपरिमित गया तृप्ति के पल में बीत।
स्वयं सृष्टि की लघु गागर से छलक बहा! जीवन संगीत॥

१२

कर शृङ्गार व्रतों भावों से, तन, जन मन की ममता तोड़।
शीतल चिता रचित चिन्ता की जड़ताओं का ईंधन जोड़॥
जलती व्यक्त वियोग अग्नि कर आत्म योग से विधवा शान्त।
बार बार दुलराती - ध्याती, हृदयस्थित सतत स्मृत कान्त॥

१३

अधरों पर अतीत मदिरा का ढ़ल मल मुक्ताहल अनिमेष।
है अनङ्ग पूजन का चन्दन नयन कोर में अब तक शेष॥
दीर्घ तृषा सी, दुर्बलता सी, अगम उपेक्षा सी निरुपाय।
एक विवशता सी विधवा है युवती, जीवित भी मृत प्राय॥

१४

गा पायी थी अभी न जिनको कितने ही ऐसे सङ्गीत ।
असम्पन्न कितने उत्सव हैं, अनुपलब्ध वय पर्व पुनीत ।।
कितने अमृत कलश हैं बाकी लिया न जिनका कण भर स्वाद ।
अभी न इस तक आ पायीं मधु सुख के दिन सपनों की रात ।।

१५

इसके मन की कामधेनु रे ! चढ़ा न पायी पय की धार ।
निठुर पुजारी बन्द कर गया शिव मन्दिर का काञ्चन द्वार ।।
कल्प हेम बल्लरी सु जिसका जिस सुर पर चढ़ने को फूल ।
भङ्ग हुआ वह, उसकी इसके किसलय पर मुट्ठी भर धूल ।।

१६

मिट्टी पर यह ज्योति फेंकदी कुहु ने कर राका शशि भग्न ।
ग्रह निगलित दिनकर की द्युति यह कण्ठ छिद्र सृत गिरी विषरण
सुसङ्गीत का सौंदर्य से रस के क्षण में विषम वियोग ।
बिछड़ गई है लहर सिन्धु से, नष्ट स्वर्ग सौरभ-संयोग ।।

१७

काँटा तिलक, रज्जु बरुनी हैं अश्रु बाट, भ्रू आश्रय वेत्र ।
धर्म तुला कलत्र की जिसके दोनों पलड़े हैं दो नेत्र ।।
तोल तोल निधियों का करती सुर बाजारों में व्यापार ।
उडु मुद्राओं से नभ भरती-धरती पर माणिक नीहार ।।

१८

अन्य भजन, अष्टाङ्ग योग से कठिन साधना विषम वियोग ।
निर्वासित होता समस्त से रस उपासना का न सुयोग ।।
प्रति रस, लय, भावों का विनिमय अविकृत निज में करता शोक ।
मधुर लोक सम्पुट में बिधवा पीती रहती वह आलोक ।।

१९

उर नभ पर शत शरद इन्दु सी चितवन किरण कदम्ब बखेर ।
प्राण कुमुद वन विकसित करती आर्त्त चकोर नयन की टेर ।।
उन्नत जीवन की आश्वासित परम तुष्टि अव्याहत शान्ति ।
सङ्घर्षों की मणि चोंकी पर विधवा संस्कृतियों की क्रान्ति ।।

२०

दे पाते कङ्काल न हम, तुम चेतन भी कर रहीं प्रदान—
मधुर समन्वय शक्ति भक्ति का निज में कर तुम बनीं महान ।।
प्रलय और परिवर्त्तन में भी रहतीं अविकल आत्म विभोर।
असि धारा पर बढ़ चलती हो अविदित अग्नि दिशा की ओर ।।

२१

शकुन्तला सा भाव, तेज भैमी सा जिसमें रति सा अनुराग।
सावित्री सा सत्य, सती सा त्याग, ऊर्मिला सा अनुराग ।।
विवश उत्तरा सी प्रिय के सह ले न सकी जो अग्नि समाधि।
भव उपाधियों से घिर कर भी रहती निरुपद्रव निरुपाधि ।।

२२

विधवा को प्रफुल्ल जीवन के मित मंगल पल है अनुभूत।
रखती प्रिय प्रसाद सा जिनको निज मधुर स्मृतियों से पूत ।।
इसने उस प्रिय में पाया निज आत्मा का सम्पूर्ण प्रकाश।
वह तो गया सुरक्षित इसमें जाने वाले का विश्वास ।।

२३

नारी की यह करुण मूर्ति है अर्धक्षत इसका अनुराग।
विधवा की टूटी वीणा में मिल कर रोते चोंसठ राग ।।
घातों, आघातों प्रतिघातों सघातों की झंझावात।
अभिशापों से उत्पीड़न से रँग देती है काली रात ।।

२४

उसकी हँसी छीन कर जाने कहाँ ले गया है दुर्दैव।
जग सप्रीति यदि रुदन छीन ले आत्म लीन वह रहे सदैव ।।
प्रभु में मिल पति देव ! विभु हुए यह करती अपना विस्तार।
रुग्ण, दरिद्र, अपाहिज निर्बल में करती उनका सत्कार ।।

२५

एक छोर उलझा है भू पर बँधा एक अम्बर से कोर।
क्रूर ग्रहों की कर्म कील से बँधी बधू स्व नियति की डोर ।।
लौट रहे घन बरस बरस कर यह निराश सी पङ्ख पसार।
स्वाति बिना यमुना पर प्यासी खड़ी गगन की ओर निहार ।।

२६

सु संस्कार, शिष्टाचारों का सदाचार का शान्त प्रकाश।
इसके शुभाचरण में रहता आत्म बोध मय व्यक्ति विकास ॥
आर्द्र चीर सी पीर लपेटे खड़ी धीर विरहार्णव तीर।
जितना नीर नयन में बढ़ता उतनी यह लखती गम्भीर ॥

२७

आरोहावरोह संसृति के जीवन के उतराव चढ़ाव।
निखिल लोह घेरे समाज के जन के मन के भाव प्रभाव ॥
सह कर बात घात पद्मिनी खिली लोक गज शुण्ड गृहीत।
उसमें बन्दी अलि गाता है आत्म विभोर मुक्ति का गीत ॥

२८

हम विराट चेतन विग्रह में कर न सके पूजा सम्पन्न।
इसने खारी अश्रु कणों का अर्घ्य चढ़ा हरि किये प्रसन्न ॥
हम न जिन्हें उनही के वपु में जान सके रह निकट निदान।
मानव की नश्वर काया में उसने पहचाने भगवान् ॥

२९

हँसने वालों का कोलाहल रोने वालों का कुहराम।
धूम धाम आने वालों की जाने वालों की गति क्षाम ॥
ऊँचे भवनों के वैभव पुर, निर्धन कुटियों के लघु ग्राम।
स्वप्न स्वर्ग के सत्य धरा के दे पाते न इसे विश्राम ॥

३०

होठों में ही स्वर बन्दी हैं घूँघट में ही सीमित राज।
अभी कहाँ सङ्कोच हुआ कम, हटी न मित मुख पर से लाज ॥
हार जीत की, मिलन विरह की, मधुर प्रणय की रस अनुभूति।
प्राप्त कर सकी अभी कहाँ वह गृहिणी पद की परम विभूति ॥

३१

युग के कपट द्यूत में लगते स्वर्गिक रस निधियों के दाव।
इसकी दिव्य सुधा का करते ग्राहक मदिरा लय में भाव ॥
कण कण को पत्थर कर पथ जब लेते दुष्ट चतुर्दिक रोक।
तब तनु का प्रकटित प्रति कण से कोटि नृसिंहों का आलोक ॥

३२

करते समय प्रेम माखन सी उसे निभाने में है लोह।
होता ऊर्ध्व ध्येय पर उसके प्रति पग का अखण्ड आरोह॥
खेल खेल में उत्सव सा कर कर से पकड़ अपरिचित हाथ।
भारत की ही विधवा है जो तजे न मरने पर भी साथ॥

३३

कला मान करने की उनको शीघ्र मना लेने में दक्ष।
हुई न थी वह मधु अपाङ्ग से भेदन कर लेने में लक्ष॥
अभी अपटु थी वह करने में हाव भाव लीला व विलास।
इन्द्रजाल फैला सकता था अभी न उसका कोमल हास॥

३४

जटिल जटाओं के संघट सी सिल पर विकट घटाएँ घेर।
आती सदा गिराती बिजली जाती शिर पर शिला बखेर॥
जग का प्रेम माँगता आता जाता करता प्रबल विरोध।
प्रेम अनिर्यासित इस तनु का लेता निखिल भुवन को शोध॥

३५

कुञ्चित कुन्तल घन कोरक की कोरों पर है प्रलय कृशानु।
आतप छोड़ हुआ अस्तङ्गत तम में अरुण विन्दु का भानु॥
रोम स्पन्दन, मन की धड़कन, नयनोन्मीलन में निष्प्राण।
अपने पग पग पर करती है वह अपने शत शत निर्वाण॥

३६

सूख रहा है बिन माली के विधवा के मन का उद्यान।
खिची चतुर्दिक इसके जल की–ज्वाला की रेखा अम्लान॥
अति दुरूह दुस्तर पथ पर चल आदि अन्त तक एक समान।
सुतनु सृष्टि में अमृत वृष्टि मयि सभी दृष्टि से पूर्ण महान्॥

३७

अविनश्वर अन्तर चेता का चिन्तन मय चैतन्य अथाह।
इसकी रुधिर शिराओं में है जीवन मय निखिलात्म प्रवाह॥
इसके ही पोषक तत्वों से पुष्ट प्राणियों के व्यक्तित्व।
प्रलयङ्करी प्रसन्न रहो तुम, तुमसे सबके सत्व महत्व।

३८

रत निष्काम कर्म यह करती, इसका है वैराग्य यथार्थ।
है विधवा में ज्ञान भक्ति मय, मङ्गल मय सात्विक परमार्थ।।
आस्था मयि-मर्य्यादा में रत आत्म - निष्ठ, आनन्द विभोर।
अपनाती करुणा मयि विधवा आध्यात्मिक पथ रस में बोर।।

३९

कुछ दिन पहले एक अपरिचित लाया सहसा शैशव छीन।
आज एक अज्ञात गया रे उसका यौवन बना मलीन।।
वह न वधू है अब न सुता ही, माँ का पद भी हुआ न पास।
एक मानवी की संज्ञा में उसके मन का शेष प्रकाश।।

४०

सोख न जाती धरा, न पीती पवन, न करती ज्वाला दाह।
किसकी वल्ली ले पाती फिर इसके व्यथा सिन्धु की थाह।।
तूफानों के सान्ध्य वेणु में सुन बाधाओं के मधु राग।
उच्छ्वासों की बाँध कुण्डली नाच रहा इसका सुधि नाग।।

४१

परम सत्य था प्रेम उभय का ज्योतिर्मय, सुखमय संसार।
प्रिय में था सङ्गीत अपरिमित, इसमें रुचि, सौन्दर्य, अपार।।
कोमल कान्त-कल्प प्रतिभा का श्रुति रहस्य गायक रस सिद्ध।
कवि तो रहा न, उसकी चेतन कविता सी यह लोक प्रसिद्ध।

४२

एक ओर फूली सन्ध्या है, एक ओर सुर धनु अभिराम।
पड़े फुहार चमकती विजली, इधर उधर फिरते घन श्याम।।
एक ओर उडु-झाँक रहा शशि, भरे सरसि कूजे खग वृन्द।
वर्षा सी विरहिन विधवा के आर्द्रानिल भूलें अरविन्द।।

४३

यह अतृप्तियों के मेला में, चाहों की प्रदर्शिनी मध्य।
विषय वासनाओं के पण में, मदनोत्सव, खेलों में बाध्य।।
फिरती उस दर्शक सी जिसका मुषित द्रव्य, खोया मणि हार।
विधवा का सब ध्यान समिट कर है केन्द्रित पथ पर अविकार।।

४४

मेघ सुरों की चपलाञ्जलि में संकल्पार्थ ओजता नीर।
मन्त्र पठित धारा-प्लावन से होते मग्न धरा के तीर॥
इसकी आँखों के जल में है किसका पुरश्चरण, अभिचार।
उर में जितनी आग धधकती दृग में उतना जल का ज्वार॥

४५

अन्धे पति के परम भाव में रही सदा लोचन कर वन्द।
वनवासी पति की सेवा में वन वन भटकी विगतानन्द॥
जीवित रही प्रवासी पति के पथ आजन्म बिछा दृग कोर।
मृत पति की एकान्त साधना करती है अब आत्म विभोर॥

४६

इन्दु बदन के कोरे घूँघट पट के उद्घाटन का पर्व।
नष्ट हुआ रे! जीवन घट का चिर सञ्चित ताजी रस सर्व॥
व्यर्थ धूलि में डुलता जाता अतिथि अर्चना का मधुपर्क।
स्वर्ग प्राप्ति के शुचि प्रयास में हाथ पड़ा यह कैसा नर्क॥

४७

लोह पुरुष आतङ्कित जिनसे, जहाँ शस्त्र शर कुण्ठित प्राय।
अडिग हिमालय सी सहती सब अल्प आयु की यह मृदु काय॥
तिमिर आगमन पथ पर जिसके दृग सजते दीपों के द्वार।
चिर विश्वास मयी की ममता क्षण क्षण थकती उसे पुकार॥

४८

धूलि उड़ रही, पङ्क जम रही; भग्न भवन मिट्टी के ढ़ेर।
उगी वन्य दूर्वास्मृतियों की दुख वट रहा अश्रु दल गेर॥
पड़े एक दो भिक्षु हृदय के आशा के चीथड़े लपेट।
पुण्य प्रणय का दीर्घ खण्डहर निज में विधवा खड़ी समेट॥

४९

विधवा के कपाल पर किस विधि लिखा वज्र से उग्र विधान।
किया ललित माखन निर्मित पर आच्छादित अङ्गार वितान॥
मलय लता अहि मध्य, पङ्क पर विकसित करने का राजीव।
जपा खिलाने का कण्टक पर, विधि की यह रुचि बड़ी अजीब॥

५०

बाकी रहा विश्व में, घर में, अपना कहने को जन कौन।
शत शत नापों स्वर संकुल में उसका एक अकेला मौन॥
यहाँ न जीने का आश्रय है वहां न मरने के आसार।
इधर समरिण पन्नगी निशा है उधर धधकते दिन अङ्गार॥

५१

श्वासों के मन्दार, पलक के पारिजात से पन्थ पगार।
कुंकुम का अभिषेक मोतियों का आनख शिख कर शृङ्गार॥
प्राणों के सङ्केत, खोजती प्रिय पग चिह्न दृष्टि सुकुमार।
अर्चित करती प्रति स्मरण पर अनुरागारुण रस कल्हार॥

५२

दो दिन की प्रवास यात्रा में प्रिय विरहित होती प्रियमाण।
दृग पर नींद, अधर पर जाग्रति, क्षण क्षण मूर्च्छित रहते प्राण॥
वाट जोहते दृग पथराते, खड़े खड़े पद होते श्रान्त।
आज सृष्टि के प्रति स्पन्द में निज छाया में रहती भ्रान्त॥

५३

योग क्षेम, प्रेम मय, हिम मय, हेम कमल सा सक्षम रूप।
नव यौवन, लावण्य सुधानिधि भुवन विमोहन अंग अनूप॥
अन्तर ज्वलित पड़ी उसकी रुचि जैसे बिना खड़ग की मूँठ।
प्रेमी, रसिक, हृदय की मीठी लगन पी रही विष का घूँट॥

५४

व्यथित मलिन वदना कृशांगना, पाण्डुर वर्णा, बिखेर केश।
अलङ्कार से रहित अंग सब, अस्त व्यस्त धूसरित वेश॥
मुख सिन्दूर रहित सूना है विरस चरण बिन यावक लेख।
बिना चूड़ियों के कर खलते, विरस नयन बिन अञ्जन रेख॥

५५

मानव के विशाल मन्दिर में इष्ट देव की चेतन मूर्ति।
वितरण करती जो दर्शक को दर्शन भर से दिव्य स्फूर्ति॥
जिसमें आनख शिख बहती नव सञ्जीविनी सुधा की धार।
आज उसी के श्लक्ष्ण मर्म पर कसक रहा है विधि का वार॥

५६

संसृति के हित में है नारी विधि की सर्वोत्तम-प्रिय सृष्टि।
इसकी रचना से प्रकटित है उस विराट की व्यापक दृष्टि॥
नारी शुद्ध–शक्ति है, शिव है यह जग उसका व्यक्ति विलास।
उसके सुन्दर को वह जाने जिसमें उसका जगा प्रकाश॥

५७

सावन भादों की सरि नाविक अलबेला मन में अति चाव।
सन्ध्या के झुर मुठ में हीरक चप्पू ले सोने की नाव॥
इसके जादू में खोया सा क्रमशः खे लाया मझधार।
डूबा वह, यह खड़ी धार पर बाँध हृदय से उसका प्यार॥

५८

निर्यासित, निष्काम कर्म का-करना-परहित में परमार्थ।
सरल कहाँ है निजोत्सर्ग से साधित करना पर का स्वार्थ॥
निखिल शक्तियों को निकषा है-परम–प्रेम-अन्तिम पुरुषार्थ।
नारी ही उनसे कृतार्थ है नारी से ही वे चरितार्थ॥

५९

मरु के तृषित अधर को देकर स्वर्ग सुधा हिम चषक स्पर्श।
महोत्कर्ष है दिया तृषा को पिला प्राण का सब निष्कर्ष॥
रवि किरणों की मञ्जूषा में मिलन निशाओं की सौगात।
कौन ले गया सबल बन्द कर इन्दु पिटक में मंगल प्रात॥

६०

नारी हृदय तड़फ तारों से पूछ रहा अनिमेष अशेष :
मेरे मन भावन की छवि का नभ के किस पथ पर उन्मेष॥
दोषा-दिन की धर्म तुला पर अपना बिखरा वैभव तोल।
नव वसन्त से पूछ रहा मन अपने नव यौवन का मोल॥

६१

जब समीप था प्रिय अलबेला भीतर बाहर था बस एक।
जब से दूर हुआ आँखों से बिखरे उसके रूप अनेक॥
धरती पर अम्बर के नीचे प्रतिमा सा वह लघु आकार।
आज समाया सा लगता है उसमें यह विराट संसार॥

६२

इसका सुख दुख महा काव्य का कवि का सृजन पदार्थ महार्घ।
है पूजार्ह सुतनु के तन में मानवीय पूजन का अर्घ॥
यह अतीत प्रिय की स्मृति में चिर आप शेष है अपने पास।
अपना दे अस्तित्व सजाया उसके जीवन का इतिहास॥

६३

दंशन कर पलटा हो अहि ज्यों पय फेनिल वह तल्प प्रसार।
ज्वाला के विस्फोट लिये शत खुला पड़ा है शयनागार।
द्वार घोर हिंस्र मुख सा वह तिमिर उगलता सा लघु दीप।
महि पर वह विधवा है लुण्ठित जैसे बिन मोती की सीप॥

६४

अति उत्सुकता, वह अजस्र सुख, वह अदम्य मन का उत्साह।
लुक छिप कर वह सकुच लाज मय आने जाने का सुख वाह॥
कितने स्वागत शत अभिनन्दन, जीवन का संगीत अशेष।
आज व्याघ्र वन में सुरभी सी शयन कक्ष में करे प्रवेश॥

६५

पृथिवी का तमिश्र घूँघट जब देता है दिन नायक खोल।
कुंकुम किरणों से रँग जाते दिग्बाला के अरुण कपोल॥
शशि मिस 'श्री' उडु के अन्याक्षर करती निशि स्वपत्र संवाह।
पढ़ प्रभात पुलकित विधवा की सरस्वती भर उठती आह॥

६६

सूक्ष्म, स्थूल, विदित, अविदित, की ज्योति पिये है इसके नेत्र।
घर के भीतर घर के बाहर व्यापक है नारी का क्षेत्र॥
मधुर बाह्य, भीतर सुन्दर है, निम्न धवल, ऊपर अति स्वच्छ।
हम इसकी महिमा गरिमा से बनते महिमावान् व तुच्छ॥

६७

प्राण वहीं झंकृत, उत्प्लावित, यहीं पहुँच हम आत्म विभोर।
चिदानन्द घन रस में देती हमें हमारे पन को बोर॥
नारी की अनन्त शोभा का कण कण में है अमृत विलास।
इस प्रकाश दर्शन की सक्षम आँखें दिव्य न मेरे पास।

६८

जब अरण्य वासी ने पाया इस प्रमत्त प्रमदा का प्यार।
निज अतृप्ति के दृढ़ घेरे में उठा दिये ऊँचे अम्बार॥
नये नये सुख में वे रुचि कर मोहक थीं उनकी दीवार।
दम घुटता नारी का ऐसे आज बने वे कारागार॥

६९

सुख, सहयोग, विनोद सु दुर्लभ, उत्सव सत्कृत्यों से दूर।
हँसने की है इसे न अनुमति, गा सकता न हृदय भर पूर॥
खाने, सजने का निषेध है, कहने सुनने का न विधान।
रोक लगी आने जाने पर, मिलने जुलने पर है बान॥

७०

जिसे मानने की न निज स्थिति, लोक परिस्थिति, जन मत शुद्ध।
जो समष्टि के लिये असम्भव, आत्मा, रुचि, मन, प्रकृति, विरुद्ध॥
उसे त्याग संगत, विवेक मय गठित करो तुम नया समाज।
प्रति अधिकार मयी, स्वतन्त्र हो जीवन, जाति, देश में आज॥

७१

मधुर मानवी का धरती पर अभिराजित चरित्र मन्दार।
सन्त हृदय के अलि दल के दल जिस पर घिर करते गुञ्जार॥
आत्म विवेक सूर्य किरणों से नव पराग परिमल पट खोल।
रहा भाव मलयानिल उसकी सुयश सुरभि श्वासों में घोल॥

७२

नयी सर्जना, नया संगठन, निखरे शुद्ध, समृद्ध स्वरूप।
सांस्कृतिक शृङ्गार नया हो, नव जन नव युग के अनुरूप॥
दिव्य व्यक्ति की सीमाओं का निखिलाखिल में हो विस्तार।
देवि! तुम्हीं से उद्घारित हो नयी क्रान्ति का सिंहद्वार॥

७३

विधवा का यह भाव व्यक्तिगत, आध्यात्मिक, निज का अभिराम।
यह अनन्य आचरण प्रेम का प्रकृत, असाधारण का काम॥
नित अनुकूल: प्रतीप केलि मयि है विचित्र लीला, लय धाम।
नारी! तुम अथाह सागर, मैं तट से करता तुम्हें प्रणाम॥

७४

स्थिर स्वधर्म पर, दृढ़ स्वशील पर, शुभ स्वरूप में रही विराज।
जितनी शान्त, तपोमयि, है वह उतना ही अनुदार समाज ॥
नारी की साधना-श्रेय के पथ पर कर उत्पात हठात्।
अवसर पा कतिपय खल छल से अपहृत कर ले गये बलात् ॥

७५

सबका समुचित मूल्याङ्कन हो, सब पर पड़े समुज्वल दृष्टि।
सभी प्रेम के अधिकारी हों जन जन पर करुणा की वृष्टि ॥
जीवित रहें शान्ति से सुख से, लगे किनारे सबकी नाव।
योग क्षेम वहन करने निज नारी का है आविर्भाव ॥

अपहृता

पञ्चदश सर्ग

१

निविड निशीथ, नगर पथ निर्जन, नीरव निखिल नृलोक।
दूर सघन-उपवन के गृह में किये क्षीण आलोक॥
अलस गात, उन्निद्र, नत नयन, सजी सेज के पास।
सिकुड़-मही पर सभय अपहृता - बैठी - विवश, - उदास॥

२

धैर्य्य वृषभ, प्रणगिरि, धृति हरि पट, कच अहि, कुल वट मूल।
छवि रज, वय मृग अजिन, क्षेम शशि, दुख सरि, ताप त्रिशूल॥
शुचि डमरू, भय भूत, मौन यति, लाज उमा अमिताभ।
काम दहन-त्रिनयन दर्शन का जय जन पावन लाभ।

३

मुरझाया अवगुण्ठित सित मुख कुञ्चित दोलित केश।
शिष्ट कुलों का शुभ, स्वाभाविक, सादा, सुन्दर वेश॥
शुचि, शालीन, शील, शोभा मयि, सात्विक, सलज, कुलीन।
असम्भाव्य-अनुचित घटना कृत, निरूल्लास, लय हीन॥

४

दीप्ति, कीर्ति, आयु धन, बल मति, श्रेय प्रेय के योग्य।
लखने, सुनने, अनुभव करने, चिन्तन में उपभोग्य॥
गन्धस्पर्श, रूप, रस, वपु, वय, सात्मा, सगति, सयास।
लोह वेष्ठन में मनु चिति का चित्र ले रहा श्वास॥

५

सुस्पन्दित-आकुलित, हृदय का अञ्चल रहा पसीज।
रोम रोम में हुए अंकुरित दुश्चिन्ता के बीज॥
लहू चाटती रही चिपक कर जोंक भीति की फूल।
कान्ति कुरल चञ्चल छवि जल में तैर रहे शत शूल॥

६

ऋषि घृत तृप्त, दग्ध खाण्डव कर, त्रियुग प्रतीक्षा लीन।
मन्त्र पूत, कर अर्चि सम्वरण, कृश तन, धूम्र विहीन॥
श्वासस्पन्दित-द्युति लहराकुल, रद क्षीरोधि हिमानु।
सुमधुर अधरों पर त्रेता की सोती यज्ञ कृशानु॥

७

नख से लिख, कर से तृण क्षत कर, बलि रेखा खिच भाल।
रसना कढ़ कढ़, श्वास दीर्घ हो, झुक झुक, कर धर बाल।
खिसक शीर्ष पट, रणित वलय हो, रद अधरों को रेत।
नयन अनल-जल मय खुल मुँद कर करते कुछ सङ्केत॥

८

सौभग शशि, छवि रम्भा, गुणमणि, वयमद, गति मातंग।
तन तरु, शान्ति सुधा, स्वभाव गौ, यश कज, दृष्टि कुरंग॥
आत्म हनन कर सके न विष भी लिया साथ ही छीन।
है जलाग्नि मयि मथित हतश्री, यह समुद्र सी दीन॥

९

एक कुहक सी, चल छलना सी, कलना सी पी ताप।
इन्द्र जाल सा फैला देती अरुण राग मयि भाप॥
माया सी छाया सी चञ्चल, अञ्चल सी खुल डोल।
रही कोर काजल में मन के घन खण्डों को घोल॥

१०

ज्योंहर दग्ध अमर रूपसिओं की हिरण्य छवि कान्ति।
बलिदानों के पुण्य रुधिर से नवस्नात युग क्रान्ति॥
योग सिद्ध-तप पूत-मखोज्वल, ऋषि आश्रम की श्रान्ति।
वह सजीव मनु धर्म युद्ध के मृत शूरों की शान्ति॥

११

श्वासों ने जितना पाया था चिर नूतन निर्माण।
आँखों में पारहे आज वे यह दुःखद निर्वाण॥
उन रातों में चमक उठी थी जिन प्रातों की जीत।
झुलस रहे इन घातों से उन बातों के संगीत॥

१२

मथित क्षीर सागर से जिसने लिये तीन अवतार।
लक्ष्मी रम्भा और वारुणी सबके श्रेय विचार॥
प्रथम सत्य को अपर रजोगुण तम के लिये तृतीय।
दैत्य पुरी में विवश बन्दिनी है क्यों यह स्वर्गीय॥

१३

त्रिगुण भेद से नर नारी हैं विभु के कटु मृदु रूप।
सृजन और संहार रजस्तम, पालन सत्य स्वरूप॥
प्रथम युग्म नर की विशेषता, वधू अपर की खान।
पुरुष शम्भु, विधि, सुन्दर नारी हरि की मूर्ति महान॥

१४

स्निग्ध रेशमी पट सा जाता साहस खिसक निदान।
पकी मञ्जरी सा झड़ पड़ता मन का धैर्य्य अजान॥
शिखरों से प्रपात सी फिसली आशा खाकर चोट।
तड़फ उठा विश्वास विकल हो सजल पलक की ओट॥

१५

सुख दुख की गहरी घाटी को पाप पुण्य की धार।
अभय, सजय, जो उल्लंघन कर जन्म मरण के द्वार॥
जीवन को पा सकी सहज ही दे अपना अस्तित्व।
इसका सत्व विरोध विघ्न में पाने खड़ा महत्व॥

१६

कुल देवों को द्रवित पुकारा, कुल शपथों का गान।
धर्म दुहाई दे - हारी कर घर वालों का ध्यान॥
आश्वासन की ग्रन्थि काट कर खुला प्रतीक्षा पाश।
शिथिल नाश की इस सीढ़ी पर धीर चरण विन्यास॥

१७

बिना इन्दु, उडु, बिन दीपों की, साँझ रहित, बिन प्रात।
यह न उजेली और अँधेरी, ऋतु विहीन, बिन वात॥
प्रेम, प्रतीक्षा, आशा, सुख, दुख, मिलन, विरह अज्ञात।
फैल गई इसके सपनों पर यह किस युग की रात॥

१८

श्रद्धा का ममता का रस घट मुग्ध प्रणय का पार।
प्रतिभा का वैभव, प्रभाव, भव आभा का आगार॥
सान्द्र विभा वय की भावों की शोभा का आधार।
लुटा जा रहा प्रेम मयी की महिमा का भण्डार॥

१९

काँप उठी पँहुचल सी सुन कर बाहर द्वार समीप।
सिहर उठा रोमाञ्चित तन ज्यों वायु विकम्पित दीप॥
धीरे से खुल पड़े अर्ध पट, उठा हृदय में शूल।
ध्वस्त यज्ञ बेदी में जैसे पदाघात से धूल॥

२०

ऊपर प्रेत, धरा शव नीचे, धूम्र असित, घट - वन्त।
मरघट के सूखे निशि तरु की अल्प हरी सी वृन्त॥
भटके जीवन की जीने की तरस रही सी श्वास।
वह नर की इस नैतिकता का सहमा सा उपहास॥

२१

कटि का सिंह, चिकुर का मणिधर, आकुल लोचन मीन।
है अचेत ग्रीवा का शुक शिशु, गति मराल अति दीन॥
वाणी की पिक मौन, वक्ष के चक्रवाक पर हीन
विलख रही अन्तर की कुररी, मन के मोर मलीन॥

२२

सन्ध्या जहाँ वरण शशि करती भर तारों में गान।
जिसके स्वर्ण कलश से करते प्रात निशा मधु पान॥
अमलताश जिस नृत्य पूलक से पाता कुसुम विकास।
उठी सशङ्क यथा वारिद कण छू धरती की वास॥

२३

जान सका जो इसे न जग में वह सबसे अनजान।
तमोगुणी आसक्त जीव को कब इसकी पँहचान॥
पदक्षेप पर ऋतु, कटाक्ष पर गीत, गन्ध, रस रंग।
उसके धवल पुण्य के सुख की छाया मात्र अनंग॥

२४

चिता बना कर दहक उठा मृत आँखों में उल्लास।
होठों पर निज अस्थि चुन रहा दुख से विह्वल हास॥
रूप नदी के तीर बनाता यौवन गहन समाधि।
दीपक सी जगने को जिस पर बैठी मुख तल व्याधि॥

२५

वीर इसे पूजित कर पाते मणि काञ्चन संयोग।
पुरुष अधोगामी होते कर पशु बल यहाँ प्रयोग॥
स्वयम्वरा की वर माला है हमें बनाती धन्य।
सबल वरण का सबल हरण का करते पाप जघन्य॥

२६

कामुक की आँखों से फूटी विष की मैली धार।
विषयोत्तप्त श्वास से बिखरे नारी पर अंगार॥
इस कुदृष्टि की गरल वृष्टि में कलप उठी 'शुभ दृष्टि'।
स्वर्ग द्वार कर भंग घुसी मनु घोर निरय की सृष्टि॥

२७

सजग ऊर्ध्वगा कुण्डलिनी सी अगम शून्य के पास।
स्वरस्फोट कर महा विन्दु का करती सहज प्रकाश॥
खोल सुषुम्ना, प्राणस्थिर कर, अन्तरमुखि गत द्रोह।
व्यक्तात्मा यह निरख सकुचती-बद्ध जीव का मोह॥

२८

मधुर प्रलोभन, प्रोत्साहन शत, प्रणय वचन मधु हास।
भय, ताडन, कटुता, कुयत्न भी, जब ला सके न पास॥
उद्यत हुआ बलात्करों से करने वढ़ उपनीत।
क्रोध ज्वलित, अति क्षुधित, आर्त्त वह बोली आर्द्र, विनीत॥

२९

हे! महान् पूर्वज के वंशज, हे! अग्रज! हे आर्य्य!
संस्कृति स्रष्टा, अग जग द्रष्टा, तत्वों के आचार्य्य॥
तुम पिचाच बन रहे पुरुष से कर मर्य्यादा भग्न।
नारी के स्व आत्म चिन्तन में मानव बनो न विघ्न।

३०

लाज वधू की कुल का गौरव, नारी का सम्मान।
जिस अञ्चल में छिपा हुआ तुझ मानव का निर्माण॥
लोक प्रतिष्ठा, जन की निष्ठा, युग का नीर क्षीर;
उसे विषैला करने हे! तुम मत हो व्यर्थ अधीर॥

३१

अधर मुक्त कुछ कहने-जब रद दर्शित-सित अरुणाक्त।
मनु स्वस्थिता-गिरा कान्ति प्रभ-हंस सान्ध्य नभ व्यक्त॥
सुर सतरङ्गे धनु प्रत्यञ्चा पर कर चञ्चु निपात।
लोक सत्य को नूतन स्वरों से करता हो प्रणिपात॥

३२

अनुनय - विनय - भर्त्सना, क्रन्दन, बन्धन, भीति, प्रकाश।
विफल हो गये नारी सम्भव कोमल कठिन प्रयास॥
क्रूर वृत्ति निश्चरियों में बहु खोज थके लघु प्राण।
त्रिजटा दीख पड़ी न एक भी दे सकती जो त्राण॥

३३

ज्वाला की प्रतीक धूम्राव्रत, चिन्गारी का राग।
कर्पूराङ्कित गृह कपास का, अङ्गारों से फाग॥
जिसमें बड़वानल, दावानल गिरि ज्वालास्थिति मूक।
जूझ रहा मृणाल कर से निज मनुज मधुज का टूक॥

३४

बीते दिन अतीत की रातें ऋतुओं के आनन्द।
शैशव का यौवन का विस्मृत गत जीवन स्वच्छन्द॥
आई याद पुरानी बातें हुआ किसी का ध्यान।
निकली आह ठेस खा मूर्च्छित हुआ आत्म सम्मान॥

३५

जीभ लपलपाते खाने को काम - धेनु का मांस।
हाथ उठ रहे कर देने को कल्प लता का नाश॥
सुर पूजा के स्वर्ण थाल को चले चाटने श्वान।
मचल रहे दानव करने को देव सुधा का पान॥

३६

हिन्द - महा - सागर की देवी, विन्ध्याचल की साध्य।
गंगा यमुना धौत चरण चिर हिमगिरि की आराध्य॥
काश्मीर कुंकुम से अर्चित - महि कृत छवि से पुष्ट।
सर्ग - विसर्ग - संस्कृति वन्दित नारी सर्वोत्कृष्ट॥

३७

छवि पर क्रुद्ध, रुष्ट यौवन से क्षब्ध भाग्य को कोस।
असन्तुष्ट जीवन से, जग से, स्त्रीपन पर रोष॥
विरत निशा पर, खीज मार से, परवशता से स्तब्ध।
हरी घृणा कर व्यक्त पुरुष प्रति घोर अवज्ञा दग्ध॥

३८

धन के मद में दृष्टि न रहती, सुख के मद में ध्यान।
कुल के मद में दया न रहती, जन के मद में कान॥
यौवन मद में भावी चिन्ता, छवि के मद में ज्ञान।
विद्या मद में विनय - शक्ति के मद में पर सम्मान॥

३९

शम्भु शीर्ष पर, विष्णु हृदय में, जिसका नित्य स्थान।
नत हो - जय कह - जिसे मनाकर होता रण प्रस्थान॥
जिसकी भाव विरल रेखा पर बने लोक परलोक।
शोक ! तड़फता वधू कोकनद क्षय नर का आलोक॥

४०

उलझे कर कर्षित कुञ्चित कच, क्षत भूषण परिधान।
उर पर नख रेखा रुधिरान्वित, युग कपोल व्रणमान॥
कंपित कर, निर्जीव चरण मृदु, तने रोम बन मेख।
अंग अंग पर उभड़ चले सब क्रूर कर्म के लेख॥

४१

नाविक, नाव, लहर-सरि, तट सी, भँवर कभी आधेय।
पथिक कभी पथ, श्रान्ति, पथ श्रम, लक्ष्य कभी पाथेय॥
वह लख पड़ी, तेज सी, तम सी, अतनु कभी सहगात।
क्षत संघर्ष ज्वार में प्लावित दोलित तन जलजात॥

४२

गमन पर्व, आने के उत्सव, रहने के त्योहार।
प्रहर मिलन का, तिथि वियोग की, मधुर प्यार का वार॥
हँसने की बेला, रोने के अवसर सुख संयोग।
गान मुहूर्त, कल्प शान्ति के, नष्टोत्कर्ष सुयोग॥

४३

शीष फूल, सीमन्त खनक कर, रो रो थके पुकार।
हृदय हार में चिलक रहा चिर उसका हाहाकार॥
करकी झटक वलय सिसके, पद पायल उठीं कराह।
कटि कुँहनी की ठेस किङ्किणी मौन हुई भर आह।

४४

भरती जो अशोक में स कुसुम नई वसन्त वहार।
स्वर्ण बना पाया न लोह को पारस चरण प्रहार॥
उस पिशाच के पशु बल से थक वज्र करों से छूट।
गिरी यथा द्युति रेख खींचता तारक जाता टूट॥

४५

यौवन की अचेत निद्रा सी विषम त्रास से भग्न।
चिन्ता की हिम कुलिश रात्रि में इन्दु कला कुहु मग्न॥
शत सुर धनु युत अष्ट दिशा मय वर्षा का दिवसान्त।
इस मिष पतित हुआ स्व नियति के नक्षत्रों का प्रान्त॥

४६

युग की थाती, देव धरोहर, संसृति की सौगात।
मानव का चिर ग्रहण, समर्पण नारी का अवदात॥
यौवन का उल्लास, लास छवि का, जीवन की जीत।
गिरने की आहठ से उसकी क्षत अखण्ड सङ्गीत॥

४७

यह अस्फुट सम्पुट के पुट सी, घुट घुट घट सी फूट।
लुट लुट अपने ही पनघट पर लट सी जाती छूट॥
करवट ली करके झुर मुट में तन का पुरट बखेर।
लिपटी किङ्किणि तट घेरे के पट में अम्बर घेर॥

४८

पांशु पङ्क से रुद्ध होगये मधुर सुधा के स्रोत।
टूट गया इस दुख स्फोट से उर का पीवर पोत॥
नीराजना ज्योति वत् जग मग हो होठों के पास।
सिंह भाग पाने शृगाल ने किया जघन्य प्रयास।

४९

रोक थाम जिस धूमधाम की कर न सके युग याम।
रुका न जो परिणाम किसी से थके अमित संग्राम॥
अम्बर का सुर-अवनी का नर जिसमें चिर आहूत।
तिरष्कार कर उसी काम का सहमी यह अवधूत॥

५०

पर सुख, पर यश, पर उन्नति से—पर गुण गण से द्वेष।
पर का लक्ष्य भ्रष्ट कर ने में रत जो जन अनिमेष॥
पर के धन पर मोह, रूप पर, कुल पर जहाँ कुदृष्टि।
नियति नियत क्षण में हरती उस खल नीयत की सृष्टि॥

५१

वह तमिस्र का गेर आवरण प्रलय मेघ सा उग्र।
करती रही क्रान्ति उसमें घिर यह विद्युत सी व्यग्र॥
झटक करों से, पटक जानु बल, कर शिर वसन निरस्त।
सर्प कुण्डली सी समिटी को लगा खींचने व्यस्त॥

५२

धर्म द्वार पर-साधु कुटी पर, मधुर प्रकृति के पार।
केवल आर्त्त पहुँच पाते है इस नारी के द्वार॥
चूम सका दे प्राण शलभ का जल जल प्रेम अगाध।
लुब्ध मक्षिका के पर कैसे लें वह ज्वाला बाँध॥

५३

शिर-कर-पद, नख, दन्त वार कर दूर हुई दुत्कार।
दिव्य सृजन-पालन के स्थल पर आ बैठा संहार॥
अश्रु तरल, नत नयन, कोर से बरसाती अङ्गार।
खड़ी रही वह मूर्त्त शम्भु के क्षुर त्रिशूल की धार।

५४

एक अकेली सहज दुर्बला पहरे पर है आग।
जितनी सुन्दर मणि रक्षक की उतना भीषण नाग॥
मृदुल कवि हृदय ही पा सकता नारी रस गम्भीर।
स्वर्ण पात्र में ही कढ़ता है केहरिणी का क्षीर॥

५५

मदिरा की बोतल प्रहार से करके उसे अचेत।
मुक्त द्वार कर निकल गई वह कज्जल गृह से श्वेत॥
उस प्रचण्ड धधकी ज्वाला को सका न कोई टोक।
जाती हुई कीर्ति को श्री को कौन सका है रोक॥

५६

संत्संकल्पों मय सन्तों की यह दैवी सम्पत्ति।
इस प्रज्ञा तरु को रख सकती कहाँ आसुरी वृत्ति॥
यह सत्पुरुषों की महिमा मयि दर्शित आत्म विभूति।
कहीं कीच पर पड़ सकती है पावन यज्ञाहूति॥

५७

ऊपर नीचे इधर उधर लख निज पग ध्वनि से भीत।
मन की मूक वासना सी जो सब तर्कों को जीत॥
भगी जीर्ण अञ्चल से ढकती कुम्हलाये जलजात।
उस नीरव रजनी सी जिसके नभ पर उड़ती घात॥

५८

घन में द्युति, निशि में शशि, फणि में मणि, गिरि शिखर तुषार।
वन में उत्स, हँस यमुना पर, शिव शिर सुरसरि धार॥
कञ्चन रेख कसौटो पर यह नीलाम्बुधि में सीप।
पथ के तम में वह मनु कज्जल छादन के तल दीप॥

५९

प्रात किरण मृदु वात मलय की आ उतरी नभ पार।
कुमुद वन-श्री सी पहुँची जब यह निज गृह के द्वार॥
आने लगे स्वजन सब रवि से ताप प्रताप बखेर।
जाने लगे उसी सम करते तम कज्जल का ढेर॥

६०

शुभ्रासित, वसनाञ्चित, शिथिलित, कल मुकुल जलजात।
मन्द उषा किरणों से झिलमिल है कुसुमों सा गात॥
भीनी सुरभि अङ्ग अञ्चल की श्वासों का मधु धूम।
सत्य स्निग्ध आत्मबल उसका रहा विजय से झूम॥

६१

सत्य, धैर्य्य, सुख, जो इसमें है वह न अन्य के पास।
धर्म इसी के मन का प्रहरी, कर्म इसी की श्वास॥
श्रेय प्रेय की मूर्ति ध्येय की यह आत्मा की ज्ञेय।
महा शक्ति ज्योतिर्विभूति यह नारी सदा अजेय॥

६२

दृष्टि - भाव - निज प्रति कुत्सित लख, सुन जन जन के व्यङ्ग ।
सकुच - धीर गम्भीर सुदृढ़ वह बोली नत सोमङ्ग ॥
'व्यर्थ लांच्छित क्यों करते हो, व्यर्थ रोपते पाप ।
शुद्ध पवित्र लोंट आई हूँ उचित न यह अनुताप ॥

६३

जान बूझ प्रत्यय न कर सका झुक समाज का स्वार्थ ।
उसे सत्य की जिज्ञासा क्या ? कछ भी रहे यथार्थ ॥
इष्ट किसी विधि भी जन जन पर छाया रह आतङ्क ।
पर महतों के शीष दिठोंना बन कर शेष कलङ्क ॥

६४

कृपा धनद, छवि काम, बाहु महि, मुख शशि, अग्नि प्रताप ।
शक्ति पवन, यम कोप, तेज रवि, गिरा भारती आप ॥
चित्त धर्म, गुरु बुद्धि, दृष्टि श्री, कुक्षि पूर्व, उर जिष्णु ।
लोम लोम से सास्त्वित्व सुर आत्मा से शिव विष्णु ॥

६५

कृष्ण नाम हो अशुचि न अघ से, मल से अग्नि अपूत ।
पङ्क प्रसूत कमल न चिता की रज से शम्भु अछूत ॥
तम से दिनकर मलिन न जैसे नारी किसी प्रकार–
हो सकती अपुनीत न जग में ज्यों गंगा की धार ॥

६६

हुई उपेक्षा से न सती की क्षति न रुका उन्मेष ।
शकुन्तला को भुला बिगाड़ा क्या उसका लवलेश ॥
निर्वासिता मैथिली का मिट सका कौनसा इष्ट ।
परित्याग से दमयन्ती का क्या हो सका अनिष्ट ॥

६७

विना चन्द्र के निशि, सुवास से रहित वसन्ती फूल ।
त्विषा हीन घन, नलिनी बिन सर, बिना लहर के कूल ॥
गीत बिना त्यौहार, विहग बिन विपिन, देह बिन रूप ।
गृह बिन दीप तथा नारी बिन रहती सृष्टि कुरूप ॥

६८

विफल निबल चिर निन्दा करते सफल सबल यश गान।
उपयोगिता-सुधा नारी की जानें साधु सुजान॥
अविश्वस्त, अस्थिर, असन्तुलित, अपने प्रति अति भ्रान्त।
नारी प्रति शङ्कित वे जन जो स्वयं स्व से आक्रान्त॥

६९

प्रेम साधना भाव व्यञ्जना, सत्य, मधुर व्यवहार,
वल्गु वाक्य, सद्गुणोत्कर्ष सह हृदयार्पण; सत्कार,
सदाचार, पुरुषत्व, कलान्वित कर स्निग्ध उपचार,
मानवीय विधि से पायें हम स्वानुरूप का प्यार॥

७०

कुछ प्रभाव रखता न भाव पर लोकतन्त्र षड़यन्त्र।
मर्त्य स्वर्ग के नय-शासन से प्रेम सदैव स्वतन्त्र॥
किसका कहाँ नियन्त्रण मन पर, आत्मा कब परतन्त्र।
नारी! सदा निमन्त्रित जन से तव सम्मोहन मन्त्र॥

७१

उच्च जाति, दिव्य वपु, गुरु कुल, विपुल शक्ति, गुण कल्प।
प्रेम सुलभ न रूप से वय से साम्राज्यों से अल्प॥
हिंसा, हेम, अहं हाला से मिले मोह अक्षेम।
विनय समर्पण युक्त प्रेम से ही सम्भव है प्रेम॥

७२

प्रेम दीक्षा की गुरु नारी जिसके शुचि सौजन्य।
कठिन साधना, तप से पाता वह निधि जीव अनन्य॥
प्रेम आत्मा है परमात्मा प्राप्य सार परमार्थ।
जिसने किया, जहाँ, जब जिससे, वे सब धन्य कृतार्थ॥

७३

नारी! यह उपकार करो जो मर्य्यादा के द्वार।
पार न करें स्व मार-मोह-मद-सत्व स्वरूप निसार—
दृष्टि, वचन गति, से तब उमड़े पावन पारावार—
जिस पर जागे कवि सहस्र मुख श्री-हरि शीर्ष पधार॥

७४

टूटा मोह, द्रोह घट फूटा, मोंम बन गया लोह।
पंगु कर चला द्रुत गति से गिरि शिखरों का आरोह॥
साध्या चल दी शरद विभा सा छलकाती मणि गात।
बिन सहचरी विश्व लगता बिन दूलह की बारात॥

७५

भीतर बाहर व्याप्त हो रहा जिसका सरस प्रकाश।
कण कण में नर्त्तित है जिसका मंझामय उल्लास॥
परम पुरुष की आत्म-शक्ति की जो मुक्ता उद्दाम।
उस अनन्त शाश्वत नारी को मेरे अमित प्रणाम॥

सहचरी

षोडश सर्ग

१

मानव की सहचरी सु - साध्या,
चिर अभिन्न हृदया प्राणाधिक।
अध्येया, धर्म्या, आत्मीया,
काम्या, जयति नृ कल्प कामधुक ॥

२

वशीभूत संश्लेष दशा में—
हरि,-विश्लेष दशा में नर को।
उभय स्नेह वचन से करती,
छवि से प्रथम, कृपा से पर को॥

३

'पुरुषकार वैभव' मयि जाया,
प्रकृट 'पुरुषकारत्व रूप घन।
सर्व शब्द वाच्या प्राज्ञी यह—
अकलङ्कामृत - धारा शोभन॥

४

वेदात्मा यह जगन्मोहिनी,
योषिद्रुचिर निजेष्ट सेवा रत।
इस योषा की परिचर्य्या कर,
जीव मात्र है सुकृत सदुपकृत॥

५

सब कुछ सुनती, मिश्रित करती,
द्वेष दोष अघ हरती वामा।
स्वगुणों से संसार बदलती—
ध्येय - प्रदा लोकाश्रय रामा॥

६

क्षमा - मयी, प्रणिपात प्रसन्ना,
अनघा, सुमना क्षान्ति रूपिणी।
सततानुग्रह – सम्पन्ना श्री,
द्रुत प्रसादिनी, अखिल अग्रणी॥

७

निज कर्मार्ह फलद प्रिय के प्रति—
प्रथम कर्म निग्रह से वारण।
सत्य सन्ध शीला वनिता का,
अपर अनुग्रह का सन्धुक्षण॥

८

पति सुत से अवगत अधिविन्ना,
उभय मध्य में सदा अवस्थित।
सम्पादन, संयोजन करती—
युगल पक्ष तन्मिथ श्रेयस्थित ॥

९

अनुग्रहैक स्वभावा प्रमदा,
है अशरण्य शरण्या, आर्य्या।
ग्लानि क्लेश दारा कटुस्नुषा,
शाश्वत स्वधा आर्य्या, वर्य्या ॥

१०

विघ्न विटप वन हेतु सुन्दरी,
कठिन लोक मन शैल सुन्दरी।
यह सुन्दरी, सुभग सर्वाधिक,
आनख शिख सर्वाङ्ग - सुन्दरी ॥

११

अनवद्या, सकलेष्ट कामदा,
सदनुरूप सौभगा, नन्दना,
सुधैर्य्य प्रदा, दिधिषु, परिध्येया,
है नृ - आत्म वल्लभा अंगना ॥

१२

मानवीय धर्मों की पद्मा,
मानव धर्माचरण द्योतिका।
जीवन धर्म फलाढ्य कल्प तरु,
नारी, धर्म—स्वरूपयोजिका ॥

१३

शैव शक्ति, वैष्णवी भक्ति यह,
कान्ता निखिल अनन्त विभार्णव।
यह मानिनी चित्त में अपने—
सहज समेटे अति मानव भव ॥

१४

हे त्रिपाद त्रिभुवन त्रिकाल की—
रमणी क्रीड़ा कला क्षेत्र भृश।
सङ्कल्पाढ्या, जीवाराधित—
यह कामिनी अखिल रस मानस ॥

१५

अवपु मिलन अद्वैत, द्वैत जब–
दो सदेह सत्ता विनिमय चिर।
द्विगुण द्वितीया से द्विक सर्जित—
आलम्बन आश्रय के सान्तर ॥

१६

निज अभिमान, मान गौरव की,
नव निर्माण, विकास, व्यास की।
यह पुंभूम्नि सृष्टि सुषमा की,
महिमा, गरिमा, गुण प्रकाश की ॥

१७

प्रति प्रतीप - दर्शिनी तभी तो,
निज प्रिय के प्रतीप लक्षित कर।
तीक्ष्ण श्लक्ष्ण बाण रक्षण में,
उसे अनुक्षण रखती दृग पर ॥

१८

जिसकी चाह चराचर को चिर,
जो विलास शीला सतवन्ती।
लाड़ चाव ललिता सुलालिता,
ललना की लालसा वसन्ती ॥

१९

अविकल कला जनित वय पेशल,
नर शशि, यह शशि द्युतिमणि द्रावित।
तेज किरण उत्सारित रस मय—
वह रवि, तुम कोपना द्युमणि सित ॥

२०

मसृणाङ्गी अबला यह रुचि से,
विश्व विजयिनी 'अ' बला कमला।
विमलास्था मयि, अति समुज्वला,
सरला स्थिर, सबला यह चपला॥

२१

तप से, त्रिवल, भाग्य, पुण्यों से,
वधू मधुर मानव के घर में।
इसके रस बन्धन में बँध कर,
मुक्ति नाचती आत्माजिर में॥

२२

वाम लोचना, वाम नयन कर,
सरति साध्वी जब निहारती।
पुरुष कपाल पटी तज भीता–
वाम हुई निज नियति भागती॥

२३

महा भाव सुख सार मूर्ति यह,
निखिल साधनाओं की निकषा।
शुचि अङ्गना अङ्क पुष्कर में,
भुवन रूप इन्दीवर विकसा॥

२४

वाम लोचना के लोचन में,
वाम अतनु अविराम अवस्थित।
होता चितवन से प्रति मन में,
एक अनेक रूप धर जीवित॥

२५

भीरु सदय पर सुख वाञ्छा रत,
सदा भामिनी निभृत भाव घन।
मत्त - काशिनी में रहता चिर,
उज्वल रस रत्नाकर प्लावन॥

२६

वर वर्णिनी, उत्तमा महिषी,
परम सत्तमा देव सम्पदा।
प्रति क्षण, प्रति ऋतु में प्राणी को,
तदनुकूल जीवन विभूति दा॥

२७

पाणि - गृहीता है यह पति की,
पाणि गृहीती - पति की है प्रिय।
यह पत्नी स्वामिनी स्व गृह की,
सती समस्त सुधा का सञ्चय॥

२८

सह धर्मिणी स्वकृत विभाजिका,
सहयोगिनी, सदैव स्वधव की।
सुचरित्रा, सु - सहानुभूति मयि,
जनी अधिष्ठात्री है भव की॥

२९

वीज रूप यह रुचिर स्थाली,
माली—मधु ऋतु, सब इसका श्रम।
सुतनु सुरस से शिञ्चित, कुसुमित,
सफल स पल्लव काव्य कल्प द्रुम॥

३०

परम ज्ञान निगुणी, शिल्पी गण,
भक्त, कलाकारों के मन से।
नित्य नवाविभाव प्रिया का,
होता ध्यान मनन चिन्तन से॥

३१

नर प्रति तत्व मध्य शिव परिणति,
शक्ति, विकास, शोभना के गृह।
प्रेम विषय नर, तनु प्रेमाश्रय,
वह रस राज, सु महाभाव यह॥

३२

नित्य आत्म - राग धर्मा की,
राग सुधाकर की किरणों कृत।
प्रेमी उर स्फटिक मणि होती,
प्रणय प्रणोदित - सित समुल्लसित ॥

३३

सुष्ठु कान्त स्वरूपा तरुणी,
है द्वादश - भूषणाश्रिता नव।
'धृत षोडष श्रृङ्गार' सु जिसके,
समुदय बिना परम शिव है शव ॥

३४

यह अनुभूति नृरस - मयत्व की,
परम स्फूर्ति समास्वादन की।
प्रिय सुखैक तात्पर्य्यता वलित,
स्वाभाविकी शक्ति रस घन की ॥

३५

ऋजु 'असमोर्ध्व चमत्कारिक कृत
उन्मादित स्नेह निर्य्यासित।
प्रेम पराकाष्ठा - निष्ठा की,
अनिश प्रतिष्ठा सी अभिराजित ॥

३६

भक्ति जनित आनन्द जीव का,
अद्भुत् लीला कृत ईश्वर का।
द्वयोनुनेया 'दिव्य' 'ह्लादिनी',
एक स्रोत यह दो निर्झर का ॥

३७

सीमन्तिनी, सुचारुदेष्णा,
कादम्बिनी सारभरिता सी।
है नितम्बिनी नयन बन्दिनी,
सुखस्पन्दिनी रुचि सरिता सी ॥

३८

प्रतिभा, आभा, रस, स्वरूपता,
शक्ति,सुधा,स्थिति,गुण,महिमा की।
ले पाती न स्व थाह आप निज,
रुचि विभूति,गति मन, परमा की ॥

३९

यह सुचरित्रा पतिव्रता तनु,
कुल पालिका, कुलीना कमला।
स्वयम्वरा, पति पत्नी छवि से,
कृत सपत्निका जयति निर्मला ॥

४०

गुह्या विद्या स आत्म विद्या,
अरु आधार शक्ति सह सङ्गम।
निज विशुद्ध सत्व में कर यह,
होती ब्रह्म मूर्ति परमोत्तम ॥

४१

अविनाभाव पुरुष नारी में,
बाह्य द्वैत, अद्वैतान्तर में।
पुरुष मूल की नारी में स्थिति,
तदनु मूल प्रस्थापित नर में ॥

४२

आते प्रभु जिससे विग्रह में,
अनुभव, लक्ष्य, भाव, अनुमिति में।
उनकी निज माया यह समुदित,
तद्चैतन्य स्वभावस्थिति में ॥

४३

कथित ब्रह्म जिसकी विभु तनुभा,
उसके अन्तर की आभा में।
यह सच्चित् का महानन्द घन,
विलस रहा अप्रकृत प्रतिभा में ॥

४४

निखिल शक्ति, विद्या, की जननी,
अखिल तत्व रस सार अंगिका ;
अमित विग्रहा शुद्ध सत्व विभु-
नारी मूल स्वरूप राधिका ॥

४५

मरुतान्दोलित नव वर्षा से,
सिक्त स्फुट कोरक कदम्ब की ।
मधुपावृत शाखा सी रश्मिल,
मूर्त्ति-हृदय धृत भुवन बिम्ब की ॥

४६

दिव्यालोक रसोक, लोक निधि,
कृष्ण कोकनद निभृत मञ्जरी-
की, स्निग्ध अविकल्प सुरभि सी,
यह मानस निकुञ्ज में उतरी ॥

४७

इसके स्मरण स्फुरण, स्मर में,
परिष्कार तीनों तत्त्वों का ।
नारी में सम्पन्न सदुत्सव,
एक साथ सब कर्त्तृत्वों का ॥

४८

देवि ! तुम्हारे गुण लीला, वपु,
रस, वय, भाव स्वभाव, स्थिति के ।
अमित नाम सम्बोधन छवि के,
शक्ति, तत्व, श्रुति प्रीति प्रभृति के॥

४९

स्व लक्ष लक्ष दृष्टि कोणों से,
नारी तुम्हें और ईश्वर को ।
एक अनेक रूप बिधि से लख,
प्रत्यय किया अनन्त स्थिर को ।

५०

तव मुक्ता पाने जितना हम,
चले, मिला उतना गहरा जल।
आज थके से मरु पर बैठे,
दृग में भर आये मुक्ताहल ॥

५१

गगन कण्ठ पर तारक स्रग में,
ज्यों शरदिन्दु सुधा घन विलसित।
ब्रह्माण्डों की मणिकाओं में,
नारी! तुम सुमेरु सी शोभित ॥

५२

तव सङ्गीत प्रतीक्षित जीवन
मखमल से आवरित वाद्य सा।
तुम उसमें स्वर बन गूजो हे!
नव प्रभात जागरण साध्य सा ॥

५३

नव दर्शनोल्लसित ध्रूव शिशु कवि,
करने को उत्सुक विनय स्तुति।
निज द्युति शङ्ख स्पर्श सदय दो,
जिससे हृदयोदित हो श्री-श्रुति ॥

५४

नारी प्रभु की भक्ति कृपा मयि,
जिसका अवस्थान मानव मन।
तत्प्रभाव प्रकटित होते चिर,
भाव नृसिंह फोड़ निज पाहन ॥

५५

काया में कुण्डलिनी सी है,
संसृति में नारी की स्थिति शुभ।
ऊर्ध्व गमन से त्रिविधोन्नत जन,
जिसके निम्न गमन से निष्प्रभ ॥

५६

अमृत रूप संसार इन्दु की,
षोडश कला प्रवृत्ति परक, नर।
उसकी सप्त दशी निजी कला,
निधि प्रवृत्ति पथ की नारी चिर॥

५७

लय, सौन्दर्य्य, गन्ध, वर्ण, वय,
प्रेम, रूप, रस, भाव, भारती।
निभृत स्थाली सी नारी में,
दीप्त नृभव की विभव आरती॥

५८

सर्वोत्कृष्ट सु तत्व ह्लादिनी,
उसका भाव - महाभाव तद्।
है नारीत्व शस्य सार घन,
सुतनु कमलिनी सी जिसके हृद॥

५९

विधि विमर्श का वह विवेक मय,
विविध विचार भाव विग्रह सा।
उसमें यह नारी निर्णय सी,
विश्व उभय का संग्रह गृह सा॥

६०

दास्य, सख्य, वात्सल्य, युक्त यह,
नारी का माधुर्य्य सुधाकर।
'त्रिस्मय' निशि में मधुरस द्युतिसह,
करुणा की नीहार रहा भर॥

६१

नारी के उत्सव गोपुर पर,
प्रेम प्रदीप, विश्व नौबत सा।
तोरण प्रकृति, स्वर्ग शुभ घट सा,
मुक्ति लेख, ज्ञान चित्रित सा॥

६२

स्वागत में प्रभु स्वयं खड़े हैं,
कर में ले सब निधियों की स्रज।
बिछूँ पावड़े सा मैं उस पर,
जो शिर पड़े सुतनु की पद रज॥

६३

मेरी वाणी में प्राणों में,
तुम शृङ्गार किये मुस्काती।
क्या परिचय दूँ देवि! तुम्हारा?
बात न कुछ कहने में आती॥

६४

सजग अर्थ तुम ऋषि काव्यों की,
शब्द ब्रह्म की चेतन ध्वनि हो।
सब रेखा रंगों की आकृति,
शेष शिरस्थ अशेष द्युमणि हो॥

६५

आया तो था द्वार तुम्हारे,
मैं दरिद्र कुछ पा लेने को।
पर पहले ही तुम कह बैठी,
अपना सब कुछ दे देने को॥

६६

कल्प वृक्ष बहु तव प्रांगण में,
द्वार बँधी है कामधेनु शत।
कोष भरा चिन्ता मणियों से,
विनत कुबेर जयति नारी नित॥

६७

निरुपहार युग बाद उपस्थिति,
मेरा रिक्त पाणि अभिवादन।
होगा क्या स्वीकार दीन का,
बिना दीप अक्षत का पूजन?॥

६८

प्रेम विग्रहा, मुक्त सनातन,
दिव्य शक्ति संघट्ट सान्द्र तन।
सत्य, शुद्ध, भुवनैक मूल हे!
नारी तुम प्रति तत्व सार घन॥

६९

सादर भेट रहा जीवन, तन,
शुचि प्रसाद सन्तोष रूप दो।
मन, यौवन, उपहार ग्रहण कर,
आज शान्ति स्व स्मृति स्वरूप दो॥

७०

हे! आलोक राशि कोकनद-
शोक सुधा रस ओक ह्लादिनी।
लोक मर्म वादिनी - नादिनी,
जयति अभय आयुध प्रसादिनी॥

७१

श्यामल, सजल, प्राण जलधर घिर,
वरसाता मन पर मुक्ताहल।
फूटे सुख के कोंपल अगणित,
खिली एक तुम पहली शत दल॥

७२

सुतनु स्वरूपोपेक्षा पूर्वक,
केवल रूपाश्रय बन्धन कर।
मूक्ति सुयोग रूप माध्यम से,
शुद्ध स्वरूप प्राप्त करना चिर॥

७३

आश्रय आलम्बन दोनों में,
नारी तो निश्चित नारी है।
पर हो प्रेमाश्रय रस भावित,
निजपन तज नर भी नारी है॥

७४

महिला भद्र सुकुल की यश मयि,
सामाजिक स्वरूप रूपामित।
देवि! व्यक्तिगत जीवन में भी,
भिन्न विविध सम्बन्धों में स्थित॥

७५

निज प्रति भाग, विटप, किसलय में,
कमल गन्ध ज्यों विभु सम मिश्रित।
त्यों नारीत्व निहित कण कण में,
कर्त्ता - क्षेत्र - क्रिया - कारण में॥

महिला

सप्तदश सर्ग

सती १

(क)

भारतीय संस्कृति के वाङ्मय में
विभूति मति, सुमति
विश्व इतिहास की - संसृति की मौलिक कृति,
कीर्ति, श्रेय, गौरव, अभिमान की
दिव्योत्सर्ग मयि - पुण्य भूमि,
भुवन चरित्र चिन्तामणि, चूडामणि,
जिसके पारिजात चरण
मर्त्य से, अमर्त्य भुवन भर से
देव दनुज किन्नर से
यहाँ तक कि हरि हर से
पूजित प्रतिष्ठित सतत,
शक्तियाँ त्रिभुवन की
काल की प्रचण्ड गति
जिससे पराजित,
पानी पर पोत वत्
त्रिभुवन सभीत शिथिल

काँपता लहर सा,
ऐसी महान्, माहात्म्य मयि भारत की
महिमा मयी है
सती

(ख)

सहसा स्वतन्त्र शान्त राष्ट्र पर
आक्रमण अरि का प्रचण्ड हुआ
चतुर्दिक घिरा दुर्ग, भागे जन इधर उधर
सम्भावित था न समर,
फिर भी समस्त पुर वासी युवक वृद्ध
सैनिक रण कला सिद्ध,
अस्त्र शस्त्र से समृद्ध
निकल पड़े त्याग घर
युद्ध हुआ प्रलयङ्कर
काम आये सभी नर
पूर्ण हुआ जौहर
होना पर चाहतीं पति शव साथ सती - एक वधू,
किन्तु शव तो शत्रु घेरे में - दुरूहतम पहरे में
रोकने से रुकी नहीं - साहस से वेग से
कर में करबाल लिये
ढाल भी कराल लिये
विशाल अश्व पर सवार मुद्रा मुख लाल किये
मानों काल भैरवी मुक्त निज बाल किये,
वीर वेश, रक्त तिलक, तेजोमय विशद भाल,
गई कठिन व्यूह तोड़ शत्रु के शिविर में,
प्रचण्ड रण चण्डी से नृमुण्ड मण्डित धरा
भीषण संग्राम हुआ, व्याप्त कुहराम हुआ
मङ्गल परिणाम हुआ,
लौटी पति शव लिये
वीर वधू - महा सती

(ग)

आई पति शव सह निज वृहद् कक्ष में
विधिवत् रचित, सुसज्जित, सुर मोहन जो,

सम्पन्न होती जहाँ आज ही सुहाग रात;
कर स्फटिक मञ्च पर देहाभिषेक पति का—
भूषण, वसन, राग, लेप पुष्प सारार्चन,
लिटा दिया किसलय दल कोमल नव तल्प पर
रत्न वलित वसनाच्छादन किया ऊपर से;
फिर निज करों से रच पच के निर्मित की
चन्दन से श्रीफल से तुलसी के काष्ठ से
कर्पूर केशर से चिता अति कला मयी
द्रुत फिर स्वयं ने निज चाँदिनी से सरसिज से
तन का उपचार किया, विविधि अलङ्कार पहिन
षोडश शृङ्गार किया नख शिख सम्हाल लिया
कुसुमों कलिकाओं से, विपुल कला गन्धों से,
माँग भरी, रच के सुहाग विन्दु सिन्दूरी
चरणों में यावक सु करों में मेंहदी ललित
बन गई क्षण में सुहागिनी नई वधू
प्रेयसी प्रियतम की,
पति के पदों का फिर षोडशोपचार युक्त
पूजन वन्दन किया, मुस्करा एक बार
किया हेम दर्पण में दर्शन स्वरूप का.
मुग्ध अभिनन्दन किया
सादर समर्पित किया,
प्रणाम युत तल्प पर विराजित हुई अङ्क में
पति का कलेवर ले मुक्त किया आनन
निरखा सराहा - झलके दो अश्रु विन्दु
वरुणी घन खण्ड पर - मानो दो उदय इन्दु
कोटि कोटि दिन कर सी दीप्त हुई
देवि सती

(घ)

उठी फिर तल्प से प्रसन्न मुख भाव लीन
तेज की अरुणिमा से सान्ध्य नभ लगता हीन,
प्रोक्षण करके नीर सुरसरी का,
जल, फल, गन्ध, पुष्प अक्षत से बार बार

पूजन विभोर किया माङ्गलिक चिता का
उस पर बिछाया फिर मखमली ग्रास्तर इत्र-का भीगा,
पाटल की कमलों की केतकी सज्जा कर
पति के शव को सावधानी से राजित किया;
पुनि गन्ध, पुष्प, फल ग्रक्षत ले हाथ में
'ग्रनन्त काल पर्य्यन्त पति मिलें, ये ही
संकल्प सती ने किया इसी कामना से सबिधि,
इसके ग्रनन्तर पृथक् स्थापित विविध
शूर्पों में दिव्य त्रयोदश सधवाग्रों को
वस्त्राभरण, पुष्प, गन्ध, स्वर्ण मुद्राएं
ग्रमित मिष्टान्न सादर समर्पित किये,
प्रार्थना विनत की चरणों में हरि से
देव ! मम वायन दान से तुष्ट हो,
शक्ति दें मुझे सहगमन की करुणामय !
फिर वस्त्र कोर में पञ्च रत्न - नीलाञ्जन
बाँध कर मुक्ता पूरित किये मुख में
ग्ररु किया ग्राह्वान ग्रन्तर में ग्रग्नि का
प्रणाम कर पूजा कर राजित हुई स्तुति कर
पति शव क्रोड धर–चिता पर–
ज्यों नव सुहागिनी प्रीति मयी
पति पलंग पर,
मृत्यु को सुन्दर पवित्र बनाया शुभ
विवाह शय्या सी सुखद श्रेय मयि हुई चिता
धन्य धन्य दिव्य सती

(ङ)

उधर पीछे से ग्राये दृढ दुर्ग की परिधि तोड़
पीछा करते से ग्राक्रान्ता गण दल के दल
दुर्ग जन शून्य श्मशान सा धूम्रासित
चारों ग्रोर पशुग्रों, गिद्ध चीलों की हल चल मय
मुक्त एक मन्दिर दीख पड़ता था ग्रालोकित
जिसमें प्रविष्ट हो पहुँचे सब कक्ष में
जहाँ पति शव लिये चिता पर राजित

बाला शृंगार किये, तन्मय समाधि में
दृश्य हुआ अद्‌भुत शक्ति से सती की—
तेज प्रज्वलित लख हुए सब चमत्कृत
सकल प्रस्खलित चरण मौन, निस्पन्द, नमित
खड़े रहे स्तम्भित सारे समवेत दूर,
घायल कियत् शेष पहुँचे पुरजन सयास,
गगन दुंदभी वजी, बरस उठे पारिजात
अदृश्य दिशाओं में बादित हुए वाद्य वृन्द
सुन पड़े नर्तित नर्तकियों के नूपुर नाद
गूँज उठी विप्रों के कण्ठ की वेद ध्वनि,
पितरों की आत्मा के दीख पड़े ज्योतिष्कण
देवों की आशीमुंद्राएँ झलक रहीं
मुखरित स्वर्देवियों की श्रद्धान्वित सत्प्रशस्ति
सिद्ध वधुओं का विवश, छलक उठा आत्मानन्द
उत्सव सा दीख पड़ा मन्दिर में चारों ओर
जिसमें देव मूर्ति सी विभासित सित
शान्त सती

(च)

साल्प संज्ञानुभूति, जागी समाधि से
एक बार चतुर्दिक् दृष्टि की सौम्य शान्त
खचित हुई अधरों पर पावन मुस्कान मञ्जु
भाल पर नाच उठीं किरणें हेम रेखा सी,
एक बार झुक कर विभोर - आत्मनिष्ठ हो
कुसुमाञ्जलि भेट सहित पति को प्रणाम किया,
लक्षित हुआ उसे ब्रह्म रूप चराचर
लोम लोम भासता स्वरूप मात्र पति का
कण कण में दीख पड़ी एक छवि एक गति
त्रिभुवन समेट खड़ा निज में विराट पुरुष
अर्धोन्मीलित नयन सुस्थिर नमित दीत
अङ्क हुआ विल्कुल निस्पन्द, द्युत - उन्नत,
श्वास सम्बरण युक्त आकर्षण प्राणों का
झिलमिल झिलमिल हुई रश्मि अंग अंग से

करली करों की सँयत दृढ़ बद्धाञ्जलि
नासिका कोर पर दृष्टि हुई केन्द्रित
मुद्रा हुई आप्त, पूत, शान्त ऊर्जस्वित;
दो क्षण रत किया योग - व्यक्त हुई आत्मा;
मन्द मन्द गति से मन्द्र सान्द्र पुलक मय,
उभय पाणि घर्षण किये
प्रज्वलित कृशानु हुआ
व्याप्त हुआ तन में तल्प में भवन में
मलयानिल भपक उठी, लपट उठीं प्रलयङ्कर
महक उठा अगरु धूम, सौरम कपूर का
अर्चि की चट चट में, स्वर्ग सङ्गीत मधुर
उन्नत स्फुलिङ्गों पर नर्तित अनन्त रूप
लक्षित हुआ फिर भेद अग्नि मण्डल को
लीन हुई क्षण में अनन्त मैं अशेष बन
रह गये समस्त चकित
पृथिवी पर भाल टेक सबने प्रणाम किया
स्वर्ण भस्म शीश धर बोल उठे एक साथ
नागरिक, सैनिक, गन्धर्व, देव किन्नर गण
सम्मिलित स्वर में

जयति साधु महासती ।

श्यामली २ (अ)

तन गोरा क्या काला, सुन्दर नीलेन्दीवर मन्दिर रे !
छवि सागर वपु पर छाया नव पावस रस का जलधर रे !
किया प्रेम शृंगार कृष्ण रस निशि की काली मुरली में,
श्यामा हुई श्यामली बस कर कजरारी प्रिय पुतली में ।

ग्राम्या २ (ब)

सरल, शुद्ध, अभीत, श्रमश्लथ,
सहज व्रीडित, घूँघट में स्मिता।
सबल, संयत, सुष्ठु, निसर्गतः,
सजग ग्राम बधू यह निश्छला॥

निरुज, पुष्ट, सुडौल, शरीर है,
अनघ दृष्टि, मन, स्मित प्राण है।
विदित है न इसे कुछ विश्व का,
लसित जीवन में अति सादगी॥

प्रकृति, भाव, रुचि, स्थिर प्रेम हैं,
मित न कृत्रिम वेश विचार में।
चपलता, छलना, न विलासिता,
नगर के अभिशाप न हैं इसे॥

यह नहीं रस रङ्गिनि नायिका,
रति, कला, रस का न विवेक है।
न पटु चालन में दृग, अङ्ग भ्रू,
अपढ़ है यह शाश्वत मानवी॥

प्रकृति के उभड़े वन फूल सी,
लह लहे कृषि के नव धान सी।
नव विहङ्गम ग्राम्य वसन्त सी,
समुद-मुक्त स अस्फुट भारती॥

पलित धूलि सने शिशु अङ्ग ही,
शिशिर ग्रीष्म कटें बिन वस्त्र ही।
अधिक बाधक हैं न क्षुधा, तृषा,
मदन, मोह, विधान समाज के॥

मित प्रकाश, विकास, न चेतना,
चिर अभाव, अबोध, दरिद्रता।
विनय, शील, स आर्जव, आर्ष ये,
कथित है निज नागरिकाग्रजा॥

सु पट, भूषण, राग विहीन भी, सरस, सुन्दर सात्विक, सौरभित,
अति उदार, मनोज्ञ, निसर्ग सी जयति मुग्ध मना तनु ग्राम की।

नागरी ३

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

नई वेश भूषा में दर्शित—नव विधि से घन चिंकुर प्रसाधित
काया स्वच्छ, परिष्कृत, सुरभित आनख शिख सज्जित समलंकृत
कृश अतन्द्र-गृह-कुल, शीलोचित भद्र, विदग्ध सुसंस्कृत, शिक्षित
अनुशासित, मर्य्यादित, नियमित दृष्टि, हास, गति, रुचि, मति, संयत

विपुल कल्पना, चिन्तना भरी
दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

कटु समाज घेरे की बन्दी रूढ़ि-पीढ़ियों की चिन्ता रत
लोकाचार, विचार, व्रतों से व्यवहारों, विधान भारान्वित
स्वप्नों की निशि, दिन साधों के ललित भावनाओं से अस्थिर
कला केलि, कौशल, कौतुक मयि अनुरञ्जित, नव रस अर्जित उर

यौवन-रूप-स्नेह अप्सरी ।
दिव्य भव्य यह भद्र नागरी ॥

ऋतुओं के आडम्बर बहु विधि, जिसके सुख, दुख शीत, उष्ण घन
मिलन, विरह के, नटन गमन के ऊपर के बहु विविध प्रदर्शन
छुई मुई सी कोमल कुञ्चित सलज सुशील स्निग्ध-सरस मन
अंग गठन अनंग माव मय! पयः फेन सा चञ्चल यौवन

छलके गीत रुदन की गगरी
दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

कथा, कहानी, कविताओं की, रसिक नायिका, सविभव, गौरव
युवकों के सपनों की रानी उर उर में जिसका मधुरोत्सव
अग जग की हल चल कोलाहल निखिल क्रान्ति कृतियों की सम्बल
मानव के निर्वाण, सृजन की आशा, अभिलाषा से ऊर्मिल

जन जीवन की सुख विभावरी
दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

वृद्धा ४

हुई जीर्ण काया, चले टेक लाठी
अवस्था हुई प्राय सौ वर्ष की है
मिटी मोह माया, लगी ईश में लौ
प्रभा पुण्य की धर्म की मूर्ति सी है ॥

गिरा मिष्ट, है सत्स्वभावा, कृपालु
सभी के लिये एक सी प्रीति नीति
स्व के हेतुवाञ्छा, नआसक्तिकिञ्चित
परों के लिये चित्त में है शुभेच्छा ॥

सभी मोद भोगे, सभी रंग देखे
महा तृप्ति की दीप्ति है झुर्रियों में
स्व पुत्रस्नुषा को सभी भार देके
रहे स्नेह से गेह में निर्गिला हो ॥

सुना के कहानी, कथा बालकों को
सजाती नये उच्च संस्कार धी में
सदाचार के पाठ, देती सचेष्ट
स्वआचार से त्याग, सौजन्य द्वारा ॥

शुभाशीष पाते स्वतः लोग प्रातः
परामर्श निष्पक्ष जिज्ञासु लेते
करे लोक वार्ता, न निन्दा प्रशंसा
जपे नाम, गीता पढ़े, शान्त बैठी ॥

जिसे देख होती स्वतः सत्प्रवृत्ति
कँपे पाप जा सामने आप जी का
मिटे राग, इर्ष्या, मिले प्रेरणा सद्
रहे तीर्थ सी गेह में सिद्ध रूपा ॥

सदा चाहते गेह के छत्र छाया
तिरोभाव की कल्पना भी सताती
बनी है इसी से कुटी स्वर्ग सी स्व
जिये और सौ वर्ष चाहे वधू ये ॥

सभी गेह के मानते हैं प्रभाव
हुई वृद्धि सारी इसी के प्रताप
कहें 'पौत्र बाबा बड़े भाग्यशाली
कहाँ प्राप्त की ये स्व दादी निराली॥

शिरोधार्य्य सानन्द होती तदाज्ञा
यथा वेद वाणी, बिना तर्क शङ्का
नवारम्भ कर्त्री नये कृत्य की ज्यों
सभी सिद्धियाँ हों उसी के कहे की ॥

स्वयं सत्य की साधना सी सुधा सी
तपो निष्ठ है उच्च आत्मा, महात्मा
जगी प्रेम की-क्षेम की योग वर्त्ती
पवित्रोज्वला कारिणी सर्व आत्मा॥

व्यथा, शोक, चिन्ता न उद्वेग होता
सुने कृष्ण लीला तभी अश्रु आते
नहीं तो महाधीर गम्भीर है ये
सदा मुस्करातीरहे सौम्य मुद्रा ॥

गृहस्थी सही अर्थ में पद्म सी ये,
रहे नीर में ज्यों अनासक्त मुक्त ।
लसे गेह प्रत्येक वृद्धा सु ऐसी,
यही कामना देवि ! कोटि प्रणाम ॥

बालिका ५

जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

१

मधुर किसलय मृदुल नीलोत्पल नयन की
अरुण पाटल से चरण, शशि से वदन की
चिकुर कुञ्चित, अधर पर मधुमास उच्छल
कुसुमिता मन्दार कलिका मातृ मन की
जन वसन्त रसाल तरु की सारिका यह
जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

२

आप्त पूत सजीव कवि की कल्पना सी
नियति की सर्वाङ्ग सुन्दर सर्जना सी
धूलि पर मणि मोतियों के प्रात सी डुल
मुखरिता है स्वर्ग की स्वर वन्दना सी
भूमि उर पर लसित तारक मालिका - यह
जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

३

चिर अनादि अनन्त का आलोक पहला
चिर अमर संगीत संसृति का रुपहला
विश्व के सन्तोष का आनन्द घन सा
उदित देव विभूतियों का पथ सुनहला
व्यक्ति के सौभाग्य नभ की तारिका यह
जल जात सी नवजात कोमल बालिका यह

४

कामना जीवन रसों का कल्प पल्लव
भावनाओं, कल्पनाओं, स्वप्न का भव
आतमा के सत्य का साकार दर्शन
भव पुटी में चेतना का चिन्तनार्णव
निखिल लोक स्नेह की रस साधिका यह
जल जात सी नव जात कोमल बालिका यह

किशोरी ६

विरल पट से मदन मन का छन रहा आलोक,
बस रहा छवि इन्दिरा का सरस इन्दु रसोक।
खिली प्रणाजिर शरद के प्रात की हिम धूप,
लाज की नव शुक्ति में झलकित नव स्फुट रूप ॥

नयन जल में मीन से मृग चपल द्युति के कौन,
अरुण शत दल आँकता सा छिप रहा झुक मौन।
कल्पना - सुधि - स्वप्न-निखरे रश्मि सलिल स्नात,
प्रथम परिचित सा पलक में मोतियों का प्रात ॥

कुतूहल कर शशि किरण सी अरुण शीतल दृष्टि,
वयः सन्धि स्फुटित पावस खण्ड घन सी वृष्टि।
झन झनाती वीन पर पहली रसीली मीड,
बीन-तृण-आरम्भ मय अज्ञात खग का नीड ॥

अधर गीले, तरल अञ्चल, सजग, लोचन लोल,
सिक्त कुन्तल, चिबुक भीगे, आर्द्र अरुण कपोल।
लिस रहा लावण्य तन पर ज्योति रिसता भाल,
तिर रही छवि की तरी यह गेर वय का जाल ॥

कुछ नये संकेत उजले उदित नूतन लक्ष्य,
झुक रहा मुस्कान में सात्रह सजीला पक्ष।
श्वाँस में मन्दार कोंपल की नई सी वास,
घ्राण के पहले वकुल का अधर पर नव न्यास ॥

उठ पड़े जिस ओर पग वह सब अनूप अनन्त,
जहाँ पड़ती दृष्टि विलसित वहीं चैत्य बसन्त।
इङ्गित जिधर प्लावित उधर ही मुखर रस की धार,
बुरकता है रङ्ग सब पर यह किशोर उभार ॥

हो रह लघु मूर्ति का विस्तार जग के पार,
पर चला चिन्तन चराचर में नई झङ्कार।
मिलन क्षण सा, विरह कण सा मदिर अवगत ताप,
गुन गुनाते अधर नर्तित चरण अपने आप ॥

पुण्य पर्वारम्भ, यौवन का निकट त्योहार—
ह्री ध्वज स्मर चिन्ह की पुज चढ़ी उत्सव द्वार।
पहचानते से पथ चरण, मन पा रहा पाथेय,
कौन पाये यज्ञ में यह प्रथम पूजा श्रेय॥

झुकी पलकें नत हुई है नासिका की नोंक,
सहज छिपने की छिपाने की प्रकट है झोंक।
मदन मन्दिर दीप सी शुचि मदिर मृदु मुस्कान,
हो चली कुसुमित लता तन की नयन को ज्ञान॥

एकान्त में अनुरक्त लुक छिप खोज आत्म विभोर,
चाहना का मेघ छाया नाचता मन मोर।
सुरुचि शिविका पर चढ़ी चल मधु कसक रस वन्त,
रजत किरणों से खुली रस मुकुल वय के वृन्त॥

श्वास स्वागत गीत सी, प्रति दृष्टि में आह्वान—
मसृण पग ध्वनि में नियन्त्रण, स्वप्न में अभियान।
भर रहा मधु के कलश यह कौन अञ्चल ओट,
सहज यौवन की विवशता सी हृदय की चोट॥

मधुर नव शृङ्गार सुन्दर रूप का अभिसार,
चुरा अञ्चल गन्ध मादक पवन है बलिहार।
भ्रू धनुष पर चढ़ रहे अनगिन मदीले बाण,
सहला रहे व्रण मूक अपने अवश शावक प्राण॥

कोमल कटु ७

सम्पन्न करती कभी हास, लास, रास क्रीड़ा,
भगवती करती कभी घोर लीला विध्वंस की।
मयूर, हंस, कमलासना सिंह बाहिनी बने,
रूप अन्न पूर्णा धर लेती भद्र काली का॥

युवती ८

छूटा भ्रुवों पर धनु सप्त वर्णी
टङ्कारती चाह गुणाधरों की।
फूटे नये रङ्ग, उमङ्ग फूली,
है अङ्ग में आज अनङ्ग बेला॥

फूँकी किसी ने अनुराग वंशी,
है रोम रोम मुदित मूर्च्छना में।
उत्साह, सु स्फूर्ति, दृढ़ क्रिया से,
जागा सुधार्णव रव चेतना में॥

चाहे समर्पण अपनेपने का
उत्सर्ग पूर्वक करदे किसी को।
उत्कर्ष की रुचि, तप - साधना की,
संघर्ष की मति निखरी हिये में॥

चिन्ता, सुखों की यश, मान्यता की,
कर्त्तव्य, भावी स्थिति धर्म की है।
है सत्य का आग्रह भी अनूठा,
व्यक्तित्व का सुष्ठ विकास इष्ट॥

नाना कलाएं, लिपि, शिल्प, शास्त्र,
विद्या अनेकों, रस ग्रन्थ सीखे।
कैसे करे सद् उपयोग जो हो,
सन्तोष एवं स्व प्रकाश भू में॥

सोचे स्वरूप, वय, विभूति, काया,
क्षुद्रोद्यमों में न विनष्ट होले।
हो राष्ट्र, जाति, स्वजन, आत्म सेवा,
सम्पन्न हो हेतु यथार्थ कैसे॥

विश्वास युक्त स शुचि आप्त निष्ठा,
है खोजती सहज स्वरूपता स्व।
आदर्श हो जीवन पूर्वजा सा,
एकान्त में स्थिर युवती विचारे॥

जाने मिले घर वर संग कैसा,
क्या प्रीति स्वर्ग सृजन हो सकेगा !
लेंगे मुझे क्या अपना बना वे,
क्या मैं उन्हें जीत रिझा सकुंगी ?

खोयी रहे कोमल कल्पना में,
स्वप्नों मयी प्रावृट की नदी सी।
लावण्य लीला रस रूप भाव,
आनन्द गीतोदधि में निमग्ना ॥

उत्साह पूर्वक कर लोक सेवा,
सौम्या, सदाचार मयी सुशीला।
पाती समादर स्व स्वभाव द्वारा,
माँ के यहाँ, जा पति के यहाँ भी ॥

रूपसी ६

आनख शिख साँचे की ढली !
नील वसन घन में तन छवि की कोंध रही बिजली।
शोभा के वसन्त मधुवन में कुन्तल अलि अवली ॥
चली हृदय गोरस मटकी भर यौवन कुञ्ज गली।
बजे जहाँ रस मुग्ध प्राण की प्रीति पगी मुरली ॥
मचल रही दृग में रह रह कर अरुण सुरा कुरली।
लोम लोम से बरस रही सुख सौरभ की बदली।
सुषमा की उपमा न भुवन में नुत्न स्फुटित कली।
जय रूपसी - अप्सरा सी चिर कवि कुल यश उजली ॥

दम्पति १०

नैसर्गिका प्रणयिनी प्रिय की अभिन्ना,
सम्मानिता सकल से गृह स्वामिनी है।
सौभाग्य-योग सब भूरि सराहते हैं,
सन्तुष्ट, तृप्त, परिपूर्ण, प्रसन्न है ये ॥ १ ॥

कान्ता कटाक्ष पति चित्त प्रफुल्ल करती,
होती विमुग्ध तनु कान्त रसेक्षणा से।
राकेन्दु सी समुदिता जन पार्श्व में स्त्री,
होता प्रतीत पति सिन्धु तरङ्ग युक्त ॥ २ ॥

तेतीस कोटि सुर, सात्विक सम्पदाओं—
का स्वर्ग भूमि पर दम्पति ने उतारा।
है गेह में बह रही सुख, शान्ति, शोभा,
सन्तोष, गीत, रस, वैभव, की त्रिधारा ॥ ३ ॥

दोनो परस्पर समर्पित चित्त वाले,
दो देह एक असु के रहते गुँथे से।
सक्षेम, प्रेम, रुचि, भाव, स्व व्यञ्जना में,
है एक सी उभय की रस रञ्जनाएं ॥ ४ ॥

संयोग से मुदित आत्म वियोग से भी,
होते मलीन रवि-पद्म समान दोनों।
है एक सिन्धु, सरिता अपरा अधीरा,
आश्लेष, संगम, अथाह विलीन बेला ॥ ५ ॥

दैवी विभूति, सुर पावन कल्पनाएं,
सत्कृत्य मंगल प्रदायक मोद कारी।
नाना जनानुकरणीय चरित्र शोभी,
है कल्प आश्रय स्वरूप वसुन्धरा के ॥ ६ ॥

है देव वल्लभ, सुधी, पति वंश कीर्ति,
देवांगना प्रिय वधू कुल शील साध्वी।
निश्श्रेयसभ्युदय पन्थ चिरानुगामी,
मृत्युञ्जयी सतत दम्पति हों धरा में ॥ ७ ॥

प्रेमी सुसम्मत, सहिष्णु, परोपकारी,
धेनु द्विजातिथि परायण धर्म सेवी।
संयुक्त पति वधू विष्णु रमा समान,
शूली उमा जयति दर्शन दिव्य भू में॥ ८॥

शूद्री ११

सु श्री वधू ये कुल की समज्ञा,
सेवा रता, लोक विशुद्ध धर्मा।
है मानवी - क्या कम ये किसी से,
सम्भ्रान्त नारी सुपुनीत शूद्री॥

कल्याण की मूर्ति, तिरस्कृता है,
की स्पर्श छायापि निषिद्ध धिक् धिक्।
सद्धर्म, गौ, विप्र उपासिका के,
क्या मानवी के प्रति न्याय है ये॥

राष्ट्रीय–जातीय–समाज की ये,
काया अरुग्णा रखती स चेष्टा।
जन्मी हरिः श्री पद से अतः क्यों,
पूज्या न ये तत्पद तुल्य भू में॥

सानन्द जियें, यश मान पायें,
हो मानवी सा व्यवहार सारा।
स्वश्रेय - धर्म - श्रुति तत्परा ये,
सेवा-स्वभावा जय भद्र शूद्री॥

गौर वर्णा १२

हिम, हीरक, हेम कपूर कृता,
शरद द्युति, कुन्द सरोज यथा।
तरुणी पय फेन समान, सिता,
शशि सी धरती पर है उदिता॥

वियोगिनी १३

चिर विरहिणी के बिरह की रात अश्रुल प्रात,
ज्यों वनानल की लपट में घिर खिला जल जात।

१

शैल सा मन - क्षण अनिश मन्वन्तरों सा,
श्वास में सुलगी शरद की आग।
ज्योति का दर्शन, विषैला प्राण में व्रण,
डस रहा है घन तिमिर का नाग॥
कर रही पतझड़ नयन में मधु मलय की वात,
विकच यौवन पद्म वन में अहिर्निशि हिम पात।

२

सृष्टि का कण कण प्रति क्षण कर नवोत्सव,
रश्मियों में स्वर्ग के भर गान।
व्याध सा कर वेणु मूर्च्छित मोहिनी उर,
बाँध देता इन्दु धनु शर प्राण॥
लिपट जाती आर्द्र पट सी वेदना अज्ञात,
भीगती दृढ़ उलझ वरुनी पर प्रलय बरसात।

३

खुल गये घन कुहर भय के आवरण सब,
दीख पड़ता निखिल जग मग लोक।
पार बहने में सतत चितवन तरी को,
अब उपल कारा न पाती रोक॥
आत्मा सा मुक्त मृण्मय बन्धनों का गात,
चेतना के प्रति पहर का स्वप्न अमृत स्नात।

४

थक गयी जिसको न पाया कर निकट भी,
दूर का प्रिय पास निज में लीन।
स्वयं विभु प्रतिमा स्वयं मन्दिर दयित की,
हो गई आनन्द सर की मीन॥
शाप ऋषि का अमर, वह उत्थान मय अवदात,
प्रिय विरह घन चिर मिलन की प्रीति मयि सौगात।

पुण्य पर्वारम्भ, यौवन का निकट त्योहार—
ह्री ध्वज स्मर चिन्ह की पुज चढ़ी उत्सव द्वार।
पहचानते से पथ चरण, मन पा रहा पाथेय,
कौन पाये यज्ञ में यह प्रथम पूजा श्रेय॥

झुकी पलकें नत हुई है नासिका की नोंक,
सहज छिपने की छिपाने की प्रकट है झोंक।
मदन मन्दिर दीप सी शुचि मदिर मृदु मुस्कान,
हो चली कुसुमित लता तन की नयन को ज्ञान॥

एकान्त में अनुरक्त लुक छिप खोज आत्म विभोर,
चाहना का मेघ छाया नाचता मन मोर।
सुरुचि शिविका पर चढ़ी चल मधु कसक रस वन्त,
रजत किरणों से खुली रस मुकुल वय के वृन्त॥

श्वास स्वागत गीत सी, प्रति दृष्टि में आह्वान—
मसृण पग ध्वनि में नियन्त्रण, स्वप्न में अभियान।
भर रहा मधु के कलश यह कौन अञ्चल ओट,
सहज यौवन की विवशता सी हृदय की चोट॥

मधुर नव शृङ्गार सुन्दर रूप का अभिसार,
चुरा अञ्चल गन्ध मादक पवन है बलिहार।
भ्रू धनुष पर चढ़ रहे अनगिन मदीले बाण,
सहला रहे व्रण मूक अपने अवश शावक प्राण॥

कोमल कटु ७

सम्पन्न करती कभी हास, लास, रास क्रीड़ा,
भगवती करती कभी घोर लीला विध्वंस की।
मयूर, हंस, कमलासना सिंह बाहिनी बने,
रूप अन्न पूर्णा धर लेती भद्र काली का॥

युवती ८

छूटा भ्रुवों पर धनु सप्त वर्णी
टङ्कारती चाह गुणाधरों की।
फूटे नये रङ्ग, उमङ्ग फूली,
है अङ्ग में आज अनङ्ग बेला॥

फूँकी किसी ने अनुराग वंशी,
है रोम रोम मुदित मूर्च्छना में।
उत्साह, सु स्फूर्ति, दृढ़ क्रिया से,
जागा सुधार्णव रव चेतना में॥

चाहे समर्पण अपनेपने का
उत्सर्ग पूर्वक करदे किसी को।
उत्कर्ष की रुचि, तप - साधना की,
संघर्ष की मति निखरी हिये में॥

चिन्ता, सुखों की यश, मान्यता की,
कर्त्तव्य, भावी स्थिति धर्म की है।
है सत्य का आग्रह भी अनूठा,
व्यक्तित्व का सुष्ठ विकास इष्ट॥

नाना कलाएं, लिपि, शिल्प, शास्त्र,
विद्या अनेकों, रस ग्रन्थ सीखे।
कैसे करे सद् उपयोग जो हो,
सन्तोष एवं स्व प्रकाश भू में॥

सोचे स्वरूप, वय, विभूति, काया,
क्षुद्रोद्यमों में न विनष्ट होले।
हो राष्ट्र, जाति, स्वजन, आत्म सेवा,
सम्पन्न हो हेतु यथार्थ कैसे॥

विश्वास युक्त स शुचि आप्त निष्ठा,
है खोजती सहज स्वरूपता स्व।
आदर्श हो जीवन पूर्वजा सा,
एकान्त में स्थिर युवती विचारे॥

प्रेमी सुसम्मत, सहिष्णु, परोपकारी,
धेनु द्विजातिथि परायण धर्म सेवी।
संयुक्त पति वधू विष्णु रमा समान,
शूली उमा जयति दर्शन दिव्य भू में॥ ८॥

शूद्री ११

सु श्री वधू ये कुल की समज्ञा,
सेवा रता, लोक विशुद्ध धर्मा।
है मानवी - क्या कम ये किसी से,
सम्भ्रान्त नारी सुपुनीत शूद्री॥

कल्याण की मूर्ति, तिरस्कृता है,
की स्पर्श छायापि निषिद्ध धिक् धिक्।
सद्धर्म, गौ, विप्र उपासिका के,
क्या मानवी के प्रति न्याय है ये॥

राष्ट्रीय–जातीय–समाज की ये,
काया अरुग्णा रखती स चेष्टा।
जन्मी हरिः श्री पद से अतः क्यों,
पूज्या न ये तत्पद तुल्य भू में॥

सानन्द जिये, यश मान पाये,
हो मानवी सा व्यवहार सारा।
स्वश्रेय - धर्म - श्रुति तत्परा ये,
सेवा-स्वभावा जय भद्र शूद्री॥

गौर वर्णा १२

हिम, हीरक, हेम कपूर कृता,
शरद द्युति, कुन्द सरोज यथा।
तरुणी पय फेन समान, सिता,
शशि सी धरती पर है उदिता॥

वियोगिनी १३

चिर विरहिणी के बिरह की रात अश्रुल प्रात,
ज्यों वनानल की लपट में घिर खिला जल जात।

१

शैल सा मन - क्षण अनिश मन्वन्तरों सा,
श्वास में सुलगी शरद की आग।
ज्योति का दर्शन, विषैला प्राण में व्रण,
डस रहा है घन तिमिर का नाग॥
कर रही पतझड़ नयन में मधु मलय की वात,
विकच यौवन पद्म वन में अहिर्निशि हिम पात।

२

सृष्टि का कण कण प्रति क्षण कर नवोत्सव,
रश्मियों में स्वर्ग के भर गान।
व्याध सा कर वेणु मूर्च्छित मोहिनी उर,
बाँध देता इन्दु धनु शर प्राण॥
लिपट जाती आर्द्र पट सी वेदना अज्ञात,
भीगती दृढ़ उलझ वरुनी पर प्रलय बरसात।

३

खुल गये घन कुहर भय के आवरण सब,
दीख पड़ता निखिल जग मग लोक।
पार बहने में सतत चितवन तरी को,
अब उपल कारा न पाती रोक॥
आत्मा सा मुक्त मृण्मय बन्धनों का गात,
चेतना के प्रति पहर का स्वप्न अमृत स्नात।

४

थक गयी जिसको न पाया कर निकट भी,
दूर का प्रिय पास निज में लीन।
स्वयं विभु प्रतिमा स्वयं मन्दिर दयित की,
हो गई आनन्द सर की मीन॥
शाप ऋषि का अमर, वह उत्थान मय अवदात,
प्रिय विरह घन चिर मिलन की प्रीति मयि सौगात।

संयुक्ता १४

कलत्र-प्रिय के समीप जब से,
न स्वप्न में भी वियुक्त तव से।
प्रफुल्ल मन से प्रसन्न रखती,
स्व रूप रस में निमग्न करती ॥

सुधी सचिव ज्यों न दूर नृप से,
समीप पति के तथैव तप से।
गृहस्थ करती प्रशस्त ललना,
विकास पति का प्रकाश अपना ॥

नवानुभव स्वाद-भाव-रति का,
न रुद्ध करती प्रवाह गति का।
प्रतीति सृजती स्व नित्य नव सी,
सदा श्रुत नये वसन्त रव सी ॥

न भार लगता क्षणिक उर में,
नवीन रचना समस्त घर में।
न व्यर्थ क्षति काल, शक्ति, मन की,
सु पुष्ट रहती निसर्ग जन की ॥

विनोद यश का, विलास यम का,
सुशान्ति घर की फलाप्त श्रम का।
प्रयास सब यें प्रसाद सत् के,
विधान इस के निधान हित के ॥

समृद्धि, धृति, श्री, सुधा, नियति सी,
समीप पति के अभिन्न प्रति सी।
स्वकी सुरभि सी विभूति विलसे,
न भाव द्वय का प्रभूत इससे ॥

निषेध, द्विविधा, अहं न, भय है,
कियद् गृहण का न लोभ क्रम है।
अतः न दुःख, द्वेष न भेद भ्रम है,
विभूति भव की यहाँ न कम है ॥

स्व धर्म मति से उदार चित् से,
विवेक बल से, बिचार सत् से।
समीप चिर की, सुधा सुकृत की,
सदा जयति बल्लभा स्व पति की ।।

चित्रलेखा १५

अनगिन प्याली धर रंग भरी,
प्रमुदित आगे कर चित्रपटी।
रस मयि तूली सह मुग्ध मना,
कुछ करती ध्यान विभोर वधू ।।

वहु विधि रेखाङ्कित भाव विभा,
द्युति छवि का चिन्तन, चित्त सुधा।
मृदु रुचि की मादकता छलके,
विलसित दैवी प्रतिमा, सु कला ।।

स लगन, सत्साधन, साध वती,
नव रस सिद्धा, अनुराग रँगी।
शुचि हृदयात्मा, सुनिसर्ग प्रिया,
निशि दिन डूबी रहती छवि में ।।

रत रचती दिव्य कला कृतियां,
लख पड़ती आप कलाकृति सी।
कृति सफला, मौलिक भाव परा,
जय छवि लेखा अनुराग वती

सखी १६

स्व हृदय अनुरूपा, अन्तरङ्गा, अनन्या,
सुमति, सुरुचि दात्री, भावुका, धी कुशाग्रा।
रसिक रहसि वार्त्ता, दक्ष, साध्वी. सुशीला,
हितमयि सुकुलीना सत्सखी निश्छला ये ।।

परकीया १७

भाव स्नेह विमोहन होता परकीया में रसोल्लास घन,
मधुराध्यात्म साधना में इस प्रीति मार्ग का है अनुमोदन।
कितनी भी अनिन्द्य-निरुपम हो रूपवती निज वधू नवोढ़ा,
किन्तु अधिक आकर्षण करती पुरुष हृदय का सहज परोढा॥

मधुर अनूढा की पूर्वा रति मंगल मयि पावन बन जाती,
यदि प्रेयसी स्व प्रियतम की चिर परिणीता पत्नी हो आती।
ऊढा की पर में रति, कथित न धर्म दृष्टि से उचित आचरण,
'असती व्रज्या' में परिगणना करते हैं उसकी कुलीन जन॥

परकीया ऊढा व अनूढा, उद्बोधिता व उद्बुद्धा प्रति,
लक्षिता, विदग्धा, गुप्ता, मुदिता तथा अनुशयाना, कुलटा इति।
पुनि तद्भेद स्वकीया वत् दश, है सम्भोग चतुर्विधि शीला,
कला, काव्य के हेतु रचित यह नारी का उपभोग सजीला॥

इसमें त्याग स्व सुख वान्छा का, निखिल अहं का, तन मन का सब,
गोपी प्रेम तत्व चिन्तामणि यह 'चैतन्य' भाव तत्वार्णव।
रति के आश्रय आलम्बन को भाव स्थिति है नारी नर की,
प्रिय सुखैक तात्पर्य्य प्रेम में कहीं न काम गन्ध अन्तर की॥

पर पुरुषावलम्ब वामा को नर को पर दारा अभिमर्शन,
क्षुद्र वासनाएँ मन की चिर करती निज नैतिक अधःपतन।
मोह अँधेरा वर्षा कुहु का, प्रेम प्रकाश कोटि रवि द्युति मय,
प्रेम हेतु दोनों नर नारी तन्मिथ आलम्बन अरु आश्रय॥

कवयित्री १८

यह कविता की विषय, गेय कवियों की, काव्य सुधा घन, कवि यश,
आज स्वयं कवि बनी, धरा की अमर गायिका, गीत कार चिर।
कोमल, मधुर, सरस छन्दों में गूँथ रही निज प्राण, भाव-मन,
कविता करते-हुई स्वयं यह 'कविता' कला साधना - रसनिधि॥

ब्राह्मणी १६

ब्रह्म वादिनी, ब्रह्म विद्, ब्रह्म रूपा,
निखिलानुभवा स्वस्थिता, 'स्वं' सद्विदा।
परापरा पटु, ज्ञान, विज्ञान, निभृता,
सु ब्रह्म निष्ठ - ब्राह्मणी ब्रह्मचारिणी॥

योग, याग्, परा, वैदिका ऋषि, श्रुति कवि,
त्रिकाल दर्शिनी, तत्व चिन्ता परा।
अनासक्ता, निर्विकल्पा, सुसमर्था,
तेजस्विता, महामना, ऋद्ध - सिद्धा॥

सत्व सत्वा, निर्विषया, धर्म शीला,
श्रद्धामयी, भावमयी, कर्म कुशला।
परहितरता, स्वाध्यायनिरता मुक्तचित्,
सर्वतोभद्र विग्रहा ब्राह्मणी जयति॥

मैत्रेयी, गार्गी, वाक्, अरुन्धती, श्री—
रोमशा, सूर्य्यानुसूया, विश्व वारा।
त्रिभुवन विदिता अपालादि देवीगण,
स्वशिरोभूषण द्विज कुलकी यशस्विनी॥

सब स्वार्थ, परमार्थ, श्रेय, प्रेय, साधन,
जीवन तक देती तप! फल तपोधन।
औरों के पाप, ताप, शाप, सदय हर,
करती निर्माण कल्याण त्रिभुवन का॥

अध्यात्म ज्योति पुञ्ज, भवाञ्चल भरणा,
भुवनार्चित, समर्थ, पुण्डरीक चरणा।
आप्त, पूत, तृप्त, दीप्त, शान्त, दान्त चिर,
शुभाशीष मुद्रामयि वाञ्छा कल्प तरु॥

सदाचार चिन्तामणि, व्यक्तात्मा चिर,
स्वरूप दर्शन मुकुर, महत्व प्रेरिका।
ऋषि पत्नी तरुण तपस्विनी सौम्य शुचि
वय अल्पा ज्ञान वृद्धा जय ब्राह्मणी॥

क्षत्राणी २०

निज वर निर्वाचन स्वतन्त्र चिर. स्वयम्वरा - स्वच्छन्द - श्रेष्ठ निधि,
धीर पुरुष की वीर प्रणयिनी जिसे बनाते वृद्ध हुआ विधि।
देख पुरुष छाया प्रांगण में जिसकी लज्जा से नत पलकें,
कभी मिलाकर आँख समर में भय से रिपु की छाती धड़कें॥

मधु विलासिनी कुसुम कोमला दुख पाती महि पर पग धरती,
महा सती जब वज्र कठिन बन चलती, हिलती डग मग धरती।
कांची झनक, छनक नूपुर की शिञ्जित कण्ठ हार कल कंगन,
चकित कभी सुनते उन कर में भीषण तलवारों की झनझन॥

मधुरासव प्याले भर भर लघु प्रियतम को देती कम्पित कर,
वे ही अभय पाणि सबल स्थिर भर देते रुधिरों से खप्पर।
भीष्म व्रती दृढ मति, प्रण दारुण स्वाभिमानिनी, निर्भय, अविचल,
दान, धर्म, यश, गौरव में रत पति अनुगत, ध्रुव ध्येय अचञ्चल॥

संघर्षों की अडिग शिला यह मदन रङ्ग की रसिक दामिनी,
रण स्थली की प्रलय भैरवी अन्तःपुर की ललित कामिनी।
तप में, तेज सहन करने में सेवा में उदारता में चिर,
करने में निर्वाह प्रेम का इसका है उपमान न भू पर॥

राज भवन पोषिता मुदित मन वल्कल पहिन तपोवन बसती,
आश्रम की एकान्त पालिता राज भवन में मुक्त विहरती।
इसे न ज्वाला पर कुछ भय है असुरों के गढ़ में भी पावन,
टकरा जाती महा काल से शासन में रखती अपना मन॥

इसके सुत के सिंह खिलौने ऊर्जित वाणी से बनते ध्रुव,
क्षत्राणी की निज विभूति से भारत को भरतों का गौरव।
ललित कलाओं, युद्ध, यज्ञ की यही नायिका युग अभिनय की,
चतुर्वर्ण की बल सम्बल यह चतुराश्रम स्वधर्म विनिमय की॥

इसका दिया विश्व का वैभव विप्र - धेनु मख इससे रक्षित,
जीवित सत्ता रखती जन की इसके बल प्रति धर्म आचरित।
शास्त्र, पुराणों, इतिहासों में हिल्लोरित इसका महिमार्णव,
मैं अपने असमर्थ कण्ठ से कैसे व्यक्त करूं वह गौरव॥

नैतिकता की सुर निधियों को कब से बचा रही कल्याणी,
मानवता के दिव्य द्वार की शाश्वत दृढ़ प्रहरी क्षत्राणी।
कठिन विलासी, दुष्ट समय में निज विराट मातृत्व सजाओ,
अपने रण वाले स्वरूप में जयति देवि! क्षण बाहर आओ।।

आर्याणी २१

राजती अङ्ग में वेश भूषा छटा,
राजसी चाल में, आढ्यता व्यक्त है।
धर्म में कर्म में भामिनी भीरु ये
स्वच्छन्द, चित्तार्द्र, साध्वी महोदार है।।

पालना, पोषण, देवि! उत्पादना की,
लोक संस्था इसी के चले दान से।
दीन हीनार्त्त का मात्र आधार ये,
सत्य, सेवा, पर श्रेय की साधिका।।

निश्छला, शान्त विश्वास श्रद्धामयी,
साधु, भोली, कृपालु स्वभावा–मृदु।
रुढ़ियों, रीतियों, अर्चना में रता,
विश्व के छद्म का है इसे क्या पता।।

लोक संघर्ष की वृद्धि उत्कर्ष की,
मूल है ये सभी के शुभारम्भ की।
श्रीमती, पुण्यशीला, सुभागा, सती,
ये रहे नित्य भू में, स्वभाव स्थिता।।

दाई २२

आशङ्का की मातृ प्रसव वेला में ये ही,
शुश्रूसा, सेवा कर, नव जच्चा बच्चा को।
नीरोगी, संरक्षित रखती यत्नों द्वारा,
दायी देती जीवन नव संज्ञा दोनों को।।

कुरूपा २३

शोभा की है कुछ न निकषा, रूढ़ि सिद्धान्त व्याख्या,
हो जाती जो रुचिर वह ही सुन्दरी श्रेष्ठ भू में।
पाती कोई नियति वश है क्लिष्ट काया कुरूपा,
हो धी की भी मलिन तब भी वन्दनीया वधू है॥

मालिनी २४

कोमल सजीली, चटकीली, लजीली चारु,
घूँघट में छलना मुस्काती वल खाती सी।
उपवन रचना में पटु कुसुमस्तवक, ललितहार,
तोरण, छदन, फल समूह फैलाती सी॥
भाल स्पन्दन, पाणि इङ्गित से सकुच, मुग्ध,
ग्राहक बुलाती, वस्तु भाव दरसाती सी।
रसिका-रस रीति कुशल, वार्त्ता चतुर, चपट,
मालिनी मधुर रूप रुचि में भरमाती सी॥

नापिती २५

जानती जग की सब नीति, रीति, परम्परा,
मानती सु अपनापन, सबसे हृदय में।
सबके विवाह, मृत्यु, हर्ष, शोक कृत्यों में,
रहती सहयोगिनी सहज प्रति समय में॥
निपुणा प्रदर्शन में, स्व संहानुभूति, अभिमत,
पति रति रस, हाव, भाव, पटु लय विनय में।
नापिता सरल, सुमति, व्यवहार पटु अनुभवी,
अभिन्न मति सदस्या सी सबके निलय में॥

मणिहारिणी २६

चूड़ी लेकर साथ भूरि रुचि की, त्योहार में वार में।
देती है पहिना कलत्र गण को जैसी सुहाती जिसे॥
शोभाढ्या मणिहारिणी जयति हे! नारी शुभा-शोभना।
सुस्निग्धा, व्यवहार भाव कुशला, है श्लक्ष्ण हस्ता पटु॥

रजकी २७

रजताभरण मयी, तन्वी नवेली यह,
शीष पट पोटिली, प्लुदारु लिये कर में।
स रुन झुन, रुन झुन, सङ्ग अपने रजक के,
यमुना पुलिन आई चाव भरी उर में॥
पायल, वलय, रणित, क्वणित कटि कांची,
अङ्ग है रसित पट धोने के प्रहर में।
स्व रजक प्रयास देख, लास लेख मन का,
मस्त गीत झूम उठे रजकी के स्वर में॥

श्रमिका २८

करती कठोर श्रम, तोड़ती शिला,
महि खोदती, विपुल बोझ लादती।
रहती स्वतन्त्र, नर सी उपार्जिका,
करती स्व कर्म सब स्वाभिमान से॥

पट में अपूप बासी अशाक बँधी,
हिम, धूप, बात, धर शीष टोकरी।
शिशु को कसे उदर से अवस्त्र ही,
कर में कुद्दाल खुरपी लिये चली॥

मृदुता विनष्ट तन की सुरम्यता,
गृह की वधू सुलभ सौम्यता मिटी।
भय, शील, की, सकुच हीन, मुक्त हो,
रहती समान नर के नराकृता॥

इसका श्रमानुचित ये, निसर्ग ने,
रस, रूप, मार्दव, विभूति दी इसे।
सह जो सके श्रम न दुःसहांग का,
इस रत्न हेतु गृह-शुक्ति सर्जना॥

साविका २९

नारी का स्वरूप यह अपूर्व, अभिराम नव,
शुश्रूसा, सेवा का, जन हित का आकर।
समर की विभीषिकाएं, रोगों की भीषणता,
जिसे लख, जिसके उपचार से भूशाल्पतर॥

निरय से चिकित्सालय में स्वर्ग देवी सी,
आशा, आश्वासन, आरोग्यता मूर्ति चिर।
जयति देवि ! शिर पर पाणि स्पर्श रोगी में,
सहन शक्ति, जीवन द्युति मरण शान्ति दे भर॥

धात्री ३०

जन्म मात्र देकर मुक्त हुई जननी,
पालन पय से करे धाय प्राण के समान !
प्रतीत वह तो विरानी, विमाता सी,
निसर्गतः होती यह माता यथार्थ भान।

पुत्राधिक करती सम्हाल देख भाल चिर,
विविधि विधि दुलारप्यार अपना अभिन्न जान।
जय समुदार – सुविचार की पोषण पट,
मृदु धात्री पुनीत वात्सल्य रस की निधान॥

विदुषी ३१

उच्चतम शिक्षा इसे शुभ दी गई, है हुआ इसका प्रकाश विकास सब,
जो पढ़ा उसकी इसे उपयोगिता, और इसका देश को अति लाभ है॥

ज्ञान है विज्ञान, दर्शन का इसे निपुण वहु कोमल कलाओं में हुई,
भद्र, नम्र, सुशील, सदय, सलज्ज है सादगी इसको पसन्द विशेष है॥

ध्यान से गृह कार्य करती निःसङ्कुच, साथ में स्वाध्याय निज अभ्यास के,
सात्विकी शिक्षा मिली इसको सही, बनी विदुषी यश समृद्धि समाज की॥

पनिहारिनि ३२

उर के भरे अमृत कलशों से, सरसाती रस सिन्धु मदीला।
फैलाता दिगन्त में सौरभ, मृदु मलयानिल अञ्चल नीला॥

आँखों में रस के मुक्ताहल, रिसता अंग अंग से छवि विधु।
जीवन की रागाकुल पद गति, श्वाँसों में नव यौवन का मधु॥

श्रम शीकर नीहार लसित है, बाल भानु विलसित शिर शत दल।
थिरक सिहर चलती पनघट से, छलकाती गागर से मधु जल॥

छैत्रों ऋतु बारह मासों में, सुबह शाम भरती पनघट घट।
नित्य दुपहरी के आतप में मन सा ही रीता रहता घट॥

तिरछी चितवन के घायल जब, जाते पी शीतल जल घट का।
अमर प्यास उनकी हो जाती, भूल न पाते रस पन घट का॥

करती कलश कण्ठ बन्धन सट, गुण बन्धन भव के घट घट में।
कूए पर भरती जल से घट, रूप सुधा शुचि अन्तर पट में॥

सरल ग्राम की निश्छल श्री सी, रूप राशि के वन्य स्रोत सी।
पनिहारिनि देवी पन घट की, जयति प्रेम के अमृत पोत सी॥

उड़ उड़ जाता रह रह घूँघट, खुल खुल जाता इन्दीवर मुख।
मरु से तृषित नयन युवकों के, मचल मचल पीते कल्पित सुख॥

सुलझाती झुक उलझी पायल, शिथिलाञ्चल सम्हालती रुक रुक।
थके पथिक का तम-श्रम हरती, पनिहारिनि जाती घर उत्सुक॥

करुणामयी ३३

आर्द्र स्निग्ध दृष्टि में जिसकी उमड़ रहा निश्छल मन,
क्षण क्षण बरसा करता जिसकी कोमल करुणा का घन।
रहता द्रवित सदा अहेतुकी अनुकम्पा से अन्तर,
करुणा मयि में महका करता सरल प्रेम का मधुवन॥

आभीरी ३४

लावण्य लोल ललिता नव यौवना ये,
माधुर्य्य मूर्ति रस की छवि की अनूठी।
मस्ती भरी, रति कलस्विनि केलि शीला,
जाती निकुञ्ज पथ से दधि बेचने है॥
गूँजे गिरीन्द्र जिसके पद नूपरों से,
होता पदाज्व ध्वनि से रस व्याप्त भू में।
फैली समस्त जग में छवि कौमुदी है,
सौभाग्य की सुकृत की सुख की न सीमा॥
कैसा विचित्र इसका नवनीत है जो,
लौनी निमित्त शिशु हो हरि नाचते हैं।
लक्ष्मी, उमा, रति, शची, जिसके न तुल्या,
गोपी प्रणम्य शत वार किशोर कान्ता॥
वंशी अखण्ड बजती रस की श्रुतों में,
आह्वान मौन इसका सुन व्योम व्यापी।
आनन्द की उमड़ती अविराम धारा,
सत्कीर्ति अक्षय है गुरु प्रेम की ये॥

———

ननद ३५

स्व माँ की दृग पुतली, एक यह, एक भाभी,
एकमन, एक रुचि, एक भाव वय सुकृति के।
केलि, कला, व्यवहार में सहोदरा सी युग,
अनुकूल उभय के दिव्य प्राण एक मति के॥
जीवन की, जग की, रस की, प्रेम की शिक्षा,
पाती अग जग के ज्ञान मार्ग सब प्रगति के।
साधु भाभी की सरल सखी, अनुजा तत्पति की,
चपल ऋजु ननद में प्रकट रूप रस प्रकृति के॥

मातृकक्षा ३६

गला नव स्नेह सुधा स्व प्राण की दृगाश्रुओं से स्व मलीनता धो,
क्षुधा हरी, पुष्ट करी, हितैषिणी नृ–पालिका माँ जय दुग्ध दायिनी।
यशस्विनी, तेज मयी महा सती स्व वंश रक्षार्थ पिता प्रणोदिता,
स कष्ट धात्री नव माह गर्भ की जयति समुज्वल जन्म दायिनी॥

शुचिस्मिता षड्रस सिद्ध वत्सला सु पारगा, व्यञ्जन, भोग, पाक की,
स दक्षिणा भोजन दायिनी शुभा प्रणाम देवी ! परिवेशणास्थिता।
तपस्विनी, धर्म, विवेक ऊर्जिता सदैव पूज्या, परमार्थ, साधिका,
सु बुद्धि संस्कार प्रदा समुज्वला गुरु प्रिया माँ जय आत्म पोषिका॥

विपत्ति बाधा हर, सर्व मंगला रसेश्वरी, श्री, कुल पोत तारिणी,
समर्थ, सर्वज्ञ, कृपालु, कोमला स्व इष्ट देवी जय इष्ट ह्लादिनी।
उदार चित्ता, सम भाव, निश्छला विचार शीला, परिवार चालिका,
स्व स्वसृ माँ को सुत-को समान ही लखे विमाता गत भेद, प्रीति से॥

विमातृ जा, मातृ श्वसा, तदात्म जा वधू श्वसा, श्याल वधू, पितृव्यजा,
पिता श्वसा, तद्दुहिता, श्वसात्मजा जयन्ति कान्तानुज मातृ वर्गिणी॥
पिता मही, पुष्प मयी सुलक्षणा महान्त माता महि, गल्प कोविदा,
सुतस्नुषा अन्य कलत्र भूमि की स्व मातृ कक्षा चिर वन्दनीया॥

स्व भामिनी से सुत रूप में स्वयं नृ जन्म लेते निज अंशतः सदा,
अदोष भार्य्या प्रति मातृ प्रेरणा स्वरूप 'माँ' मात्र कलत्र वर्ग का।
सदा स्वधात्री, भुवि पालिका वरा त्रिकाल पूज्या सुर सत्तमा शुभा,
समस्त देवाश्रय यज्ञ पूरिका त्रिलोक माता जय धेनु इष्ट दा॥

सरित्समुद्राञ्चल पत्तनाटवी स भारती, संस्कृति, दर्शन द्युता,
समृद्ध कोषा दिशि व्यापिनी स्तुता स्व जन्म भू माँ जय विश्व मेदिनी॥
दिगन्त व्यापी, जड़ चेतन स्थिति प्रकाशिता, दर्शित, जीव मात्र में,
अनन्त है शाश्वत लोक लोक की प्रणाम नारी जननी स्वरूपिणी॥

श्वश्रू ३७

उदार हृदया, सु विचार शीला,
सदैव अञ्चल अनुराग गीला।
स्रवित सजल करुणा मेघ नीला,
महान् ऐसी है सास घर में॥
सु शीतल स्निग्ध विशाल उर में॥

दुलार करती मनुहार करती,
अमित वधू से है प्यार करती।
स्वयं सभी देख सम्हाल करती,
महान् ऐसी है सास घर में॥
सुधाभ्र बरसाती शान्त स्वर में॥

व्यवहार निश्छल, स्वभाव निरुपम,
कभी न करती अन्याय अनियम।
न पक्ष मन में, प्यारे सभी सम,
महान् ऐसी है सास घर में॥
अपार सन्तोषस्थित अधर में॥

दुराव न्यूनाधिकता, मतान्तर,
वधू सुता सुत प्रति रति बराबर।
प्रबोध गूँथे सम्सूत्र में दृढ़,
महान् ऐसी है सास घर में॥
बहे सुधा जिसकी प्रति प्रहर में॥

जेठानी ३८

देती आदर, गेह कृत्य करती सारे परामर्श से,
छोटी जान सदैव ध्यान करती, विश्राम देती उसे।
जेठानी करती न चित्त त्रुटि को, दायित्व लेती स्वयं,
भार्य्या देवर की सगी बहिन सी आत्मीय प्यारी सखी॥

देवरानी ३९

रहती अनुकूल, प्रेम करती हृदय से,
न टाले रुचि, आज्ञा, अवज्ञा न करती।
मानती बड़ी, आदर, सत्कार करती,
रहती प्रसन्न और तुष्ट उसे रखती॥
एक साथ खाती, सोती, नित जागती,
पड़ने पर बात पक्ष उसके में रुचती।
करती न मन में दुराव दोरानी मित,
जेठानी साथ छोटी बहिन सी रहती॥

भाभी ४०

शाश्वत माँ की सरसता की सार मूर्ति सी,
भगिनी भाव की विभूति मती सुकृति सुधा।
है तो पूर्ण माँ ही वात्सल्य विलास मयी,
किन्तु साथ इसके स्वभाव में सख्य विधा॥
चरण वन्दना का अधिकार मान अविनश्वर,
मिलती वरद कर शीष रखने की सुविधा।
प्रिय भाभी हैं ये जिनका पुण्य स्नेह नद,
संतति पति अनुज हेतु बहता है शतधा॥

देवी ४१

सरल गुण मयी सौम्य शुभाचरण द्वारा,
नवादर्श भू पर करती स्थापित।
प्रेम की क्षेम की विभूतियों के साथ अति,
अलौकिक शक्तियों का होता समुद्भव।
कोई प्रतिकूल अनुकूल दुःख सुख में,
न कर पाते व्रत से विचलित उसे लव।
पापी सुरापी तक होते पवित्र लख,
अति व्यक्तित्व मयि कहाती तनु देवी तब॥

श्यालिका ४२

भोली भाली रस भीनी यह।
ललित लजीली, चपल किशोरी, जिसके नयनों में अरुणाग्रह।
मन का रसोल्लास धन करण करण, वरस रहा आनन से रह रह ॥
सरल, अनिन्द्य, रूपसी मधुर्मयि, छवि के भार श्रमित गति के गज।
जिसकी श्वासो से वय मदिरा अंग सुरभि आती बाहर बह ॥
कोमल, मीठे, सीठे स्वर में जीवन का संगीत तरंगित।
नूपुर के मादक शिञ्जन में व्यक्त हो रहा स्निग्ध अनुग्रह ॥
है विनोदिनी साध्वी साली स्वच्छ मालिती के प्रसून सी।
उसकी भाव कान्ति अनुपम शुचि, सरस स्नेह सुधा की विग्रह ॥

गायिका ४३

मधुर साधना के मन्दिर में वीणा से स्वर में वीणा पर,
तरल नयन, तन्मय गातीं तुम अन्तर मधुर भाव, रस से भर।
गीत सुधा मयि स्वर गङ्गा गति बहती पथ पाषाण भङ्ग कर,
जन जन में प्रावृट प्लावन सी ज्योतिर्मय करण करण करती चिर ॥

विरह निवेदन, गृहण, समर्पण विकल निमन्त्रण, मधुर मिलन नव,
छलक रहा नव गीत कलश से मदिर स्मृति घन, प्रेम सुधार्णव।
झंकृत प्राण, शिरा, मन; आत्मा गाते गाते गीत बनी तुम,
लय में द्वैत, द्रवित, दूरी कर स्वर में सँजो रही है प्रियतम ॥

मुग्ध हो रहा अम्बर अपने मौन किये तारक स्वर संकुल,
पृथिवी के रागारुण रज करण मचल रहे गीतों से विह्वल।
मधुर मूर्च्छना मयी तान यह आरोहण अवरोह स्पन्दन,
मर्म भेद प्राणों में चुभता मुग्ध मदिर स्वर का सम्मोहन ॥

जन्म, मरण, सुख, दुख निशि दिन में स्वप्न, जागरण, अस्त उदय में,
भर दो अपनी गीत सुधा प्रिय जीवन, जग, हिरण्य, मृण्मय में।
कौन योग दे तुम्हें गान में कण्ठ पकड़ पाते न मन्द्र स्वर ॥
तुम गाओ अविराम अनश्वर विभु त्रिभुवन, प्रभु को उर में भर ॥

नर्त्तकी ४४

१

रुनक झनक, झनन, झनन, पायल की रुन झुन,
चितवन की चिलक, झलक-भाव परक, पलक ढुलक
क्षौणि की लचक, छलक रस की, थिरक भ्रू की,
अङ्ग अङ्ग की पुलक, कला मयी मरोर अचक ।।
ताल पर धमक, मटक मुख की, गमक लय की,
रूप की चटक, फड़क नस नस की, छवि छिटक ।
हृदय की धड़क, ग्रीवा ठुमक, चमक कर की,
दमक रही बिजली सी नर्त्तकी तमक झमक ।।

२

अग जग के भाल पर, कराल काल व्याल पर,
नाच रही कामिनी उछाल स्वर्ग कन्दुक सा ।
झूम रहे दिग्दिगन्त - छाया मधु रस वसन्त,
वजता ताल मय अनन्त शब्द मन्द्र ढप सा ।।
सङ्ग सङ्ग नाचते इन्दु, सूर्य, तारा, ग्रह,
पद की ठोकर से अखिल भुवन रहा झुक सा ।
जीवन तरङ्गित, उमङ्गित निखिल यौवन नव,
नटिनी नृत्य से अचेत • पवन रहा थक सा ।।

३

भारत नाट्यम्, मनीपुरी, कत्थकी, कथाकली,
गरवादिक प्रचलित लोक नृत्य प्रान्त प्रान्त के ।
सांग, सूक्ष्म, कलामय प्रदर्शन रास लास के—
स अद्भुत शृंगार, करुण, वीर, हास्य शान्त के ।।
भात्र मुद्राएं, भाव भंगी, अभिव्यक्ति, थिरक,
सह राग संगीत, द्रुत स्पन्द लयोपान्त के ।
आनख सिख नृत्य छटा, स्वर्गिक भुवक मोहिनी,
मीरा सी मुग्ध नाचे मन्दिर में कान्त के ।।

मञ्जीर शिञ्जन से उमड़ आते हर्ष मेघ,
लेती निचोड़ द्रुत थिरक भू, गगन का रस।
नख नखत कोर अरिण पर छलके निखिल प्राण,
सु किरण दरस यावक की होता भुवन वश॥
गोट साटिका की, उड़ साधती दिगन्त छोर,
श्रम मुक्ताहल पर लोभित हंस मानस।
सुतनु कला गुरु के कला केन्द्र चारु पद,
जयति मदन गजेन्द्र के ललाट स्थित अंकुश॥

प्राचीना ४५

सरल सुशीला शुभ प्राचीना।
भगवद्भाव, भाविता, आस्तिक, सलज स सकुच कुलीना॥
गुरु जन आज्ञा कारिणि, पति सुख चिन्ता रत, व्रत लीना।
साहस-शक्ति-सत्य निष्ठा मयि आडम्बर छल हीना।
भूषण रुचिरा, गेह इन्दिरा, कुल व्यवहार प्रवीणा।
है इसमें नारीत्व प्रकाशित मानवती अमलीना॥
सादा, सीधी, शुचि, मर्य्यादित, विनय भाव से दीना।
जय नारी चिर जिसे सँजोये शुचि अतीत की वीणा॥

आधुनिका ४६

यह [प्रदर्शिनी की पुतली सी केवल चपल कामिनी कृत्रिम,
व्यस्त वाह्य तन की सज धज में अपने पन के प्रति जिसमें भ्रम।
चहल पहल में जिसका है मन शान्त साधनाओं से वञ्चित,
इधर उधर की हल चल में रत जिसके अपने कृत्य उपेक्षित॥
अनिश लक्ष के जो विरुद्ध चल पर वश विवश स्व को पाती है,
नर का कर अनुकरण, अनुशरण अपनापन खोती जाती है।
वाह्य समस्याओं में उलझी स्वयं समस्या सी है युग की,
जयति देवि ! मूर्च्छा त्यागो तुम बनो सु - समाधान इस युग की॥

गणिका ४७

जय समाज गोपुर की प्रहरी !
कर श्रृङ्गार, प्यार कृत्रिम ले, जिसकी गति गहरी,
बैठी खोल हाट तन बेचे रूप, राग रुचि गगरी।
नृत्य, गीत, वार्त्ता, विलास, रति रीति, नीति में निखरी,
क्षणोपयोग, स्वायुध प्रयोग पटु, काम कला अप्सरी ॥
कामी, धूर्त्त, सुरापी, दुर्जन, खल आते फँस फँस री—
अरु उनसे गृहस्थ, गृह, गृहिणी, सत्कुल जाते बच री,
यह नारी विष-विषयी-विष को औषधि गुण कर री ॥

ऋतुमती ४८

सृजन नवीन स्थापन रे !
वाद ऋतु समय के नारी हो जाती बिल्कुल नूतन रे !
माह माह में पाती वह नव जीवन, तन, मन, यौवन, रे !
घुल जाते इस मिष सब कल्मष होती शुद्ध-सुपावन रे !
निखिल सृष्टि में नारी केवल रहती मलिन चार दिन रे !
मावस तक मिट पूनो तक ज्यों जाता अभिनव शशि बन रे !
त्याग पुराना पन त्यों इसका होता नव अपनापन रे !
नव कृत इसके नव अन्तर में नव विभूति उन्मीलन रे !
कन्या सी होती ऋतु के पर कर सब पाप विमोचन रे !

सहयोगिनी ४९

सरिता सी बहकर कविता सी गति मयि बनिता,
सविता सी तेजोमयि लेकर निजता नीरव।
मानव की पूर्णता महत्ता का सिञ्चन कर,
करती उसमें दिव्य सिद्धियों की पथ सम्भव ॥

वीराङ्गना ५०

नव सुकुमार, सुशील, शोभना, पतिव्रता पति की अति प्यारी।
तेजस्विनी, आत्म गौरव मयि, उत्सर्गोद्यत निर्भय नारी॥
कौन कर सके इसे तिरस्कृत, किसका इसे विश्व में है डर।
इस पर दृष्टि उठा तकने का, साहस किसे ? न नत किसका शिर॥
तल्प शायिनी, अश्व रोहिणी, चूड़ी वाले कोमल कर में।
जब तलवार उठा लेती है, फिर रुक पाता कौन समर में॥
आज न यह अबला, न दुर्बला, इस पर शक्ति प्रयोग न सम्भव।
अपराजित, सम्मानित, सक्षम, यह जीवित जाग्रत नारी नव॥

घर के वाहर के कृत्यों की, शास्त्र, शस्त्र, दोनों की शिक्षा।
आवश्यक है इसे शान्ति की, क्रान्ति, समर तीनों की दीक्षा॥
कौटुम्बिक, सामाजिक, आर्थिक, संस्थाओं की व्यवस्थापिका।
नारी है सर्वाधिकारिणी, प्रति सुधार पथ की प्रदर्शिका॥
अपना सदाचार रक्षित कर, वीराङ्गना खड़ी है आगे।
जिसकी जयी अहिंसा से डर हिंसा हिंसक दोनों भागे॥
हे ! बापू के युग की नारी—तुम उत्सर्गों की पोषित हो।
तुम्हें निमन्त्रण, संघर्षों की भूमि तुम्हीं से उद्घाटित हो॥

अनुगेया

अष्टादश सर्ग

चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ! १

चिर पहचानी - चिर विश्वासी, मुझमें लय - मैं उसमें तन्मय ॥
सरस, सरल, स्वर मय, सौरभ मय,
मधुर, तरुण, कोमल, करुणामय।
प्रतिभा – आभामय, सौभग, शुभ,
अविनाशी, विजयी, अकुतोभय ॥
सलज, सजीली, अलबेली, कृश, भोली, गर्वीली, गौरव मय ॥
चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय।

अनुपम रूप, अनौखा यौवन,
शत वसन्त मय, शतदल सा तन।
मदिर दृष्टि, मुस्कान अमृत मयि,
वीणा से वाणी के गुञ्जन॥
कर देती वह रात रजत की, मधुर मिलन के दिन कञ्चन मय॥
चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय।

श्वास मलय पर झड़ झड़ पड़ते
नव प्रभात किरणों के पाटल।
जिसके गति हंसों पर दृग से,
बरस पड़ें मोती के बादल॥
सान्ध्य सुनहले पथ पर उसकी पँहचल का सङ्गीत अनामय॥
चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय।

मिली मुझे मनचाही प्रियतम,
तुच्छ हाय पर मैं मेरा पन।
रे! लघु मिट्टी के दीपक मे,
हो लेती प्रसन्न ज्योतिर्घन॥
प्रकट आज इन सङ्केतों से मुझे प्यार करती वह निश्चय॥
चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय।

नींद भी मेरी लुटी है जागरण भी खो गया है ! २

पोंछ श्याम वरुनियों से मदिर काजल रेख अपनी
अधर पर कोई नयन निज सान्ध्य घन से धो गया है।

१

लोह तम ने प्रात पारस तुहिन पीकर—
ज्योति का तम के जलधि से अमृत घट भर।
मुग्ध नभ को चकित निशि सङ्केत करती,
प्रणय की मृदु पाण्डु लिपि में लिख कुमुद वर।
विजलियों पर उठ गई है कसक मुक्त विहार करने,
आज ज्योतिर्मय पलक के तिमिर में थक सो गया है। नींद०॥

२

केश में मधुमास - वर्षा नयन में भर,
सिहरता है शिशिर होठों में लिपट कर।
अङ्ग पर छायी शरद, हेमन्त पद तल,
ग्रीष्म का वैभव लुटा है तरुण मन पर॥
ढ़ल गया है रूप मेरा, धूप छिटकी है जगत् में,
दुख बना पाथेय, पथ पर अश्रु छाया बन गया है॥नींद०॥

३

बँध गयी हैं आज बन्दनवार मौक्तिक,
भर गया है हेम मङ्गल कलश पावन।
अर्चना का देवता नर्तित नयन में,
बरसता निश्वास में निस्पन्द सुख धन।
है लुटायी रात ने चाँदी, दिवस ने स्वर्ण संकुल,
श्वास में कोई सुनहले उल्लसित क्षण पो गया है।नींद०॥

४

हो रहा त्योहार नव जीवन सृजन का,
बरसता यौवन सुधा का नील जल घन।
मधुर नव युग का नवीन वसन्त रे! मन,
धूलि का कण कण बना है आज मधुवन।
कण्ठ में संगीत मेरे प्राण में सज धज नई है,
विश्व का कोई सजीला आज मेरा होगया है।नींद०॥

मैंने तुमसे प्यार किया है ! ३

चिर सुन्दर को ज्योतिर्मय को अपने में साकार किया है ।।

१

असम्पन्न - असफल - क्षण क्षण ने,
निरवलम्ब यौवन, जीवन ने।
चिर अतृप्ति के सूनेपन ने,
एकाकी पन से थक जन ने।
आज मरण बेला में सहसा नव जीवन त्योहार किया है
मैंने तुमसे प्यार किया है,

२

युग युग का पाषाण गल गया
तरल चाँदनी सा बहता मन
खुले तिमिर बन्धन प्राणों के
खिला श्वास के मरु में मधुवन
मैंने अन्तर की धरती पर मंगल स्वर्ग उतार लिया है
मैंने तुमसे प्यार किया है

३

दिव्य वरण स्रग की मोती निधि
अरुण नयन ज्वाला में ढलती
खिली चेतना, चिति, अधरों पर
आत्मा अपना स्वर्ण परखती
धूलि कणों का शशि-दिन मणि से-तारों से शृङ्गार किया है
मैंने तुमसे प्यार किया हैं।

४

ठुकराना भी एक सहारा
और बना मझधार किनारा
शोभा - आभा के घेरे में
मेरा आज उच्च का तारा
खोया सत्य विश्व का मैंने तुममें लुका निहार लिया है
मैंने तुमसे प्यार किया है

५

अपने पन का मधु प्राणों का,
चरण पावणा लिया सहज बुन।
मृग शावक सा यह चञ्चल मन,
बना तुम्हारा मृग चर्मासन।
भारहीन आधार युक्त हो - अपना रूप निहार लिया है ॥मैंने०॥

६

प्रायश्चित - पश्चातापों का,
अभिशापों का संतापों का।
यह मेरापन धुल कर उज्वल,
लघु नापों का मित मापों का।
भग्न खण्डहर पर ही मैंने सृजन स्वर्ण संसार किया है ॥मैंने०॥

७

एक मधुर सङ्गीत बना मैं,
थिरक रहा आनन्द तुम्हारा।
सृष्टि बनी सौदर्य पूर्णिमा,
प्रकृति शान्ति की ज्योतिधारा।
अखिल विश्व की प्रति दूरी को मैंने निकट पुकार लिया है ॥मैंने०॥

८

चपल कल्पना की अप्सरियाँ,
आशा की पहने पग पायल।
स्वप्नों के घुँघरू गिराती,
नाच रहीं चाहों से चञ्चल।
मेरे खेवनहार कृपा कर तुम मुझे उबार लिया है।
मैंने तुनसे प्यार किया है॥

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ! ४

१

मिट चले युग के अँधेरे
हो तनिक ही पास तेरे।
सिन्धु में घन में गरजता है अमिट उल्लास मन का ॥
त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

२

राग रञ्जित पुतलियों में,
मधुर चित्राधार बन मैं।
ढल गया स्वप्निल पलक पर प्रात प्रिय के पद्म वन का
त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

३

दूर से पहचान पन्थी,
उड़ पड़े लघु प्राण पञ्छी।
पार पर ही प्यार सहसा पागया आधार उनका
त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

४

प्राण में तू चिर समायी,
पर न तृष्णा बाँध पायी।
श्वास पीकर जी रही है स्वाति कण तुझ अमृत घन का
त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

विजन वन में खुल गई है बात मन की ! ५

१

नयन के नव नील नभ में,
अश्रु तारक हार पहने।
उठा अरुणोदय निशा को,
अङ्क भर जब प्यार करने।
नीड़ में सङ्केत था कुछ—
होठ में पग चाप उनके आगमन की ।। विजन०।।

२

प्राण छूकर उँगलियों से,
हँस रही मेरी अपरिचित।
हेम हिम आलोक पीकर,
जी उठे हैं स्वप्न विस्मृत।
सुख समाता है न मन में
दृग छिपा पाते न लौ इस नव लगन की ।। विजन० ।।

३

दूल अम्बर के अधर पर,
चिर अमर विश्वास निखरा।
विश्व शत दल पर अलख की,
आत्मा का हास उतरा।
इन्दु धनु मुख पर रँगा है
साँझ फूली अंग में उस अरुण घन की ।। विजन० ।।

४

रात कर शृंगार आयी,
दिन बना है आज दूलह।
तट नदी में बह रहा है,
लहर का पाने अनुग्रह।
खिल रहा यौवन मुकुल मन,
स्वर्ग से उतरी कनक बेला मिलन की ।। विजन० ।।

सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ ! ६

१

पथिक ने क्षण प्यार के,
अम्बार अम्बर तक उठाये।
दृष्टि में जब मुग्ध मन के,
दीप अगणित जगमगाये।
छिप गयीं तुम कर रूपहली—
रात में मधु - विधु इशारे।
पास लाये पर मुझे,
चुप चाप ये पग चिह्न तारे।
सकुच बैठी निशि,
सजा कर हाट तारक मोतियों की।
दिन उन्हें क्रय कर,
तुम्हारी बाट पर फैला गया है।
वे चुभेंगे पन्थ में पग नयन से कैसे हटादूँ।
सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ॥

२

चल वरूनी पर थकित इस,
प्रीति के सब गीत मधुरिम।
जम रहा मुझमें तुहिन सा—
आज प्रिय का हास अरुणिम।
ओस कण से प्राण पिघले,
केतकी की मेखला में।
बँध गई प्रत्येक गति मम,
कञ्ज चितवन अर्गला में।
लय हुए जिनकी प्रलय में,
हर्ष छवि के वरद यौवन।
पल रहे ढुल तरल जिन में,
मधुर करुणा के अरुण घन।
उन चमकते आँसुओं की आग मैं कैसे बुझादूँ।
सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ॥

मधुर तुम्हारा प्यार चाहिये ! ७

इस जग में जीवित रहने को सुदृढ़ एक आधार चाहिये।

१

मन में व्यथा स्वप्न आँखों में,
प्राणों में छविनिधि लहराया।
कब आये कब लौट गये तुम,
मन अब तक भी जान न पाया ॥
इन भूले विश्वासों को प्रिय, तू समीप साकार चाहिये। मधुर०

२

अन्धकार में क्या फैला है,
अरुण रश्मियों का घूँघट कर।
नव विकास की निर्झरिणी में,
तिरता यह कैसा इन्दीवर।
सत्य लोक का-सत्व स्वर्ग का - मुझे यहाँ इस पार चाहिये ॥ मधुर०

३

खेल खेल में तुमने हँस कर,
छोड़ी सरि पर कागद तरणी।
विपुल भार ले सहज चढ़ा मैं,
पार उतरने भव वैतरिणी ॥
तुच्छ अन्त को तुझ अनन्त में मिलने का अधिकार चाहिये ॥ मधुर०

४

रीते लघु अचेत जीवन को,
निज कोमल करुणा की मधु निधि।
चिर अतृप्त आकुल प्राणों को,
दो अपना चेतन अमृतोदधि।
मुरझायी दरिद्र आँखों को मोती का श्रृङ्गार चाहिये ॥ मधुर०

मैंने तुम्हें पुकारा है ! ८

विपुल भार अपने पन का सब थक कर - विवश उतारा है !

१

लहरों की घातों से पीड़ित,
एक अचेत विन्दु मुक्ताहल।
पनप रहा दृग की ज्वाला में,
श्वासों की पीकर मलयानिल।
विरत, श्रात, उसकी घन द्युति में लीन न हो जीवन तारा है॥ मैंने०

२

नवाकार, श्रृङ्गार नया कर,
एकाकार मुझे करने दो।
दो आधार, भार मेरा ले,
सुधि, बुधि, हार प्यार करने दो।
तुझ असीम में उड़ चलने को मन ने पङ्ख पसारा है॥ मैंने०

३

छोड़ शिविर का शान्त सहारा,
डुबा विश्व का कोर किनारा।
तोड़ तिमिर की लोह अर्गला,
फोड़ हृदय की पाहन कारा।
तुझ आनन्द सिन्धु में मिलने बहती जीवन धारा है ! मैंने०

४

लाँघ चुका मैं अपनी सीमा,
दूर अभी तुम, प्रिय तव सीमा।
अनिल, अरुण, ग्रह, चरण पराजित—
फिर भी मम प्रति द्रुत पग धीमा।
सदय ! तुम्हीं चल आओ, मम प्रति पल,बल, सम्बल हारा है ! मैंने०

क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है ! ६

सखि ! मैंने अपनापन, यौवन, मन, जीवन, तन वार दिया है।

१

पत्थर को भगवान् बनाकर—
प्रण से प्राण-सिन्धु सीकर से।
मन से मान, सत्य स्वप्नों से,
अभिशापों को बदला वर से।
तम पर ज्योति - अश्रु पावक पर-सुमन शूल पर सार दिया है
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है ?

२

फूट गई मेरे प्राणों में—
तेरी रूप सुधा की मटकी।
डूब गई आनन्द चेतना,
अश्रु प्रतिभ दृग में घट घट की।
सार हीन जर्जर तन्त्री पर अनहद स्वर संचार किया है !
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है !

३

खोल दिया लहरों पर लंगर,
बाधाओं पर अडिग किया पग।
दुख की शुचि निर्धूम अनल से,
सृजन हुआ मानव का नव युग।
नयी दिशाओं के नव पथ पर प्रिय ने नव अवतार लिया है
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है

४

नाता तोड़ अपर से पर से—
जिसके लिये चला हूँ घर से।
लाज सकुच तज उसे जोड़ लूँ,
जी भर एक बार अन्तर से।
वह 'विराट' मैं 'लघु' हूँ फिर भी मैंने उससे प्यार किया है।
सखि ! मैंने अपनापन, यौवन, मन जीवन, तन वार दिया है ॥ क्षुद्र० ॥

मेरा चिर विश्वास मधुर प्रिय क्रूर नहीं है ! १०

१

शिथिल हुए मन के सब पहरे
घाव हो रहे क्षण क्षण गहरे
कौन कह रहा भीतर से द्रुत
इतना सहा और क्षण सह रे !
गीतों के पङ्खों से उड़ कर
बहुत पार हो चुकी स्व मञ्जिल अब कुछ ज्यादा दूर नहीं है ॥मेरा०॥

२

वह प्रस्तुत चल कर आने को
जाकर 'अहं' रोक आती है।
मैं की मद घूर्णित चितवन से
नव स्निग्ध वह डर जाती है ॥
स्वाभिमान उसका भी तो कुछ
क्यों सुहाग मांगे तुमसे क्या उसके घर सिन्दूर नहीं है ! ॥मेरा०॥

३

उसकी प्राप्ति अभीष्ट आज यदि
तो अपनेपन का घन तोलो।
अय भक्षी बल केवल जल है
निज मन में मृग दृग में घोलो ॥
ओ मेरे है उचित न यह हट
उसका क्षण परिहार कर सके 'मैं' इतनी भर पूर नहीं है ॥मेरा०॥

४

नव यौवन श्रृङ्गार मिलन का
नव रूपाभिसार जीवन का
उसके द्वार आज करना है
अंगराग तन, मन, निज पन का
'मैं' का देख विसर्जन 'तुम' में
बढ़ता जाता गाता गाता पन्थी पन्थ विसूर नहीं है ॥मेरा०॥

? ??

१

उन सघन श्याम वर्षा की मधु रातों में,
मृदु मन्द्र मेघ वाणी में तुम्हें पुकारा।
फिर नव वसन्त के मधुर सुनहले दिन भी,
पिक पञ्चम स्वर में बुला बुला कर हारा।

२

कर शिशिर प्रात में मन्द पवन मर्मर से,
आह्वान तुम्हारा लहरों की कल कल में।
हेमन्त समय निर्झर ध्वनि, सिन्धु गरज में,
आने को कहता रहा अथक प्रति पल में।

३

तप तृत ग्रीष्म की कठिन दुपहरी में कृश,
अपने ही विकल स्वरों में कर सम्बोधन।
री ! मधुर शरद पूनम की शुभ सन्ध्या में,
कोटिक खग कण्ठों में थे स्वरित निमन्त्रण।

४

हंसों की पग ध्वनि, शिखी नृत्य की लय भी,
चिर मुग्ध कमल वन में भोंरों का गुञ्जन।
इस ओर तनिक चलने का वृत्त न देती,
प्रेरित करती क्या तनिक न उर की धड़कन।

५

पीडाकुल वंशी नाद, वीन की झंकृति,
प्रतिमा कारों की छैनी का कोलाहल।
कवि की कविताओं, गायक के गीतों से,
संदेश प्रतीक्षा का न अभी पाया मिल ?।

६

फूलों से मैंने छिप कर किये इशारे,
प्रत्येक किरण से और लहर से इङ्गित।
संकेत किया अम्बर में सुरधनु के मिष,
फिर भी मैं तव दर्शन के सुख से वञ्चित।

७

दीपावलि दीप जगा कर थी आशा में,
हा, व्यर्थ पड़ा रह गया फाग का किंशुक।
होली, हरियाली, तीज, दशहरा, अगहन,
दिन, माह, प्रहर, बीते पथ लखते अपलक॥

८

श्वांसों में, प्राणों में निज शिरा शिरा में,
बहु भाँति नाम मैं तेरा रोता गाता।
चिर मधुर कहाँ हो छिपी ! तुम्हारी कोमल,
पगचाप न मैं इस पार कहीं सुन पाता॥

९

चढ़ चन्द्र यान पर तुम्हें खोज देखा है,
सूरज में लुक छिप छान लिये हैं अग जग।
नक्षत्र ग्रहों के दीप पाणि में लेकर,
सब अन्धकार के लोक लखे कर जग मग॥

१०

सागर तल शोध लिया कर बड़बा ज्योतित,
ज्वाला मुखि दीपित करके शैल धरातल।
दावाग्नि प्रभा में अनुसंधान वनों का,
लख लिये अश्रु द्युति में सबके दृग उरतल॥

११

री ! उठा सृष्टि के सप्तावरण करों से,
फिर झाँक झाँक करके तत्वों के भीतर।
आत्मा की दीप शिखा की चिर आभा में,
मैं विकल व्यग्र हूँ निज में तुम्हें न पाकर॥

१२

संगीत विश्व का मैंने तुम्हें सुनाया,
सौन्दर्य लोक का तुमको रिझा न पाया।
तन, मन, धन, जन, जीवन की चिर पूजा से,
क्या मेरे प्रति सन्तोष न तुमको आया॥

१३

मैं इसी पार पर अमृत मिलन को उत्सुक,
प्रिय ! इसी रूप में चिर अभीष्ट तव दर्शन ।
मैं इसी मर्त्य मिट्टी के पङ्किल कर से,
क्षण उठा सकूँ तव चरण रेणु कण पावन ।

१४

बस एक बार कर कृपा प्राण में मन में,
तुम आजाओ मेरे यौवन मधुवन में ।
मैं धवल धूलि कण बन पथ पर बिछ जाउँ,
तुम हेम पद्म पद चिह्नित कर दो उन में ।।

१५

धुल उष्ण अश्रु से हो पग श्रान्ति निवारण,
तुम आओ झंकृत करतीं पग की पायल ।
जड़ चेतन भूत जगत् में हो यह उत्सव,
गुँथ एक सूत्र में गये युग्म मुक्ताहल ।

१६

हूँ एक अकिञ्चन दीन द्वार का याचक,
पर प्रेम सभी का तुल्य धनी अभिमानी ।
हो सकुच आगमन में तो सदय बुला लो,
तुम लोक पूज्य त्रिभवन को मधु की दानी ।

मोतियों की रात व्रीडित, सकुचता मङ्गल सवेरा १२

१

स्वर्ण स्वप्नों के सुनहले रूप में ढल,
बना वह अङ्गार ही शृङ्गार सुन्दर।
प्रखर मेरे अश्रु की बड़वा विमोहित,
हँस रही है पूर्णिमा के चन्द्रमा पर॥
बन गया तूफान मेरा चरण नूपुर,
तुमुल हाहा कार पिक का पञ्चम स्वर।
अङ्क में ऋतुराज के झंझा सहमती—
कुमुद के भुज बन्ध में है मुदित उल्कापात मेरा॥ मोतियों० ॥

२

हृदय पुलकित खोल ज्वाला मुखी अगणित,
चूम दावानल हृदय पुलकित बने चिर।
श्वास विद्युत मेघ को बन्द बना कर,
थिरकते कुन्तल हलाहल को अमृत कर।
प्राण पर रीझी प्रलय निर्माण लेकर,
जग गया अवसान मेरा उदय बन कर।
निरय नन्दन बन गया है प्राण में रे!।
लिख रहा सौभाग्य मेरा आपदाओं का चितेरा॥ मोतियों० ॥

३

शान्ति दुलराते सभी सङ्घर्ष विप्लव,
विघ्न भीषण बन गया है शकुन अभिनव।
कुशल मारण मन्त्र से मेरी अनुष्ठित,
खण्डहर पर उठा वैभव,भवन,नव भव।
कठिन मन का असुर निःश्रेयस लिये है,
चेतना तम अभ्युदय की द्युति पिये है।
नाचती है सुप्ति सुन्दर जागरण सह,
वासना अहि तज गरुण से खेलता मानव सपेरा।
मोतियों की रात व्रीड़ित सकुचता मङ्गल सवेरा॥

४

तुल गया है सिन्धु मेरे आँसुओं पर,
नप गया है अँगुलियों से नील अम्बर।
आज मेरे जानु तक वामन हिमालय,
चुक गयी है धरा मेरे चरण तल पर।
जगे मेरी आरती में इन्दु उडु रवि,
बनी हेय कुरूपता पीयूष मयि छवि।
आज दुर्बलता प्रबल अस्तित्व वाली
चैन लेगा क्या मुझे भगवान् कर वरदान तेरा,
मोतियों की रात व्रीड़ित सकुचता मंगल सवेरा।

जय भारत-भारती भुवन की विभु नारी रस गीते !

१

घर्षित भाल किये सुर सम्मुख,
द्वार द्वार घूमे भरमाकर।
झाँके घर घर, अग जग खोजे,
पथ पथ बैठे अलख जगा कर।
जिसके हेतु अमित तन, जीवन, बहु सुयोग, युग बीते।।जय०।।

२

त्रिभुवन सुर सम्पदा सकल निधि,
तुच्छ जिसे लख प्रति सम्मोहन।
रच न सका जिसकी उपमा विधि,
बाँध न पाया जिसे निखिल मन।
जिसकी एक झलक ने जग के अघ, तम, षड्रिपु जीते।।जय०।।

३

अविनश्वर; अविलम्ब, अयाचित,
दिया सुदृढ़ अवलम्ब कृपा कर।
जिसकी एक दृष्टि से जग का,
रूप, गीत, रस आया भीतर।
मन के तृषित, गगन प्याले भर क्षण क्षण नव रस पीते

४

प्राणाजिर में वाञ्छा सुर तरु,
लसित नयन में प्रेम यज्ञ चरु।
पाहन गला, बीज रोपित कर,
सींच गयी विस्तृत जीवन मरु।
सुलभ मधुर सन्तोष रहे अब भव के कोष न रीते ।।
जय भारत भारती भुवन की विभु नारी रस गीते ।।

नारी

एकोनविंशति सर्ग

१

शुचि, सुकुमार, इन्दिरा मन्दिर, सुन्दर, यश मन्दर अवनीके,
यावक रञ्जित, नूपुर शिञ्जित, सुर वन्दित, धन सुधि अपनी के।
चिदानन्द मय, छवि इन्दीवर, सिन्धुर गति, फल शुभ करणी के,
जय नखेन्दु कुल-द्यु तिल-सुतनु के चरण द्वन्द-तट जन तरणी के॥

२

भाव, समर्पण, श्रद्धा, प्रत्यय, कल्प कृपा मयि, क्षेम, प्रेम ध्वज,
मय प्रमाण - अनुमान - ज्ञान - गुण-रस सिद्धा अभिमान भूमि निज।
परित्राण, परिमाण, प्राण मय स्वनिर्माण, निर्वाण दिव्य तम,
जय नारी नीरव के परिणत निखिल जीव कल्याण कल्प द्रुम॥

३

लोमालक मिष धूम्रागरु घन, यौवन अग्नि शिखा, छवि घृत शुभ,
वाञ्छा समिधा, इष्ट आत्मा, श्रुवा पाणि, मन शुचि वेदी प्रभ।
दृग ऋत्विज, रुचि बलि, मति मण्डप, प्रेमाहूति, श्वास श्रुति सारी,
युग कुच कलशों में चरु संयुत चेतन यज्ञ मूर्ति जय नारी॥

४

मन मानस से स्वयं अवतरित, मथित क्षीर सागर से समुदित,
ब्रह्म कमण्डलु, यज्ञकुण्ड, से धरती के अन्तर से आगत।
नारायण ऋषि की तपः सृजा, हिम नगात्मजा, कानन ललना,
पुञ्जी भूत शक्ति ऋषि गण की, तनु सुर शिल्पी की रस रचना॥

५

सुसौन्दर्य्य - माधुर्य्य रूप में वीर्य्य और ऐश्वर्य्य उभय का,
शुचि प्रकाश नारीत्व - सहज जो- भाव स्नेह विकास हृदय का।
सुतनु मधुरता कोमलता में महाशक्ति की अनहद लीला,
पुरुष और पौरुष की जननी नारी का व्यक्तित्व सजीला॥

६

रुरु ने की उत्सर्ग आयु निज- जिस पर रवि शशि ने अनन्त पग,
किये निरखने जिसे चार मुख शिव ने सुरपति ने सहस्र दृग।
आग्नीध्र, पुरुरवा, तपे बहु, पुरुषोत्तम जिसके रस याचक,
नारी की सौदर्य्य सुधा से - हुए ब्रह्म सुधिमय उद्दालक॥

७

नारी में पर निज का भेद न- कर्म क्षेत्र में हिंसा भाजन,
अन्तराय संकल्प सिद्धि में तद्विवेक पर है न आवरण।
जीवन के निगूढ़-तथ्यों की नारी सजग प्रतिष्ठा वेदी,
शक्ति, शान्ति, सुख, छवि, रति, मृदु-मधु, रस, लय, रुचि इसमें इसने दी॥

८

दण्डक वन ऋषि वृन्द तपोधन - पूर्ण पुरुष रस का आस्वादन-
करने दिव्य कलत्र रूप में श्रुतियों का साकार अवतरण।
अच्युत वर पाने रवि तनया, सुर सरि करने शाप विमोचन,
नारी मिष शोभाओं ने मिल ग्रहण किया एकाश्रयैक तन॥

९

सत्यं, शिवं, सुन्दरं मय में रस अनुभूत हुआ अविकारी,
पुनि सविलास प्रकाश प्रकट को नाम दिया वपु मय को नारी।
लोक गीत में प्रथम प्रमुख तुम, कथा, व्यथा, वृत्तों में आगे,
पहले देवी क्योंकि देव सब नारी ज्योतिर्मय में जागे॥

१०

प्रीति वर्म, आनन्द ढ़ाल - तव - महोत्कर्ष निज कुशल सुहानी,
शिरस्त्राण सम्मान, कृपाबल, पाणिस्थिति तुम स्वयं भवानी।
सैनिक व्यूह विविध सेवाएं विषम दुर्ग नारीत्व तुम्हारा,
षड्रिपु-रिपु नर अन्तर रण में तुम सह जीता तुम बिन हारा॥

११

अति अतथ्य की तथ्य निरामय, अज अमूर्त्त की मूर्त्त मनोज्ञा,
कल्पित का प्रत्यक्ष सावयव, सब असार की सार समज्ञा।
जीवित, जाग्रत द्युति विनाश में दर्शित सृजन-विभूति सुचेता,
तुम विराट की व्यास वृत्त अणि, धन्य तुम्हें रच लोक प्रणेता॥

१२

पितृ लोक से पुण्य समाहित, पितरों की तृप्तात्मा उतरी,
सिद्धों की देवी प्रकटित या निखिल सिद्धियों की भर गगरी।
निज सौभाग्य सिन्धु की लक्ष्मी सह विभूतियों की वर माला,
चौदह भुवनों की शोभा की अक्षय कोश खड़ी यह बाला॥

१३

मानव के स्व प्रबुद्ध बुद्ध में यह क्षमत्व प्रोज्वल प्रज्ञा सी,
अन्तर के आह्लाद प्लवन में संज्ञा मयि उपकृत आज्ञा सी।
अनासक्त ह्लादिनी, प्रकृति तुम चेतन पुरुष तुम्हीं से पूरा,
योग - क्षेम - स्वप्रेम साधिका नारी बिन संसार अधूरा॥

१४

चिति चकोर की चन्द्र कला सी, स्वाति तृषित चातक की हेला,
आत्म प्रात की पद्म वन श्री, मर्त्य स्वर्ग की सुमिलन वेला।
भव उर मरु की सरस निर्झरी भाग्य गगन की शरद घटा सी,
तुम अपुरुष कवि काव्य सरसि के पारिजात की सान्ध्य छटा सी॥

१५

मधु निशीथिनी ने अञ्चल में वात पुलक दीपक दुलराया,
डुल प्रभात तारक प्राची के अरुण अङ्क में लुक मुस्काया।
नारी के उदयाद्रि शिखर पर होता मानव का अरुणोदय,
मानव में होता नारी के विशद स्वरूप रूप का विनिमय॥

१६

गंगा यमुना हार, मुकुट तुहिनाचल, कांची गिरि विन्ध्याचल,
सागर प्रक्षालित चरणों की कृष्णा कावेरी मृदु पायल।
उस विराट भारत जननी की नारी सत्प्रतीक जिसमें सब,
दर्शित राष्ट्र, व्यक्ति, संस्कृति, श्रुति, कला, भारती, प्रकृति सावयव॥

१७

निज अखण्ड अवलम्ब कल्पमय, लोक पथिक तनु पन्थ अपरिमित,
सङ्घर्षों से थकित निखिल जनकी विश्राम शिविर रुचि सज्जित।
रंग, भूमि मानव अन्तर के अमृत दीप से प्रतिभ उल्लसित,
तुम निकटस्थ-ध्येय ध्रुव जिस पर गति, प्रयास, प्रति प्रगति पराजित॥

१८

तपः पूत नारी आश्रम में नष्ट विषमता दिन रजनी की,
अजा सिंहिनी की गोदी में पा लेती ममता जननी की।
भव माया मोहिनी करों पर काञ्चन तन में निभृत सुधा सी,
नर वाराह तीक्ष्ण दंष्ट्रा में रोमाञ्चित रक्षित वसुधा सी॥

१९

मूर्ति पूज्य-स्वतिक सत्वों की, निज कृतित्व-व्यक्तित्व पूरिका,
तत्वज्ञों की स्वतः स्फूर्ति सी जन महत्त्व अस्तित्व साधिका।
सबले! त्रिपुर दलनि! त्रिताप हर! आप्त पूत अनुभूति रसों की,
त्रिकुल तारिणी, निधि त्रिलोक की आत्म विभूति श्रेष्ठ पुरुषों की॥

२०

जिसके लोम लोम से बहती-शुचि, सौन्दर्य्य, गीत, की स्रोती,
प्रेम मयी नारी बरसाती आई जग पर मंगल मोती।
दीख रहा बाहर गिरि जितना उससे कहीं अधिक भू भीतर,
अब तक की समस्त दर्शित तनु का अनन्त आस्वाद्य, अभा स्वर॥

२१

कनक दण्ड दैवी शासन का पाणिच्युत चिन्मय हो आया,
नारी से शुचि शुक्ल पक्ष सा निज विकास संसृति ने पाया—।
षड्रस, नवरस, दिव्य चतूरस कण कण ने जीवन के सब रस,
प्रति निर्य्यास मधुर करती तुझ उज्वल रस मयि की रुचि पायस॥

२२

देखा सुना युगों से हमने एक पुरुष अव्यय अवतारी,
शेष सृष्टि की प्रति आत्मा में व्याप्त हो रही केवल नारी।
प्रकृति, भूत, ब्रह्माण्ड, पिण्ड को सम्बोधन करते हम माया,
कियत् रसिक भावुक पथिकों ने हरि को भी नारी कह गाया॥

२३

सगिरा, सरस, समीप, समविना, निर्मल सुरभित सिंधु सुधा का,
तनु, निरभ्र शरद्मण्डल मय शशि नभ सी अपङ्क वसुधा का।
लीला सा कर रहा लास मय तन्मय लोक विलास लजीला,
इसके मिष घन हास भुवन का विकच खड़ा धर रूप सजीला॥

२४

वह सर्वांश सदर्प ग्रहण रत, इसका दान, न विनय अधूरी,
मिट मिट होता शून्य रिक्त नर, शतोत्सर्ग कर नारी पूरी।
हम अभाव में अप्रतिभ आकुल, पर उसमें ही निखरी नारी,
तुम पा चुकीं पूर्णतः निज में जिसके हुए न हम अधिकारी॥

२५

जिस घर तनु का ध्यान मान है ऋद्धि, सिद्धि, निधि वृद्धि वही है,
चिर समृद्धि - दैवी विभूतियाँ, शक्ति, शुद्धि अन्यत्र नहीं है।
विप्र, धेनु, दिक्पाल, पञ्चसुर अन्यदेव, गृह, पितर, वसु अनिश,
करें स्व पूजा ग्रहण अवस्थित नारी में नारी पूजा मिष॥

२६

अति उच्चाभिलाप लतिका को, विस्तृत कर भुवि पर फैलाती,
जन की श्वासों में आशामयि, जीने का सन्तोष सजाती।
अपना अमृत अनन्त दान कर सब का हालाहल है पीये,
सकल तपस्याओं के तेजों को निज में आश्रय है दीये ॥

२७

जीवन के सङ्घर्ष पुरुष के साथ सभी झेले दुख पाये,
पथ कण्टक पलकों से चुन कर दृग से नीलोत्पल बिखराये।
सुख की दुख की हानि लाभ की जीवन और मरण की साथी,
यज्ञ कुण्ड से साथ चली पर चितारोह तक रुकी कहाँ थी ॥

२८

पी विराग, अनुराग, राग, रस, अमृत, गरल, मादक, मृदु हाला,
सुख, दुख, श्रान्ति, उपेक्षा पीकर, मृदु कटु ऋजु समता का प्याला।
मन में गिरि, दृग में सागर भर, भव जय कर अपने में हारी,
अहा! कौन से दिव्य धाम से आई है यह अद्‌भुत नारी ॥

२९

तत्व वेत्ता गण, योगी जन-देख समझ पहिचान न पाये,
अति सर्वज्ञ, रहस रस ज्ञाता, खोज खोज भ्रम में भरमाये।
जल, थल, गगन, पवन, द्युति विजयी, अबतक जिसके निकट न आये,
उसी आत्मा को नारी निज रसानन्द-मय में दरसाये ॥

३०

चिति यमुना तट-मग्न सुतनु की अहं - आवरण गगरी कोरी,
निश्छल आत्म विवेक कुञ्ज में होती मन माखन की चोरी।
सुनें अहर्निशि श्रुत रहस्यमय-इसके श्रुत अनन्त वेणु ध्वनि,
तनु रस प्राण गोपियों में घिर नर्चित ब्रह्म रसिक चूड़ामणि ॥

३१

प्रात किरण-कलरव, स ओस कण, मधुपार्चित कुङ्कुम की क्यारी,
बन्दनवार नियति मन्दिर की, जीवन की वसन्त फुलवारी।
जाग्रत सिद्ध स्व योग पीठ के अधिष्ठात्र की अभय पताका,
नारी-पद रज चन्दन रवि मिस नील गगन ने शिर पर आँका ॥

३२

जिसके बहु अवतार अंश अणु, तेज विलास, प्रकाश, प्रकट उस,
सैश्वर्य्य - माधुर्य्य, पूर्ण अवतारी की ह्लादिनी इष्ट रस।
उदधि लहर कणिका जो विश्वात्मा तट पर विखरी क्षत अंशुल,
उसकी किरण मूर्ति प्रति तनु जो चिर निजात्म मण्डलमें झिलमिल॥

३३

क्षण क्षण हम नव जीवन पाते, हार हार कर जीत हमारी,
तृण सी नत तरु सी सहिष्णु अति-अग जग में सर्वोपरि नारी।
कर अनुकूल सहज सर्वोदय, उन्नति द्वार चतुर्दिक खुलता,
दोनों कूल कमल मृदु दो पद मध्य बहे सुख की सुर सरिता॥

३४

नभ शिर, महि कटि, दिशि कर, गिरि कुच, कुसूम रोम, मुख शशि, उर सागर
खग नूपुर कांची स्रग-सरिता, वलय विपिन, शुचि पद इन्दीवर।
उषा मांग, सुहाग विन्दु रवि, तारक मुक्ता स्रग, तिमिरालक,
नय निसर्ग नारी तन द्युति दिन, रजनी अञ्जन, सन्ध्या यावक॥

३५

पति में प्राप्त, परम पति-करके, सहज परम पति में पति पाके,
नारी ने पत्थर के जग में खोल दिये हैं स्रोत सुधा के।
इसने पहचाना मानव को जी भर उसको प्यार किया है,
निज अमूल्य, निधियों से उसकी प्रतिभा का शृङ्गार किया है॥

३६

त्रिन्दु मयी यह विन्दु विन्दु में अमृत भरे ऋक् छन्द लिये है,
सिन्धुर गति मयि, रूप सिन्धु में स्वारविन्द के इन्दु पिये है।
शरद कौमुदी सा विलास मय हास भरा उल्लास छिपाये,
रूप नदनु, वय सुरधनु तनु ने मदन, वदन से भुवन लुभाये॥

३७

चिन्ता, चाह, चेतना में जो वर्षा की भीगी ऊषा सी,
स्वप्न, कल्पनाओं में जिसकी स्मृति सागर के तीर तृषा सी।
जिसके चिन्तन के अभाव में सब अपदार्थ, समस्त विरस है,
नारी ही यौवन का सुख है - नारी ही जीवन का रस है॥

३८

निन्दारोप, अवज्ञा-कर्त्ता की कुरूढ़ि मयि, दृष्टि संकुचित,
निज दुर्बलता, अघ तामस पर-पटाक्षेप की यह विधि अनुचित।
है शत गुणित विशेष लाभ मयि सुतनु कल्प तरु सुरभी सुर से,
नारी विषयक कथन करें हम शान्त-स्वस्थ, विभु निर्मल उर से॥

३९

तनु की धैर्योत्सर्ग-साधना-से शिञ्जित निज जय का डङ्का,
कर उनका अपमान राव में सहज मिली सोने की लङ्का।
नहुष अवज्ञा कर स्वर्ग च्युत, कुरु कुल ध्वंश, हुए हरि पत्थर,
पूजित-कीर्तित अग जग में कपि नारी के वर से अजरामर॥

४०

मा की सतत परीक्षा है तनु - सफल पुरुष प्रणाम के द्वारा,
अश्वमेध शत वाजपेय का पा सकता पल में फल सारा।
व्यथा भुलाने वाली हाला - कुन्दन करने वाली ज्वाला,
इस बाला का भाग्यवान् ही पाता प्रेम सुधा का प्याला॥

४१

शबरी के झूँटे बेरों पर रीझे राम, कृष्ण गोरस वश,
प्रेम पक्व रस भरित अमृत फल, स्वादी तपें तपोवन में बस।
माँतृ अमृत, वधूत्व गङ्गा जल, पय भगिनीत्व, कामिनी मदिरा,
पीते वे विष जिनको नारी केवल विषय भोग प्रति रुचिरा॥

४२

नारी के निर्मल दर्पण में अपनी आत्मा को अवलोकें,
इसके पहरे से विषयों को अन्तर में आने से रोकें।
तव दैवी ज्वाला में तप कर उजलें, निखरें, शुद्ध बनें हम,
देवि ! शक्ति दो घृणा न करके तव समुचित उपयोग करें हम॥

४३

क्या कर लेगा वेश और वन, यदि मन में विकार जाग्रत है,
मृग छाला निकाल देगी क्या जो आनख शिख भृत आवृत है।
क्या न विषय छाया, सुर माया शैल गुफाओं में जा सकती,
सती सुरक्षित गृह तज बाहर विरति ढोंग में लाज न लगती॥

४४

इस अनन्त संसृति सरवर में पुरुष सलिल ऊर्मिल लहराता,
जिसमें प्रेम मृणाल मृदुल पर आत्म सूर्य चिति कमल खिलाता।
प्रति अनुभूति पंखुड़ी सी सूत, प्रति अभाव परिमल सा भाता,
नारी है किञ्जल्क सुरभिमय-प्राण-प्राण अलि सा मडराता ॥

४५

दारु धातु पाषाण मूर्ति में प्रेम उसे बन्दी कर लाता,
विस्मित मैं चेतन हिरण्य मयि छवि में प्रकट न हमें लखाता।
सत्य और सङ्गीत समाहित पुण्य और पुरुषार्थ मिले हैं,
परम पर्वमय सुतनु तीर्थ में सबके सब अपराध धुले है ॥

४६

नारी ही सम्पूर्ण राष्ट्र है, धर्म कर्म, संस्कृति, युग चेता
जन्म सिद्ध जन की समाज की देश जाति मानव की नेता।
प्राण दान कर भी न चुका सकते ऋण हम इस उपकारी का,
अब अपना अभिमान नष्ट हो - रक्षित स्वाभिमान नारी का ॥

४७

अति यथार्थ, आदर्श परायण, मुक्त, पूर्ण संस्कार मयी है,
नव सुधार की ओर प्रगति मयि, साधु मनस्थिति सार मयी हैं।
अनुरागी उरु-त्यागी अतिषय, पुनि आसक्त, विरत बड़ भागी,
चिर अध्यात्म चेतना चिन्मयि इसमें सुप्त इसी में जागी ॥

४८

अति, अनादि, जिज्ञासा जन की शाश्वत प्रश्न न हल हो पाया,
गुत्थी सी अवरुंधित, ग्रन्थिल, निविड़ रहस्य स्व समझ न आया।
रही सदा गूँगे के गुड़ सी, गहन तत्व सी, गूढ़ कथा सी,
स्पष्ट सत्य सी मधुर स्वप्न सी अमित हर्ष सी, अजित व्यथा सी ॥

४९

नारी के चिर प्राण पुलिन में प्रेम साधना के ऋजु पथ पर,
दर्प दलन को, भाव ग्रहण को रुका समद उद्धव का रथ चिर।
प्रेमानल में तपा स्वच्छ कर, शुद्ध तरल रस मध्य बुझाया,
रूखा ज्ञान पुरुष का जिस पर नारी ने निज भाव चढ़ाया ॥

५०

स्वयं दया तुम-योग्य पात्र में, तुम करुणा-जिसका में याचक,
सौम्य क्षमा तुम क्षम्य देवि मैं, परम प्रेम तुम मैं मृदु साधक।
मैं गायक, संगीत सुतनु तुम, सौन्दर्य्य में चिर आस्वादक,
मैं चैतन्य वर्त्तिका द्युति, तुम नव स्नेह, मैं लघु मृण्दीपक ॥

५१

नारी मिष शृङ्गार सुधाकर स शृङ्गार शत अलङ्कार धर,
धरती पर उतरा चिर सुन्दर कुसुमाकर सह कुसुम यान पर।
अंग शरद ने वय मनोज ने, पावस ने स्वभाव रवि ने द्युति,
छवि निसर्ग ने, कानन ने रस शशि ने मन, मानव ने दी रति ॥

५२

शाप भस्म बहु भस्मि राशि पर, तपस्फुरित स्वधुनी पधारी,
एक बहे वन-पुर में बाहर शिरा शिरा में भीतर नारी।
पाद्य - सद्य - पावन करने निज पद्म-पाणि भर पद्मा आई-
पहली बार कुलिश शिल से हट निज चेतना चकित मुस्काई ॥

५३

'मधुर रसोवै सः, स्वरूप की सरस प्रेरणा की पूर्वोद्गम,
'आनन्दो वै सः' स्वस्थिति की स्वानुभूति का श्रेय तनूत्तम।
एक रूप-रस एक नाम - गुण - एक इष्ट एक ईश्वर की,
है प्रदत्त संज्ञा नारी के रसिक समर्पण मय अन्तर की ॥

५४

दृग में प्रणय पाण्डु लिपि में मृदु-लिख निगूढ़ साङ्केतिक भाषा,
कर अधराक्त-अतृप्त हृदय की उपशम रहित अनन्त पिपासा।
नारी के आगे सकुचाकर अयस्पात्र कर माँगा कण भर,
दिया उढ़ेल विहँस तनु ने भी स्वामित नयनों का रत्नाकर ॥

५५

प्रति सौन्दर्य्य सुधार्णव श्री की मुकुर विभा सात्विक अनहोंनी,
लख पड़ती जिसमें अग जग को अपनी काली मूर्ति सलोंनी।
सप्त ऊर्ध्व लोकों से ऊँचा तव विराट का ओझल कोंना,
उछल स्पर्श हेतु करता उपहासास्पद प्रयास मम बोंना ॥

५६

अगणित अरुण राग मय सुख के स्वर्ण भार पलकों पर झेले,
खेले दो दृग हृदय अजिर में दुख के सौ सौ खेल अकेले।
आगे पथ पर पड़ता सहसा, तम प्रकाश क्रमशः झाँई सा,
निज करुणा में तुम सकुचित सी भव विराट है परछाई सा॥

५७

भर अनङ्ग की रस तरङ्ग कुल राजीवाङ्ग-अङ्गना-रङ्गिनि,
नर के सङ्ग उमङ्ग-व्यङ्ग में राग रंग करती रस रङ्गिनि।
खीज उठा नर-रीझ उठी वह भोग गई क्षण संसृति सारी,
नारी में नर लीन हुआ चिर, नर में जाग उठी प्रिय नारी॥

५८

अमृत कलश अमरों का लेकर क्या न मोहिनी का शुभागमन,
दीख न पाता क्या पुतली में घूम रहा जो चक्र सुदर्शन?
रोगी - भोगी दूर हटे हैं दहल गये हैं जोगी - योगी,
केवल निकट खड़ा रह पाया अविकल अविचल एक वियोगी॥

५९

रत्न मात्र हम यह रत्नाकर, नारी विकृति महाक्षय कारी,
नर मानव - तनु मानवता है, मैं तन तुम आत्मा अविकारी।
सुखी रहे यह रत्न वही शुभ धन्य सदा उसका हितकारी,
फूले फले सतत दिन द्विगुणी रात चौगुनी जग में नारी॥

६०

माँ मैं विजयी, दुहिता में स्थिर, भगिनी में शुचि, सयश प्रिया में,
चतुर्भाव मण्डल समाज का श्रेयस्कर है लोक क्रिया में।
नारी मर्य्यादा जिनको प्रिय, नारी हित जिनकी बलिवेदी,
मुक्ति स्वयम्वर में निश्चय वह होगा जन स्वलक्ष्य का भेदी॥

६१

शान्ति, क्रान्ति, में परिवर्त्तन में प्रति स्थान, प्रति काल स्थिति में,
सह प्रतिबन्ध, स रूढ़ि नगर में, मुक्त ग्राम की स्वच्छ प्रकृति में।
भौतिक मांसल पुरुष करों में असुरक्षित सम्मान, सत्व प्रण,
महिषा सुर-निशुंभ सा निज अघ,खल मर्दिनि तनु करो असि ग्रहण॥

६२

जन जन में तव विजय भारती - स्वर स्वर सान्द्र प्रतिध्वनि तेरी,
पायल की अस्फुट रुन झुन से रणित हुई युग की रण भेरी।
राष्ट्र चेतना का सर्वोदय, व्यक्ति अभ्युदय, तुम स्व शक्ति त्रिक,
हे ! अभिराम ! प्रणाम कर रहे, संसृति के समस्त चेतन झुक ॥

६३

किसकी वृत्ति खोल पट अपने हो विभोर तब ओर न झाँकी,
चित्त चित्र पर पर चिर सुन्दर तब मृदु मंगल मूर्ति न आँकी।
भग्न न किसकी हुई दृष्टि की मर्म चोट से पाहन कारा,
आकर तोरण पथ पर तेरे किसने अपना कर न पसारा ॥

६४

वध अपमान,अपहरण, ताड़न,क्षति, कुदृष्टि, बल, भीति दिखाना,
लोभ, घृणा, अपशब्द, स्वार्थ, छल, निन्दा, घात, कुचक्र चलाना।
दुर्व्यवहार, त्याग, निष्कासन, अनाचार, व्यवसाय प्रयोगी,
नारी हृदय दुखाने वाला कोटि जन्म नरकों का भोगी ॥

६५

निज मस्तक की भार पोटली, अपने हाथ दयार्द्र उतारी,
पोंछ श्रान्ति कण अञ्चल पट से स्वस्थ पुष्ट कर देती नारी।
घन प्रकाश तारों पर मन के अनहद राग मूर्च्छना गाते,
तनु के यौवन, हर्ष, रूप में हलके भाव भँवर बन जाते ॥

६६

जौहर की ज्वाला में - झाँसी - अरावली के मैदानों में,
पति शव ले प्रज्वलित चिता पर, रक्त पिपासू मर्दानों में।
स्वतन्त्रता की सबल सैनिका - बन्दी गृह से है कब हारी,
त्रिभुवन की मृदु कटु हल चल में कहाँ नहीं है मेरी नारी ॥

६७

बस रोटी का राग सकल ने गाया लक्ष्य यही माना है,
कर्त्तव्यार्थ उसे सहने का कियत्तत्व तुमने जाना है।
कवल, कीर्ति, कादम्ब, कामिनी, काञ्चन केवल काम्य नरों को,
नारी ! तुम ही धो सकती हो उनके इन तामस अवरों को ॥

६८

अन्तःपुर की शुचि विलासिनी, दुर्गा सी प्रत्यक्ष समर में,
किसलय तल्प शायिनी पेशल प्रगति शील कण्टकित डगर में।
जीवन के अदम्य संघर्षों की सेनानी - क्रान्ति कारिणी,
लोक शान्ति की अग्रदूत जय जन विवेक की हंस-वाहिनी॥

६९

निज अतीत तुमसे उजला था, वर्तमान क्यों कुछ मैला है,
शुभ भविष्य की भीख माँगने वसुधा का अञ्चल फैला है।
हमें जिलाये कौन विश्व में, हममें चेतन श्वास नहीं है,
जागो तुम्हीं पुरातन हे ! नारीत्व नयी के पास नहीं है॥

७०

मेरा चित्राधार तुम्हारे रंगों से भर कर बन आया,
टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं में तेरा रूप समेट न पाया।
श्वासों के सुन्दर गीतों को मिली मूकता की दृढ़ बेड़ी,
कागद पर हल्के वर्णों में सकुच रही है भाव त्रिवेणी॥

७१

जय वृद्धे ! जय युवति ! किशोरी ! जय धन्ये कन्ये नव जाता,
जय कुल वधू! बहिन! जय दुहिते! जय करुणा ममता मयि माता।
दृष्टि दृष्टि की सुधा वृष्टि में व्यष्टि समष्टि सृष्टि की सारी,
पाती तुष्टि पुष्टि, संरक्षण, जय सुलक्षणे ! लक्ष्य हमारी॥

७२

मदिराञ्चल पारावत पर की सेवन करें सतत मलियानिल,
अनिश कूजती रहे श्रुतों में तव बसन्त स्वर की मधु कोकिल।
मुखर किङ्किणी शुभ निद्रासव, पायल दे जागरण सुधार्णव,
वरद हस्त छाया मण्डप में हों सम्पन्न भुवन के उत्सव॥

७३

यह परिणय कौशेय सूत्र मृदु, बँधे मत्त मातंग निराले,
प्रेम सुधा पी उभय अचञ्चल क्षेमाङ्कुश भय टले न टाले।
ऊँची नारी नीची होकर हिम कर सी नर मद पर छायी,
पिघल गया अभिमान परुष का सुगम हुई जग की गहरायी॥

७४

सब में नर नारी दोनों हैं शक्तिमान और शक्ति अनूपा,
एक सत्य के उभय तत्व दो - एक सत्व कृत मनु शत रूपा।
कौन बड़ा छोटा है इनमें दोनों हलके - दोनों भारी,
नारी के मन में ऊँचा नर, नर के मन में ऊँची नारी॥

७५

धर्म अतिथि सेवा - तुरंग द्वय, दान - मान दृढ़ दिव्य कुशा है,
सदाचरण उपकार-राजपथ, गृह जन पोषण परम दिशा है।
यह गृहस्थ रथ- सत्य सारथी, श्रद्धा गति, ध्वज त्याग पुरा है,
रथ के दो पहिये नर नारी, प्रेम जोत, कर्त्तव्य धुरा है॥

७६

प्रत्यय भवन- भुवन जब लूटे, कुसमय दैव प्रबल हो रूठे,
जग की नौका भार वाहिनी, सह न सके मन के सुख भूँठे।
सहसा गर्व गगन तब फूटे, दुरित स्वार्थ की मटकी फूटे,
देवि! डूबते मेरे मन का तुझ तृण का अवलम्ब न छूटे॥

७७

जीर्ण शीर्ण युग की मानवता - कायर संतति कृश विदुला सी,
आज देश की संस्कृत संस्कृति, रूपवती कुलीन अबला सी।
पड़ी दस्युओं के हाथों में- बूढ़ी माँ की ओर निहारो,
निज असमर्थ थकित पौरुष है स्वागत नारी तुम्हीं उबारो॥

७८

खोल दिये जिसने समाज के, मूढ़ रूढ़ियों के सब बन्धन,
कटु कारा से मुक्त तुम्हें कर जिसने दिया नया युग-जीवन।
सत्य, अहिंसा, शान्ति व्रती श्री गान्धी के शुभ युग में सक्षम,
उसकी आत्म ज्योति की अक्षय कल्प प्रदीप रहो नारी तुम।

७९

नारी के आनन्द पुञ्ज का - लघु प्रकाश कण मैंने पाया,
मेरा मरु वसन्त रच लेता - मृतक अमर जीवन भर लाया।
वैतरणी के पार उतरने मत्स्य शृङ्ग रक्षित तरणी ये,
युग सन्देश लिये सञ्चारित सर्वात्मा रस निर्झरिणी ये॥

८०

चौराहे पर सती वधू के महास्तित्व की कर नोंटङ्की;
शोक ! पूज्य व्यक्तित्व मलिन कर होली मना रहा है सन्की ।
अन्तःपुर के रस रहस्य को गलियों में कर स्वाँग ढकेला,
नारी को नंगा कर पथ पर लोक लगा बैठा है मेला ॥

८१

जाग उठो जय के विश्वासी चेतो हे ! युग के अविनाशी,
नव निर्माता नई क्रान्ति से शीघ्र नष्ट हो नृ-तम विनाशी ।
महदर्चाभ्यासी प्रियदर्शी देवानां प्रिय भारत वासी
अपनी रुधिर राशि से धो दो मातृ जाति की मलिन उदासी ॥

८२

बोर बोर तेरे ऋजु रस में अपने नीरव नव छन्दों को,
ज्योति बाँटने उतर पड़ा कवि मुझमें इन मुझसे अन्धों को ।
जंग लगे लोहे के पट हैं खुले न ये युग सब कर हारा
नारी स्वयं भंग कर दो अब पदाघात से पाहन कारा ॥

८३

कुल व्यवहार-विहार-प्यार निज-प्रति अधिकार-विचार भार सब,
यह घर-बार सम्हाल शेष बस श्रमिक मात्र में सब प्रकार जब ।
फिर समान अधिकार माँग का कौन अर्थ ? क्या एक नहीं भ्रम ?
बहिन वधू, दुहिता जननी ! क्या त्याग रही हो अपने को तुम ? ॥

८४

हमें अनुकरण करने दो निज, तुम न हमारा करो अनुशरण,
लक्ष्य बनी तुम रहो-लोक पथ पर हम बने रहें पन्थी गरण ।
यदि विश्वास हिला तव तो संस्कृतियों के सुमेरु ढह जाएँ,
यदि मांगो प्रतिकार,सत्य तो चुके न कण भर हम मिट जाएँ ॥

८५

वधू-प्रणयिनी-भोग्य एक की भगिनी पुत्री, कियत्पुरुष की,
अखिलाखिल अनन्त पुरुषों की जननी तुम समस्त पौरुष की ।
भोग मोह-तन की सजधज का तिमिरोत्पादक रोक प्रदर्शन–
माँ मातृत्व करो निज दर्शित जो संयत मर्य्यादित हो जन ॥

८६

समर विमुख सुत को प्रबोध जो मरण हेतु निज हाथ सजाती,
पति विमोह कदनार्थ नवोढ़ा शीष काट निज समुद पठाती।
राम मन्त्र जिससे तुलसी ने पा भव निधि का सेतु बनाया,
उस नारी के देव द्वार पर मैं प्रणाम करने हूँ आया॥

८७

जिसका रत्नागार खोल कर युग ने युग पुरुषों को पाया,
धर्म प्रेम की मर्य्यादा में करली जिसने भस्म स्व काया।
रोकी स्व तप तेज से रवि गति, जीती प्रबल काल की माया,
उस पवित्र नारी मन्दिर में मैं प्रणाम भर करने आया॥

८८

जिसकी कुञ्ज गली में विह्वल ब्रह्म कृपा कण - रस का याचक,
भुवनाधिप शिव कर्र खप्पर ले जिसकी ड्योढ़ी के चिर भिक्षुक।
जिसने ईश्वर को ऊखल से बाँध कनखियों से धमकाया,
उस नारी की चरण धूलि पर मैं प्रणाम करने हूँ आया॥

८९

जिसके उपकारों का पीवर भार निखिल प्राणी पर अतुलित,
जिसके प्रति कृत निज कृतघ्नता-खलता का अम्बार न परमित।
प्रति प्रतिकार क्षमानुग्रह दे वरदानों से भुवन सजाया,
उस उदार करुणा - महिमामयि को प्रणाम करने नर आया॥

९०

नयनों से मुक्ता की वर्षा, उर पर पय की धार दमकती,
कंगन भार व्यथित कोमल कर फिर जिनमें प्रलयासि चमकती।
संस्कृति को समाज मानव को निज का कर उत्सर्ग बचाया,
अभय दायिनी! नारी! सविनय मैं प्रणाम करने हूँ आया॥

९१

स्वरप्सरा का रूप तिरस्कृत करती सहज अनिन्द्य सुन्दरी,
सिद्ध लोक की रूपसियों से कहीं अधिक यह मधुर रस भरी।
देवी गण का तेज मलिन है मधुर मानवी की काया से,
उसकी आत्म ज्योति के आगे रवि-शशि उडु लगते छाया से॥

९२

एक ओर मम हृदय अपर तव रुचि से बँधी स्वभाव शृङ्खला—
अन्तर की सम्बद्ध त्विषा से गली परस्पर की अवर शिला—
हुआ युगल का शक्ति समन्वय, हुई पुष्टि भौतिक आध्यात्मिक,
मिली तव कृपा से स्थिति-परिणति, जीवन को गति स्वस्थ मानसिक॥

९३

समष्टि माँ में व्यष्टि वधू में, सृष्टि सार पाया दुहिता में,
सबका शान्त पवित्र अभ्युदय, हुआ बहिन की, ऋजु निजता में।
चारों तत्व सूत्र सत्ता मय निज स्वरूप की सहज समीक्षा,
पुरुष पूर्ण होता इनसे ले संस्कार - शिक्षा, ऋण, दीक्षा॥

९४

जीवन का ऊर्ध्वारोहण कर निखिल पूर्ण तक जब हम आते,
हम विशुद्ध तब शक्ति रूप में केवल नारी ही रह जाते॥
अस्थायी स्थित - पुरुष आर्त्तव - उभय पदी संज्ञा है मानव,
शक्ति केन्द्र जो समारम्भ में शक्ति स्वरूप बाद में आर्जव॥

९५

काव्य विफल असमर्थ भले हो, विरस कल्पना, कला यश द्रुह,
पर न यहाँ स्तुति, अर्थवाद, या वय, रुचि, प्रीति, व्यक्ति का आग्रह।
इसमें है सङ्गीत प्राण का मानव की आस्था श्रुति प्रत्यय,
भारत के नैसर्गिक, आस्तिक, संस्कार, संस्कृति का विनिमय॥

९६

आत्मा गाती मति वीणा पर उदित प्राण से हृदय हंस चढ़,
मिला न पर कवि हृदय न प्रतिभा, या अभिव्यक्ति शक्ति में अनपढ़।
कोटि महाकाव्यों कवियों से गेयातीत अगोचर नारी,
मैं विमूढ़ तम तद्विषयक कुछ कहने का न अल्प अधिकारी॥

९७

पावन मन सरोज सम्पुट में निर्मल छवि ज्योत्स्ना मधु धारा,
उमड़ी जिससे अर्घ्य-अर्घ दे श्रद्धा का मणि दीप उसारा।
आत्म विभोर - भाव संज्ञित हो अनुभव में जो सुन लख पाया,
चेष्टा की उतार दूँ उसकी भली बुरी कागद पर छाया॥

९८

दैवी श्रुति संदेश वाहिका, तत्व मूर्ति आलोक वाहिनी,
धरती की प्रभुता विभुता हे ! संसृति, श्रेय सितार वादिनी।
सबकी सार - सत्य शोभा सुख आत्माराम अचिन्त्य धाम है,
हे ! विभूति भावों की देवी ! बार बार तुमको प्रणाम है ॥

९९

संकल्पार्थ तवाञ्जलि भरने काव्य कमण्डलु भर लाया हूँ,
युग भिक्षुक को सँग में लेकर मन्त्र पाठ करने आया हूँ।
हे ! भगवती महामति नारी परित्राण दो अभय दान दो,
पतनोन्मुख नर को समाज को नव जीवन दो नवोत्थान दो ॥

१००

अन्तर ज्योतिर्मध्य - विन्दु पर अग जग का व्यक्तित्व लपेटे,
सत्ता और इयत्ता से पर घन अनन्त को खड़ी समेटे।
जहाँ सृष्टि की दृष्टि न जाती आत्मा का उन्मेष पहुँचता,
निखिल शक्ति संगम उस 'तुम' में एक सत्य शिव, सुन्दर हँसता ॥

१०१

सप्तावरण उठा कर सारे स्थूल व्यक्त के पार पहुँच कर,
हो अनुरूप रूप निरखा है मन ने तीनों त्याग कलेवर।
तव अविवेक भ्रन्ति का रहता कहाँ प्रश्न 'सद्' का कर अनुभव,
इस भव में शोभित है नारी, नारी से शोभित है यह भव ॥

शुद्धि पत्र :—

सर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका	ग	×	१२	आश्वादक	आस्वादक
”	”	+	१६	स्नेहाद्र	स्नेहार्द्र
”	छ	+	२३	नसर्गिक	नैसर्गिक
”	च	+	२०	द्रुति	द्रुत
विषयानुक्रमणिका	२	+	४	मेरा	मेरी
”	”	+	६	के	की
सर्ग मानवी १	२	७	२	जय	जय जय
”	४	१४	२	तु	तुम
”	६	४८	३	द्दष्टा सृष्टा	द्रष्टा स्रष्टा
”	१०	५५	४	वाँच्छित	वाञ्छित
”	१७	६५	४	ज	जन
”	”	६७	३	“”	अहं
माँ २	२०	३	२	वनीं	वनी
”	”	६	१	निश्श्रेयस्	निश्श्रेयस
”	२१	८	३	अदभुत	अद्‌भुत
”	”	१३	३	इसीं	इसी
”	२२	१६	३	पूर्ण	पूर्ण
”	२५	३६	१	सर्वं	सर्व
”	२६	३८	४	नहीं	नहीं
”	२७	४४	३	सब	सब
”	२८	५०	१	चम्द्र	चंद्र
”	२६	५७	१	क्रर	क्रूर
”	३१	६६	२	अनल	अचल
”	३२	७६	२	युक्त	लज्जा युक्त
”	”	७८	१	ममत्व	माँ ममत्व
”	३४	८६	३	विष्ण	विष्णु
”	३५	६२	४	मिस	मिष
”	”	६६	१	विष्ण	विष्णु

सर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३ दुहिता	३६	६	४	अदभुत	अद्भुत
,,	४०	१७	२	कीं	की
,,	४३	३७	३	सब	सब
,,	४६	-५५	३	लक्ष्यो	लक्ष्यों
,,	४६	७२	१	अम्तर	अन्तर
बहिन ४	५१	१	१	चिम्तन	चिन्तन
,,	५६	२८	३	के	मन के
,,	६४	७८	४	।ुक्त	मुक्त
,,	६५	८५	३	पावक	यावक
प्रेयसी ५	६८	५	४	यम्त्र	यन्त्र
,,	६६	१२	३	वेरा	वेणु
,,	७०	१५	४	वना	बना
,,	७१	२३	४	वेला	बेला
,,	७३	३२	२	घारा	धारा
,,	७४	३६	३	श्वाँसों	श्वासों
,,	,,	४३	३	अन्त	अन्तर
,,	७६	५१	४	लक्ष	लक्ष्य
,,	७८	६४	३	निर्यात	नियति
,,	,,	६५	४	रेण	रेणु
,,	,,	६७	१	भँवरे	भँवरें
,,	८२	४	१–४	वर्ग	वर्ग
,,	८२	४	४	सर्वोत्तम	सर्वोत्तम
,,	७६	७१	२	सङ्गीत	गीत
,,	८०	७५	२	सम्पन्न	पूर्ण
बधू ६	८५	२५	२	कीं	की
,,	८६	२७	४	गमन'ज्योत्सना'	सुगमन ज्योत्स्ना
,,	,,	२६	१	अव	अब
,,	६७	५२	३	भान्ति	भाँति
,,	६३	७१	४	जी न	जीवन
,,	,,	७२	४	भयि	मयि
,,	६६	८६	४	विदा	बिदा